जीवन चरित
परमहंस वीतराग
स्वामी दयानन्द 'गिरि' जी महाराज

श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ वीतराग परमहंस

स्वामी दयानन्द 'गिरि' जी महाराज

का

जीवन-चरित

लेखक :

अनन्त श्री विभूषित श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ

दण्डी स्वामी स्वयम्भू तीर्थ

धर्म संघ शिवालय 33, मनीराम मार्ग, ऋषिकेश, जिला देहरादून, उत्तरांचल

संपादक :

डॉ० बाँके लाल शर्मा

पूर्व प्राचार्य यूनिवर्सिटी कॉलेज, कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय, कुरुक्षेत्र

संकलनकर्त्ता :

प्रो० ज्ञानचन्द गर्ग

पूर्व रजिस्ट्रार टैक्नीकल ऐजूकेशन हरियाणा, चण्डीगढ़

स्वामी जी के भक्त जनों द्वारा प्रकाशित

मूल्य श्रद्धा-भावपूर्वक अध्ययन, मनन एवं आचरण

(निःशुल्क वितरणार्थ)
धर्म प्रेमी भक्तों के सहयोग से

ॐ
सर्वे भवन्तु सुखिनः, सर्वे सन्तु निरामयः।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु, मा कश्चित् दुःख भाग्भवेत्।।
ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः

संशोधित व परिवर्द्धित चतुर्थ संस्करण : 2017 550 प्रतियाँ

प्राप्ति स्थान :
ज्ञान चन्द गर्ग
99, प्रीत नगर
अम्बाला शहर-134003 (हरियाणा)
दूरभाष : 0171-2552761, 94164-63455

मुद्रणालय :
महाजन एंटरप्राइज
अम्बाला छावनी

विषय सूची

श्री गणेशाय नमः

ॐ श्री गुरवे नमः, श्री परमात्मने नमः

इस शरीर का इसमें कुछ भी नहीं है। अतः 'तेरा तुझको अर्पण' के भाव से श्रद्धा, कृतज्ञतायुक्त आराधना के रूप में गुरु सत्ता के श्री चरण-कमलों में सादर समर्पित —

त्वदीयं वस्तु गोविन्द! तुभ्यमेव समर्पये !

सद्‌गुरुदेव भगवान् की चरण रज का
एक अति सूक्ष्म कण।

सेवक
ज्ञान चन्द गर्ग

परमहंस वीतराग

स्वामी दयानन्द 'गिरि' जी महाराज

(19 मार्च, 1919 – 23 नवम्बर, 2004)

समर्पण

स्वामी दयानन्द 'गिरि' जी के जीवन–चरित का यह संशोधित और परिवर्द्धित तृतीय संस्करण अध्यात्म मार्ग के पथिकों के लिए पाथेय के रूप में प्रस्तुत करते हुए सुखद अनुभव हो रहा है।

इस संस्करण में स्वामी जी के भक्तों के, विशेषकर ऐसे भक्तों के, जिन्होंने स्वामी जी के दर्शन नहीं किये, लेकिन स्वामी जी के ग्रन्थों के स्वाध्याय से अपने जीवन में अध्यात्म ज्ञान का प्रकाश अनुभव किया, उनके अनुभव संकलित किये गए हैं।

संपादक डॉ० बाँके लाल शर्मा जी ने नये स्रोतों से प्राप्त संस्मरणों को यथा स्थान व्यवस्थित करके तथा सभी संस्मरणों की क्रमसंख्या के साथ उनके लघुशीर्षक देकर, और यथास्थान आवश्यक संशोधन करके संस्मरणों वाले भाग को अधिक पठनीय बना दिया है।

अब स्वामी जी भौतिक शरीर में तो हमारे मध्य नहीं हैं। लेकिन उनका दिव्य ज्ञान रूप उनके सद्ग्रन्थों के रूप में अध्यात्ममार्ग के पथिकों का पथप्रदर्शन करने के लिए उपलब्ध है। स्वामी जी सब भगवद् गुणों और पूर्ण प्रज्ञा से सम्पन्न वीतराग भिक्षुक महात्मा थे। उनके पूर्ण स्वरूप को तो कोई ब्रह्मज्ञानी ही समझ सकता है। अपने–अपने अनुभव और अपनी–अपनी बुद्धि के अनुसार स्वामी जी के भक्तों ने जो संस्मरण लिखे हैं, उनसे स्वामी जी के स्वरूप के बारे में प्रेरणादायक जानकारी मिलती है। इसलिए, स्वामी जी के विषय में तो यहाँ कुछ लिखना, इस ग्रन्थ में अभिव्यक्त विचारों की पुनरावृत्ति ही होगी।

श्रद्धेय स्वामी जी द्वारा दिए गए प्रवचनों और लेखों का एक–एक शब्द अनेक धर्म–ग्रन्थों, वेदों, गीता आदि के सागर के मंथन से निकले ज्ञान के अमृत कलश के समान है। हजारों भक्तों के प्रशंसा पत्रों में व्यक्त

विचार इस सत्य का प्रमाण हैं। यत्न तो स्वयं मानव को ही करना है, परन्तु प्रेरणा महापुरुषों के वचनों या शब्दों से ही प्राप्त करनी होगी।

भगवत् कृपा से द्वितीय संस्करण की कुछ त्रुटियों के निवारण में श्री प्रवीर पाठक जी, (नोएडा–उ०प्र०) ने बड़े भक्ति भाव से अपना योगदान दिया है।

डॉ० बाँके लाल शर्मा जी ने इस जीवन–चरित के तृतीय संस्करण का संपादन और संशोधन बड़ी श्रद्धा से किया है। धर्म प्रेमी समुदाय इस पुण्य कार्य के लिये डॉ० शर्मा जी के प्रति हृदय से कृतज्ञता व्यक्त करता है।

मैं सनातन धर्म कॉलेज अम्बाला छावनी के भूतपूर्व हिन्दी विभाग के अध्यक्ष डॉ० भीष्म मखीजा लेखक एवं समालोचक जी का भी विशेष रूप से अत्यन्त आभारी हूँ जिन्होंने इस पुस्तक की छपाई से पहले सम्भावित त्रुटियों को दूर करने के लिए पुस्तक की पूरी विषय वस्तु को बड़ी श्रद्धा व लगन से पढ़ने में अपना बहुमूल्य योगदान दिया। इस पुनीत कार्य के लिए वह साधुवाद के पात्र हैं।

अन्त में, मैं श्रद्धेय श्रीमती निर्मल शर्मा जी (पंचकूला) एवं पूजनीय श्रीमती विमला भनोट जी (दिल्ली) का आभार व्यक्त करना आवश्यक समझता हूँ, जिन्होंने परम पूज्य स्वामी जी महाराज के जीवन चरित से संबंधित सही तथ्यों को अवगत कराने की कृपा की।

इसके अलावा मैं डॉ० नीलम मरवाह जी (चंडीगढ़), श्री सी०एल० पुरी जी (अम्बाला छावनी), श्री संजय शर्मा (अम्बाला छावनी), श्री विक्रम महाजन तथा अन्य मित्रों व अनगणित भक्तों का भी आभारी हूँ जिन्होंने इस पुस्तक को छपवाने में मुझे पूर्ण सहयोग दिया।

शरणागति

अम्बाला शहर

ज्ञान चन्द गर्ग

प्राक्कथन

स्वामी दयानन्द 'गिरि' जी के जीवन–चरित के लेखक अनन्त श्री विभूषित श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ दण्डी स्वामी स्वयम्भू तीर्थ जी महाराज हैं। स्वयम्भूतीर्थ जी स्वामी दयानन्द जी के साधनाकाल के साथी हैं और उन्होंने स्वामी जी के आध्यात्मिक जीवन को बहुत निकटता से देखा है। 97 वर्ष की वृद्धावस्था में स्वयम्भू तीर्थ जी से स्वामी दयानन्द जी महाराज का जीवन–चरित लिखवा पाना इतना सरल नहीं था, लेकिन यह कार्य स्वामी दयानन्द 'गिरि' जी महाराज के भक्त श्री ज्ञानचन्द जी गर्ग ने करवा ही लिया। इस संबंध में श्री गर्ग जी ने सारा वृत्तान्त इस प्रकार बताया :

"कुछ समय से स्वामी जी के ग्रन्थों के स्वाध्यायी भक्तों का यह आग्रह निरन्तर प्राप्त हो रहा था कि पूज्य स्वामी जी के जीवन के बारे में विस्तृत जानकारी दी जाए ताकि वे उनके ग्रन्थों का स्वाध्याय करते समय स्वामी जी की साधना और उनके जिये हुए आध्यात्मिक जीवन से प्रेरणा ले सकें। सौभाग्य से मेरा (ज्ञान चन्द गर्ग) संपर्क ऋषिकेश निवासी दण्डी स्वामी पूज्य स्वयम्भू तीर्थ जी महाराज से हुआ। स्वयम्भू तीर्थ जी स्वामी जी के शरीर छोड़ने से कुछ मास पूर्व ही उनसे मिलने अम्बाला शहर आए थे। स्वयम्भू तीर्थ जी महाराज ने मुझे पहले भी टेलीफोन पर बताया था कि वह अध्ययन–काल में कई वर्ष स्वामी दयानन्द 'गिरि' जी के साथ रहे हैं और उन्हें स्वामी जी के जीवन के बारे में भी जानकारी है। इस बात की पुष्टि स्वामी जी ने भी स्वयं की थी।

स्वामी जी के ब्रह्मलीन होने के कुछ समय बाद मैं एक मित्र श्री जयप्रकाश जी को साथ लेकर ऋषिकेश कैलाश आश्रम पहुँचा,

क्योंकि मुझे यह ज्ञात था कि इन दोनों सन्तों ने कैलाश आश्रम में

अध्ययन किया था। तत्पश्चात् अनन्त श्री विभूषित दण्डी स्वामी स्वयम्भू तीर्थ महाराज जी के, धर्मसंघ शिवालय, 33 मनीराम मार्ग स्थित आश्रम में पहुँचकर उनके दर्शन करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। स्वामी जी को दण्डवत प्रणाम् करते हुए अपना परिचय दिया और स्वामी दयानन्द जी के ब्रह्मलीन होने का समाचार सुनाया, जिसे सुनकर उनका मन भी क्लांत हो गया। जब मैंने उनसे स्वामी दयानन्द जी महाराज का जीवन–चरित लिखने का निवेदन किया तो वे अपनी स्वीकृति देते हुए बोले कि ***"क्या गागर में सागर को भरना चाहते हो। हाँ, लेखन में दिग्दर्शन तो कराया जा सकता है।"***

दण्डी स्वामी श्री विभूषित श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ स्वयम्भू तीर्थ जी महाराज दिनांक 24 मई 2006 को इस नश्वर शरीर को त्यागकर 97 वर्ष की आयु में संसार से मुक्त होकर ब्रह्मलीन हो गए। उनके पार्थिव शरीर को 25 मई 2006 को गंगातट पर मायाकुण्ड घाट ऋषिकेश में जलसमाधि देकर कैलाश आश्रम के महात्माओं व भक्तों की उपस्थिति में वेदमन्त्रों के उच्चारण के साथ श्री गंगा जी में लीन कर दिया गया। स्वामी जी को श्रद्धांजलि देने के लिए कैलाश आश्रम के महामण्डलेश्वर स्वामी विद्यानन्द 'गिरि' जी महाराज भी वहाँ उपस्थित थे।

दण्डी स्वामी स्वयम्भू तीर्थ जी महाराज ने स्वामी दयानन्द 'गिरि' जी महाराज के प्रति अति स्नेहभाव तथा उनके भक्तों के प्रति करुणाभाव से प्रेरित हो यह "जीवन–चरित" लिखकर अध्यात्म विद्या में रुचि रखने वाले साधकों पर बहुत उपकार किया है।

स्वामी दयानन्द 'गिरि' जी के भक्तों, उनके ग्रन्थों और

उनके इस "जीवन–चरित" के श्रद्धालु पाठकों के हृदय में स्वामी

स्वयम्भू तीर्थ जी महाराज भी सदा विराजमान रहेंगे।

स्वामी स्वयम्भू तीर्थ जी महाराज द्वारा लिखित 'जीवन–चरित' के इस नवीन संशोधित संस्करण में स्वामी दयानन्द 'गिरि' जी महाराज की सहोदरा बहन श्रीमती विमला भनोट जी से प्राप्त स्वामी जी के जीवन संबंधी तथ्यों तथा श्री ज्ञान चन्द गर्ग जी को स्वामी जी के अनेक भक्तों और उनके ग्रन्थों के स्वाध्याय से लाभान्वित साधकों से प्राप्त महत्वपूर्ण एवं उपयोगी सामग्री को भी यथा स्थान समायोजित कर दिया गया है।

भाग–III में प्रस्तुत स्वामी जी के प्रवचनों में से कुछ प्रवचनों के संकलन में श्री सुरजीत लाल वासुदेवा का विशेष योगदान रहा हे।

स्वामी जी के जीवन संबंधी इस पुस्तक की सामग्री को निम्नलिखित भागों में व्यवस्थित किया गया है :

भाग–I

स्वामी जी का जीवन–चरित

लेखक: दण्डी स्वामी स्वयम्भू तीर्थ

भाग–II

स्वामी जी के भक्तों के संस्मरण

संकलनकर्त्ता: श्री ज्ञान चन्द गर्ग

भाग–III

स्वामी जी के ग्रन्थ

(1) ग्रन्थ परिचय

(2) आध्यात्मिक जीवन पद्यावली के कुछ पद्य या छन्द

(3) कुछ संकलन किये हुए प्रवचन
(श्री सुरजीत लाल वासुदेवा)

भाग–IV

स्वमुख से निःसृत ज्ञानगंगामृत

संकलनकर्ता: स्वामी सत्यस्वरूपानन्द जी

स्वयम्भू तीर्थ जी महाराज तथा स्वामी दयानन्द 'गिरि' जी महाराज की सहोदरा बहन श्रीमती बिमला भनोट के अलावा स्वामी जी के जीवन के बारे में स्वामी जी के असंख्य भक्तों ने अपने–अपने अनुभव भी ज्ञान चन्द गर्ग जी को लिखे। इस सम्पूर्ण जीवन–चरित की सामग्री का संकलन विभिन्न स्रोतों से श्री ज्ञान चन्द गर्ग जी ने ही किया है, जिन स्रोतों से उनका व्यक्तिगत सम्पर्क था। कराला–माजरी गांवों, अम्बाला शहर, जगाधरी, कुरुक्षेत्र, होशियारपुर, चिन्तपूर्णी आदि शहरों के जिन भक्तों के हृदय में स्वामी जी की अमिट छाप है, उन सब ने इस "जीवन–चरित" को प्रकाशित करवाने का उत्तरदायित्व निभाया है। स्वामी जी के तो सब हैं और सांसारिक अर्थ में उनका कोई नहीं है। जो भी कोई धर्म को धारण करने की हिम्मत करता है, और धर्म पर चलता है, वही उनका है। अपने जीवनकाल में धर्म पर चलने वालों को स्वामी जी सदा बल देते थे और उनका मार्गदर्शन भी करते थे। अब पुस्तकों के रूप में उपलब्ध स्वामी जी के शब्द धर्म पर चलने वालों के पथ प्रदर्शक हैं।

स्वयम्भू तीर्थ जी ने यह ठीक ही लिखा है कि स्वामी दयानन्द 'गिरि' जी का जीवन–चरित लिखने का प्रयास तो *'गागर में सागर'* भरने के प्रयास की तरह है।

यह जीवन–चरित एक ऐसे विरक्त ब्रह्मज्ञानी सन्यासी सन्त का है, जिनके समान सन्त अति दुर्लभ हैं। जो भी इस जीवन–चरित को पढ़ेगा उसे निश्चित रूप में सच्चे आध्यात्मिक जीवन का स्वरूप और महत्त्व समझ में आ जाएगा और वह स्वामी जी के ग्रन्थों को पढ़ने का पिपासु बनेगा और धीरे–धीरे अपने आध्यात्मिक जीवन में साधनारत होकर अपनी आन्तरिक शुद्धि करता हुआ आनन्द लाभ प्राप्त करेगा।

इस बात का पूर्ण अहसास है कि यह प्रकाशित 'जीवन–चरित' अपूर्ण है और भक्तों की जिज्ञासा की पूर्ण संतुष्टि इससे शायद न हो सके। सुधी सहृदय पाठक इन कमियों को नजर–अंदाज कर, अपनी भावना के बल से स्वयं इस पुस्तक को पढ़कर स्वामी जी का पूर्ण रूप निर्मित करने का प्रयास करेंगे और इसमें प्रस्तुत विचारों से अपने जीवन के आध्यात्मिक पक्ष को निरन्तर उन्नत करते रहेंगे।

बाँके लाल शर्मा
पूर्व प्राचार्य, युनिवर्सिटी कॉलेज,
कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय, कुरुक्षेत्र

परमपूज्य स्वामी जी का ध्यान और स्तुति

डॉ० बाँकेलाल शर्मा

मैं ध्यान करता हूँ परमपूज्य स्वामी दयानन्द 'गिरि' जी भगवान् का जो कुरुक्षेत्र के पावन ब्रह्मसरोवर के पश्चिमी घाट पर एक कुटिया के बाहर चौकी पर पद्मासनस्थ शोभायमान हैं और जो, कुछ भक्तों के समक्ष प्रवचन कर रहे हैं। इन श्रोता भक्तों में कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय के कुछ विभागाध्यक्ष प्रोफैसर हैं, प्राध्यापक हैं, आफीसर और कर्मचारी हैं तथा शहर के कुछ नागरिक हैं। आप में भगवान् का **सत्य, शिव, सुन्दर** स्वरूप आविर्भूत है। आप में भगवान् के ज्ञान वैराग्य, क्षमा, संतोष आदि गुण हैं। आप मैत्री करुणा, मुदिता, उपेक्षा, क्षमा, दान, शील, ध्यान, वीर्य और प्रज्ञा आदि बलों की जीवन्त मूर्ति हैं। आप पूर्ण ज्ञानवान् हैं और संसार के अविद्या आदि बन्धनों से मुक्त हैं।

आप सच्चे सत्य सनातन धर्म का स्वरूप समझाने के लिए अवतरित हुए हैं और मानव कल्याण के लिए एकाकी पदयात्रा करते रहे हैं।

भगवन्! आप ने मानवजाति पर दो प्रकार से उपकार किया है। एक, आपने प्रवचनों में तथा स्वरचित "**आध्यात्मिक जीवन पद्यावली**" आदि ग्रन्थों में आध्यात्मिक जीवन के स्वरूप, उसके लक्ष्य और महत्त्व तथा आध्यात्मिक जीवन की साधना की पद्धति एवं उसके लिए अपेक्षित बलों का तथा उसमें आने वाले विघ्नों का अति सरल और प्रामाणिक श्रुतिसम्मत विवेचन प्रस्तुत किया है। दूसरे, जो बात और भी अधिक महत्त्वपूर्ण है वह यह है कि जिस आध्यात्मिक जीवन का पूर्ण स्वरूप आपने अपनी वाणी से समझाया है वैसे ही जीवन का एक निर्दोष दृष्टान्त अपने जीवन से साधकों के सामने
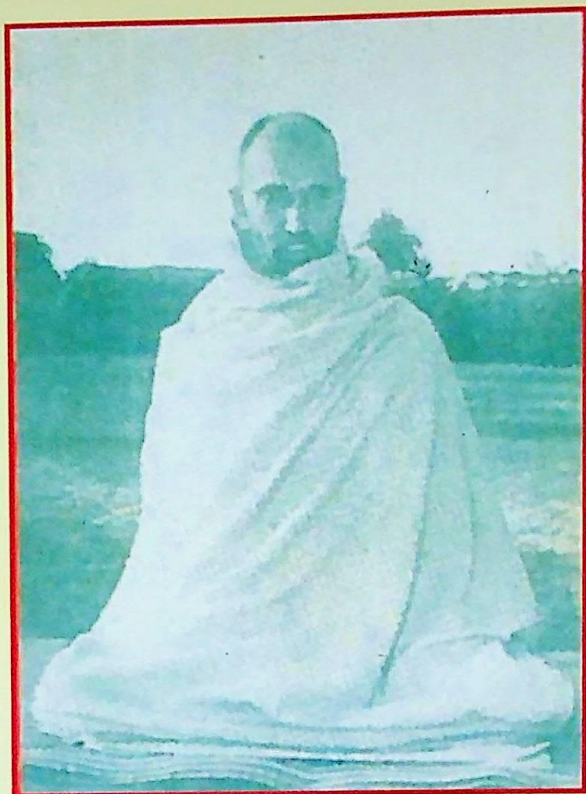
पद्मासन पर विराजमान स्वामी जी महाराज
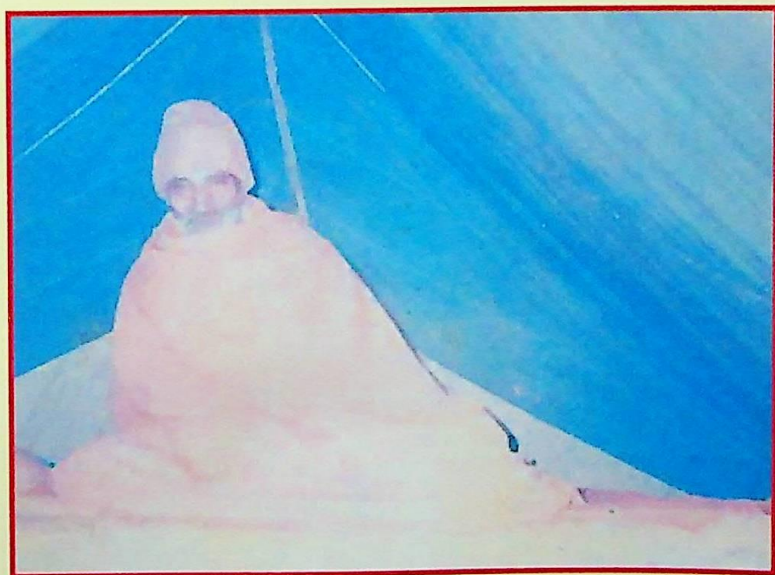
ब्रह्मसरोवर के किनारे कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय के प्रोफैसरों द्वारा सर्दियों में स्वामी जी के लिए बनाये गये अस्थाई टैंट में विराजमान स्वामी जी महाराज

प्रस्तुत किया है, जिससे आध्यात्मिक जीवन की साधना में लगा हुआ कोई साधक हतोत्साहित न हो और वह आश्वस्त रहे कि निर्दोष आध्यात्मिक जीवन कठिन भले ही हो, लेकिन असम्भव नहीं है।

आपकी "आध्यात्मिक जीवन पद्यावली" के निम्नलिखित दो पद्य (छन्द) आपके स्वरूप को अभिव्यक्त करते हैं :

1. किन्हीं ने, सत्य को कुछ देखा,
समझा और वैसे ही गाया।
हुये तो, वे ही परम महान्, जिन्होंने,
देखा सब कुछ पर मौन जताया।। (45)

2. सत्य की राह बतायी,
और उस पर चल कर दिखाया।
और चलने चलाने वालों का
इक धर्म का ही नाता बताया।। (46)

कुछ ऐसे महान् ऋषि हुए हैं, जिन्होंने अपने ध्यान में जगत्, आत्मा और परमात्मा के सत्य को देखा, उसे अपनी बुद्धि से समझा और उन्होंने जैसा समझा वैसा ही वर्णन किया। लेकिन कुछ सत्य द्रष्टा परम महान् ऐसे भी ऋषि हुए हैं, जिन्होंने सत्य के पूर्णरूप को देखा लेकिन वे उसकी अभिव्यक्ति के संबंध में मौन ही रहे क्योंकि विचारपूर्वक उनका यह निश्चित विचार बना कि उस सत्य को वाणी से नहीं समझाया जा सकता, उसे तो स्वयं ही अनुभव किया जा सकता है।

परन्तु मानव कल्याण के लिए इन ऋषियों ने उस मार्ग का विस्तृत विवेचन किया जिस पर चलकर एक साधक स्वयं सत्य का दर्शन कर सकता है और साधकों में यह विश्वास दृढ़ करने के लिए कि उन्होंने सत्य के दर्शन का जो मार्ग बताया है उस पर चला जा

सकता है, उन्होंने स्वयं उस मार्ग पर चलकर दिखाया।

स्वामी जी, उन सत्य द्रष्टा ऋषियों में आप भी एक हैं जिन्होंने परम सत्य को देखा, उसका मार्ग बताया और उस मार्ग पर चलकर दिखाया।

ब्रह्मज्ञानी महात्मा ब्रह्मस्वरूप ही है (ब्रह्मविद् ब्रह्म एव भवति)। हम संसारी आपके स्वरूप की स्तुति कैसे कर सकते हैं ? हम ने इतना ही देखा है कि आप सब भगवद्गुणों से विभूषित ऐसे एक विरल महात्मा हैं जो सबमें वासुदेव के दर्शन करते हैं।

आप जैसे विरल महात्मा के बारे में ही भगवान् श्री कृष्ण गीता में कहते हैं :

बहूनां जन्मनामन्ते ज्ञानवान् मां प्रपद्यते।
वासुदेवः सर्वमिति स महात्मा सुदुर्लभः।।7–19।।

अर्थात, अनेक जन्मों में ज्ञान और वैराग्य के संस्कारों का संग्रह करते हुए साधना के अंतिम जन्म में पूर्ण सत्य का ज्ञानी पुरुष अन्तरात्मारूप मुझ परमात्मा को "सब कुछ वासुदेव ही है" इस प्रकार देखता है। जो पुरुष सर्वात्मरूप मुझ परमात्मा का इस प्रकार प्रत्यक्ष करता है, वह महात्मा है; उसके समान या उससे अधिक और कोई नहीं है, अतः कहा है कि ऐसा पुरुष अत्यन्त दुर्लभ है (शांकर भाष्य)। हम आपको इसी रूप में देखते हैं। हमारी दृष्टि में आपका जीवन श्रीमद्भगवद्–गीता के स्थित प्रज्ञ का, भगवद्भक्त का, गुणातीत, का और दैवीसम्पतसम्पन्न महापुरुष का जीवन है।

हमने आपके स्वरूप को समझने के लिए श्रीमद्भगवद्गीता का सहारा लिया क्योंकि हमने आप जैसा महात्मा नहीं देखा। आपके जीवन से इस बात की पुष्टि होती है कि गीता ने स्थितप्रज्ञ आदि के स्वरूप का जो वर्णन किया है, वैसे स्वरूप का महात्मा वास्तव में

कभी–कभी इस भूमि पर विचरता है।

हमारी यह प्रार्थना है : हे महात्मन्! आपका यह स्वरूप हमारे अन्त:करण के अन्धकार को मिटाये और हमें सन्मार्ग पर चलने की प्रेरणा और बल देता रहे।

हरि ओम् तत् सत्!

लेखक की अपनी बात

पूज्यपाद परम विरक्त ब्रह्मज्ञानी श्री दयानन्द जी का जीवन चरित लिखकर मुझे परम सन्तोष हुआ तथा अनुभव किया कि वे मेरे अभिन्न हृदय सहपाठी एवं सखा मुझ में ही लीन हैं और उन्हीं की प्रेरणा से मैं इस जीवन–चरित को लिख रहा हूँ।

इस जीवन–चरित को लिखवाने का श्रेय श्री ज्ञानचन्द गर्ग को विशेष रूप से रहा है। उनके निवेदन एवं आत्मीय आग्रह से मुझे लिखने का बल मिला। यद्यपि 97 वर्ष की वृद्धावस्था में, मैं अपने को लेखन कार्य में अशक्त समझता था, परन्तु स्वामी दयानन्द के प्रति विशेष आत्मीय भाव होने के कारण मुझे उनके जीवन–चरित लिखने में विशेष आनन्द आया।

इस त्यागी, विरागी स्वामी जी का जीवन–चरित जन–जन के हृदय को जागृत कर आध्यात्मिक पथ का पथिक बनाये यही शुभकामना है।

मेरे लेख का संशोधन वाक्य–विन्यास, विराम आदि का शोधन हमारे शिष्य ऋषभ देव तीर्थ ने किया। अतः वे भी हमारे आशीर्वाद के पूर्ण अधिकारी हैं।

स्वामी स्वयम्भू तीर्थ
धर्म संघ शिवालय
33, मनीराम मार्ग, ऋषिकेश
जिला देहरादून, उत्तराखण्ड।

पूज्य स्वामी दयानन्द जी के सम्बन्ध में पद्य

1. भगवान दास कालिया पितामह बने हैं जिनके,
उनका सौभाग्य त्रिलोक से निराला है।
जिनके पौत्र बने दयानन्द योगी प्रवर,
जिन्होंने पिलाया ज्ञान अमृत का प्याला है।
अपने भाई–बहिन कुल का उद्धार किया है,
पूज्य पिताजी को वैकुण्ठ दे डाला है।
ब्रह्मा, विष्णु, शिव के समान दिव्य ज्ञान वाला,
दयानन्द जी का चरित्र अतिआला है।

2. दशरथ ने राम, जमदग्नि ने परशुराम,
वसुदेव देवकी ने कृष्ण चन्द्र जाये हैं।
ज्ञान के निधान बलवान् बुद्धिमान् दिव्य,
अन्जनि ने भक्त हनुमान उपजाये हैं।
कश्यप अदिति ने बावन भगवान जैसे,
देवहूति कर्दम से कपिल मुनि आये हैं।
कालिया घसीटाराम सती शिवदेयी ने,
मदन के सहारे गिरि दयानन्द पाये हैं।

3. दयानन्द देते सदा दया और आनन्द,
त्याग, विराग, विराज ने पाया ज्ञान आनन्द।
पाया ज्ञान आनन्द, सभी को सब कुछ बाँटा,
ऐसा धन मिल गया, न जिसमें कोई घाटा।
जन–जन का कल्याण कृपा की निधि दे डाली,
पूज्य पिता को दी भक्ति, मुक्ति सायुज्य निराली।

4. धन्य कृतार्थ अब हुये दिव्य घसीटाराम,
शिवदेयी जीवन सफल जनिशुक ज्ञानी लाल।
पूज्य पिता शिवरूप हैं शिवदेयी धन्य–धन्य,
स्वयम् मदन आये जहाँ बनके पुत्र अनन्य।

भाग-1

स्वामी दयानन्द 'गिरि' जी महाराज
का
जीवन-चरित

लेखक:

दण्डी स्वामी स्वयम्भू तीर्थ जी महाराज

कुलं पवित्रं जननी कृतार्था
वसुन्धरा पुण्यवती च येन
अपार संवित सुख सागरेऽस्मिन्
लीनं परब्रह्मणि यस्य चेतः

वैराग्य विज्ञान विभा वरिष्ठः
पूर्णेन्दु सौन्दर्य गिरा गरिष्ठः
योगेन्द्र देवेन्द्र प्रपूज्य मानः
स्वामी दयानन्द महोदयोऽस्ति।

1. श्रीमन्त ब्राह्मण परिवार में जन्म और प्रारम्भिक जीवनः

श्रीमद्भगवद्गीता में अर्जुन भगवान् श्री कृष्ण से प्रश्न करते हैं: योग की सिद्धि अर्थात् आत्मज्ञान प्राप्त किये बिना ही यदि साधनारत किसी योगी की मृत्यु हो जाए तो उस योगभ्रष्ट योगी की क्या गति होती है ? भगवान् ने अर्जुन को आश्वस्त करते हुए कहा कि साधना व्यर्थ नहीं जाती, ऐसे योगी का अगला जन्म शुद्ध आचरण वाले श्रीमान् पुरुषों के घर में होता है। **शुचीनां श्रीमतां गेहे योगभ्रष्टोऽतिजायते।** स्वामी दयानन्द 'गिरि' जी महाराज के जन्म पर भगवान् का उपर्युक्त कथन चरितार्थ होता है।

पंजाब प्रान्त में भारतीय संस्कृति, धर्म और विद्या की प्राचीन परम्परा को आधुनिक युग में सुरक्षित रखे हुए **होशियारपुर** नगर है जहाँ अनेक धर्मनिष्ठ परिवार रहते आए हैं। इन्हीं परिवारों में से पवित्र धर्माचरणवाला एक सम्पन्न सारस्वत ब्राह्मण परिवार **श्री भगवानदास कालिया** जी का था। श्री भगवानदास कालिया जी के सुपुत्र **श्री घसीटाराम** जी थे, जिनकी पत्नी श्रीमती **शिवदेयी** धर्म–कर्म करने वाली थी। इसी परिवार में गौरी शंकर कालिया और

श्री पुन्नूमल कालिया भी सदस्य थे।

जिस ब्रह्मज्ञानी महापुरूष का यह जीवन–चरित लिखा जा रहा है उनके पिता बनने का सौभाग्य श्री घसीटाराम राम जी को और उनकी माता बनने का गौरव श्रीमती शिवदेयी को प्राप्त हुआ था। श्री घसीटाराम जी एक प्रतिष्ठित सिविल इंजीनीयर थे। इनके श्री मुनीलाल, श्री मदनलाल और श्री रतन चन्द शर्मा तीन पुत्र थे और सुश्री कौशिल्या और सुश्री बिमला दो पुत्रियाँ थी। यह सम्पूर्ण परिवार चरित्रवान् लोगों का था और यह साँसारिक दृष्टि से भी सम्पन्न और खुशहाल था।

श्री घसीटाराम जी के तीन पुत्रों में से मंझला पुत्र श्री मदनलाल, जिनका जन्म 19 मार्च सन् 1919 में होशियारपुर (पंजाब) में हुआ, यौवनावस्था के प्रारम्भ में ही विरक्त होकर परिव्राट् बन गए और यही आगे चलकर स्वामी दयानन्द 'गिरि' नाम के ब्रह्मज्ञानी योगी भिक्षु महात्मा बने।

2. वैराग्य और परिव्रज्या:

स्वामी जी की सहोदरा बहन श्रीमती बिमला भनोट ने स्वामी जी के बचपन के बारे में एक पत्र में जो लिखा है उसका संक्षेप इस प्रकार है:

स्वामी जी, जन्म से भाई मदन लाल, की पाँचवी कक्षा तक की पढ़ाई होशियारपुर में हुई और दसवीं कक्षा उन्होंने **सरगोधा** (अब पाकिस्तान) के हाई स्कूल से पास की। यद्यपि मदनलाल बहुत कुशाग्र बुद्धि के थे, लेकिन वे अपना अधिक समय स्कूल की पढ़ाई में न लगाकर धार्मिक पुस्तकों के पढ़ने में लगाते थे और उन्हें अपने कमरे में अकेले रहना अच्छा लगता था। आठवीं कक्षा में ही उन्होंने
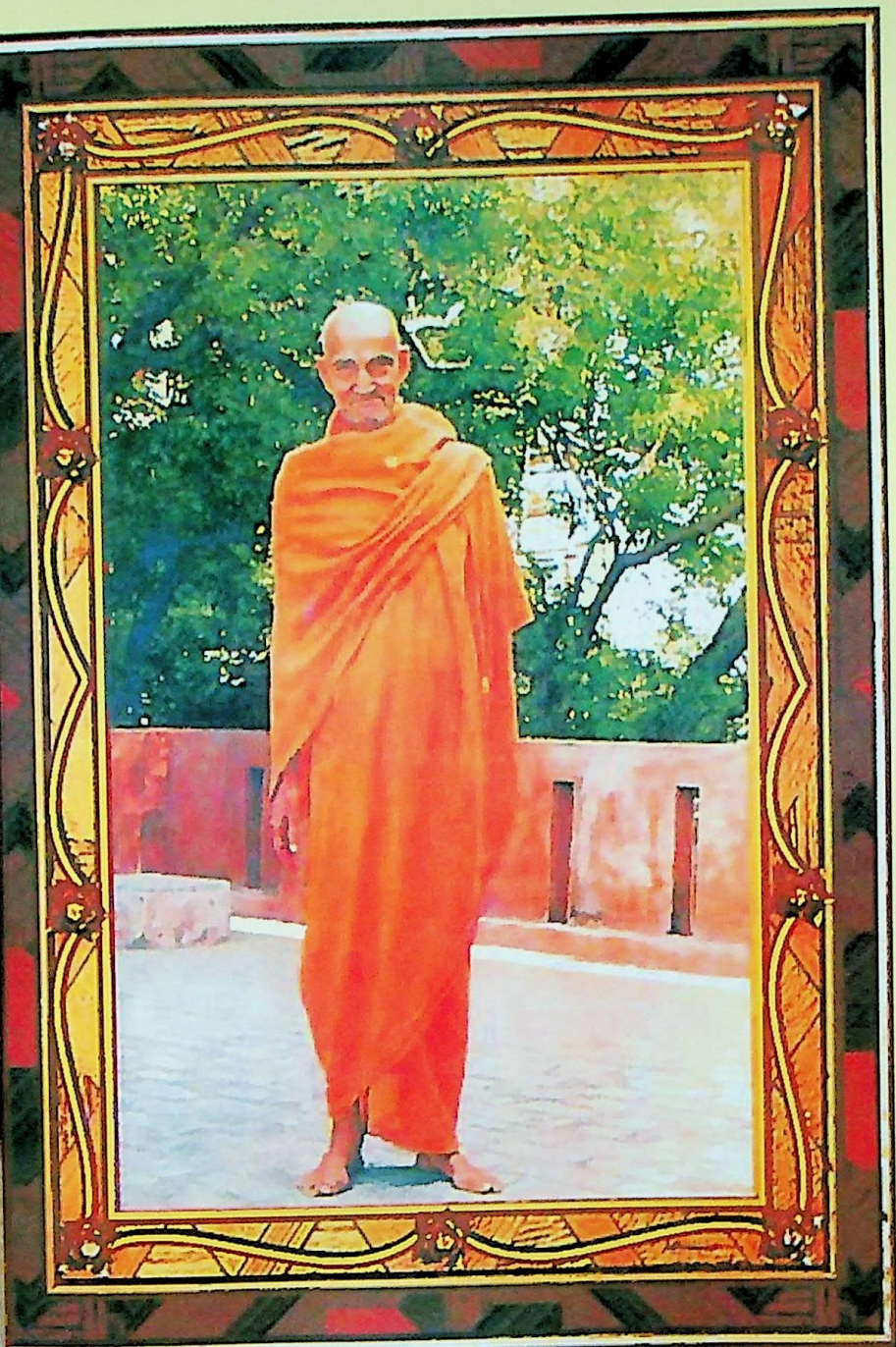
कराला गांव (दिल्ली-81) की कुटिया में चबूतरे पर खड़े हुए स्वामी जी महाराज

गीता पूरी पढ़ी थी और उसके 700 श्लोकों को कागजों पर लिखकर चाँदी के ताबीजों में रखकर दाँए कन्धे के पास बाँह में बाँध रखा था।

दसवीं कक्षा के बाद उन्होंने आगे पढ़ने से मना कर दिया और पिता जी को कहा कि वे घर पर ही घर के कामकाज की देखभाल करेंगे। पिता जी प्रसन्न हुए कि उनका यह पुत्र तो उनके साथ ही रहेगा। घर का सारा हिसाब–किताब रखने की जिम्मेदारी उन्हें दे दी गई। पिता जी को उन पर बहुत विश्वास था। भाई मदनलाल बहुत निपुणता से सब काम करते थे। लेकिन उन्हें एकान्त प्रिय था। एकान्त में क्या भजन करते या क्या ध्यान करते इसका पता दूसरों को नहीं था। वह माता जी से प्रायः हरिद्वार के बारे में पूछा करते थे। वह 10 अप्रैल 1938 को 19 वर्ष की अवस्था में मेला देखने के बहाने अपने जेब खर्च के रुपए जो उनके पर्स में थे उनको लेकर और पिता जी के जो रुपए उनके पास रहते थे उन्हें सुरक्षित छोड़कर घर से निकल गए और घर के एक सदस्य के रूप में कभी नहीं लौटे, हाँ एक संन्यासी महात्मा के रूप में तो बाद में आते रहते थे। जब मदनलाल घर से चले गए तो उन्हें कई दिनों तक विभिन्न स्थानों में ढूँढा लेकिन उन का कुछ पता नहीं चला। तीन साल बाद उनका पता चला।

सुधी पाठक इस बात पर ध्यान देंगे कि पूर्व जन्मों की साधना के फलीभूत होने पर जिन महापुरुषों में यौवनावस्था में ही वैराग्य परिपक्व हो गया वे ही साधना करके पूर्ण सिद्धि पा सके। श्री रमणमहर्षि जन्म से, श्री वेंकटरमण लगभग 18 वर्ष की अवस्था में घर–बार छोड़कर विरक्त हो गए थे। सिद्धार्थ गौतम (बुद्ध) 29 वर्ष की अवस्था में जीवन के सत्य की खोज में घर से निष्क्रमण कर गए थे।

श्री मदनलाल को जो तीव्र वैराग्य 19 वर्ष की अवस्था में हुआ वह उनके पूर्व जन्मों की साधना का फल था।

मदन लाल सत्य की खोज में घरबार छोड़कर 1938 में हरिद्वार में होने वाले कुम्भ के मेले से पहले वहाँ पहुँच गए, वहाँ साधुसंगत करते हुए उनकी भेंट एक साधुमण्डली से हुई जो **श्री सिद्ध बाबा श्याम 'गिरि' सवाई** की परम्परा के थे। सिद्ध बाबा श्याम 'गिरि' सवाई जी महाराज औरंगजेब के समय में हुए थे। वे सिद्ध बाबा अनेक आध्यात्मिक शक्तियों के पूर्ण योगी थे। ऐसा स्वामी जी ने कृपा करके एक दिन अपने प्रवचनों में एक घटना का वर्णन करते हुए बताया भी था। उनकी समाधि यमुना जी के तट पर पूर्वी दिल्ली–53 में अभी भी स्थित है। सिद्ध बाबा श्याम 'गिरि' की समाधि के बारे में जानकर मदन लाल में वहाँ पहुँचने की प्रबल इच्छा हुई और वे घूमते हुए कुछ दिनों में सिद्ध बाबा की समाधि पर पहुँचे और वहाँ कुछ दिन अपनी साधना करते रहे। कुछ दिन वहाँ रहने के बाद मदन लाल अन्तर्हृदय में प्रभु मिलन की अभिलाषा लिये पदयात्रा के कष्टों को नगण्य समझकर यमुना जी के किनारे–किनारे पैदल चल दिए। दृष्टि तो थी भगवत् प्राप्ति की और तीव्र अभिलाषा थी ऐसे सिद्ध सन्त की खोज की जो उन्हें लक्ष्य प्राप्ति का मार्ग दिखा दे। पद यात्रा करते–करते मदन लाल मथुरा पहुँच गए। गर्मी के दिन थे। सूर्य भगवान् अपनी उष्ण किरणों से भूतल को तप्त कर रहे थे। यमुना तट पर जाकर उन्हें कुछ शान्ति मिली। एक शिलाखण्ड पर जाकर लेट गए और सो गए।

सायंकाल एक पंडित ब्राह्मण आया और पूछने लगा कि आप कहाँ से आये हो, कहाँ जाओगे, यहाँ क्यों पड़े हो? इन्होंने कहा, "मैं

बेसहारा पथिक हूँ और सहारा खोज रहा हूँ।" ब्राह्मण ने कहा किस का सहारा चाहते हो? इन्होंने कहा जो सारे विश्व को सहारा देता है और जो अखिल कोटि ब्रह्माण्डों का निर्माण, पालन और लय करता है, उसी को खोज रहा हूँ, उसी का सहारा चाहता हूँ। वो मुझे इतना आत्म बल दे जिससे मैं उसे पा सकूं। पंडित जी ने कहा कुछ खाया है? उन्होंने कहा कि नहीं, आज सवेरे से कुछ भी नहीं मिला। पंडित जी ने एक पत्तल पर पूरी और साग रखकर दिया। उसी समय एक लड़का वहाँ पर आ गया और उनसे पूछने लगा कि तुम किसकी खोज में हो? उन्होंने कहा–"सिद्ध सन्त की खोज में हूँ जो मुझे ईश्वर से मिला दे।" लड़के ने कहा क्या क़ोई सिद्ध सन्त मिला? उन्होने कहा, नहीं। लड़का बोला, "मैने सुना है कि आगरा के लोग जानते हैं कि सिद्ध सन्त कहाँ है। यमुना तट पर एक झोपड़ी है। वहाँ एक सिद्ध सन्त रहते हैं। यमुना पार ताजमहल है।" यह कहकर वह बालक चला गया। चरित्र नायक मदन लाल वहीं सो गये। रात्रि में शयन करने के पश्चात् प्रातः उठकर चल पड़े। चलते–चलते यमुना तट पर देखा कि एक कृषक झोंपड़ी डाले है और अपना कार्य कर रहा है। मदन लाल को देखकर वो कृषक झोंपड़ी से बाहर आया और बोला, "इस रेतीले मार्ग से तुम कहाँ जा रहे हो? मध्याह्न की चिलचिलाती उष्ण धूप तथा रेतीली गर्म भूमि में चलते तुम्हें कष्ट नहीं हो रहा? अब यहाँ झोंपड़ी में बैठकर विश्राम कर लो।" मदन ने कहा, "मेरे प्रति आपकी सहानुभूति के लिए धन्यवाद, परन्तु मुझे जो लगन लगी है, ईश्वर से मिलने की। अपने प्रियतम के वियोग में प्रियतमा को जैसे अपार दुःख होता है वैसे ही हमें अपने प्रभु मिलन की उत्कट इच्छा के सामने यह उष्णता कष्ट नहीं देती।" सुना है, यमुना के तट पर एक सिद्ध सन्त रहते हैं, मैं उन्हीं से मिलने जा रहा हूँ। "किसान ने कहा

ठीक है। यहाँ से थोड़ी दूर यमुना जी हैं, वहीं तट पर सन्त रहते हैं। थोड़ा विश्राम कर लो, क्लान्त–श्रान्त से दिखाई पड़ रहे हो।" मदन वहाँ किसान की बात सुनकर बैठ गया तथा विश्राम किया। किसान ने खेत से खरबूजे लाकर खिलाये। खरबूजे खाकर एवं विश्राम करके वो आगे चल दिया। किसान ने मार्ग बता दिया। एक मील चलने के बाद उन्हें यमुना जी मिल गई। उसके नीले जल में कृष्ण के स्वरूप का ध्यान करके वो आत्म विभोर हो गये। यमुना की उत्तरङ्गावली मानो आह्वान कर रही हो। यमुना को प्रणाम करके तट पर गये वहाँ उन्होंने देखा एक छोटी कुटी है। कुटी में जाकर देखा कि एक सन्त एकाकी आसन पर बैठे हैं, उन्हें देखकर मन में शान्ति प्राप्त हुई। उन्होंने साष्टांग प्रणाम किया। सन्त ने उनकी ओर मधुर भाव से देखा और कहा– "यहाँ क्यों आये हो?" सन्त की मधुर वाणी सुनकर मदन का हृदय आर्द्र हो गया और भाव विभोर होकर बोले आपकी शरण में आया हूं। सन्त बोले क्यों? उन्होंने कहा आपकी कृपा से भगवत् प्राप्ति हो सकेगी। सन्त ने कहा बिना जाने मुझ पर तुम्हें कैसे विश्वास हो गया। वह बोले अन्तःकरण की भाषा असत्य नहीं होती। मेरी अन्तरात्मा आपके चरणों की शरण प्राप्ति हेतु बाध्य कर रही है। आप मुझे अपना बना लें। मै आपके नाम को उज्ज्वल करूंगा। सन्त ने कहा ठीक है। रात्रि में निवास करो।

3. नागा स्वामी द्वारा संन्यास की दीक्षा :

दूसरे दिन बृहस्पतिवार था। परम दयालु सिद्ध सन्त ने मदन लाल को दीक्षा दे दी तथा दयानन्द 'गिरि' नाम रख दिया और कहा कि विचरण करो तथा विद्या प्राप्त करो। जब तुम संन्यास के योग्य हो जाओगे तभी तुम्हें संन्यास मिल जायेगा। हाँ अपने वस्त्रों का परिवर्तन अवश्य कर लो। अब सन्तों का वेश बना लो। गेरुआ वस्त्र पहना

करो। मदन ने उनकी आज्ञा मानकर उनके द्वारा दिये गये गेरूआ वस्त्र पहन लिये और उन्हीं के पास रहकर सात–आठ माह तक नागा स्वामी जी की खूब तन–मन से सेवा की। नागा स्वामी बहुत ही सख्त स्वभाव के सिद्ध महात्मा थे। परन्तु इतना करने से भी मदन को उचित मार्ग मिलता न दिखाई दिया, अतः वहाँ अधिक दिन ठहरना उचित नहीं समझा। नागा स्वामी की आज्ञा लेकर वह वहाँ से चल दिये।

4. हरिद्वार में ब्रह्मचारी स्वयम्भू तीर्थ से भेंट :

कुछ महीने भ्रमण करने के बाद वे हरिद्वार पहुँचे और विद्वान् संन्यासी की खोज करने लगे, क्योंकि वे विद्या प्राप्त करना चाहते थे। भगवत् प्राप्ति में विद्या भी सहायक है ऐसा उन्हें अनुभव हो रहा था। हरिद्वार में नागा सन्तों के अखाड़े थे, परन्तु वहाँ कोई विद्वान् नहीं मिला। कई सन्तों से मिले परन्तु सन्तोष नहीं हुआ। एक सन्त ने कहा, यदि तुम्हें विद्या प्राप्त करनी है तो ऋषिकेश जाओ वहाँ कैलाश आश्रम है, उस आश्रम में विद्वान् सन्त रहते हैं, वहाँ तुम्हारी जिज्ञासा भी पूरी होगी। वहाँ गंगा तट में शीशमझाड़ी है जहां विरक्त संत रहते हैं और योगी सन्त भी हैं। वहाँ आपकी योग की जिज्ञासा भी पूरी हो जायेगी। दयानन्द जी के मन में योगी और ज्ञानी दोनों ही बनने की प्रबल इच्छा थी। वह विचार करने लगे कि ज्ञानी ही परमात्मा को जान सकता है और योगी ईश्वर को देख सकता है।

"सा विद्या या विमुक्तये" तथा **"पश्यन्ति यम् योगिनः"** का दृढ़ संकल्प लेकर वह ऋषिकेश को पैदल ही चले दिये। मार्ग में सत्यनारायण भगवान् का मन्दिर मिला वहाँ कुछ विश्राम किया। पुजारी ने पूछा प्रसाद पाओगे। उन्होंने कहा, "भूखा तो हूँ।" पुजारी ने प्रसाद दिया।

प्रसाद पाकर स्वस्थ हुये और ऋषिकेश को चल दिये। ऋषिकेश पहुँचकर पूछा शीशमझाड़ी किधर है। सन्तों ने उन्हें स्थान बता दिया तथा कहा कि ऋषिकेश के उत्तर गंगा तट पर एक सिद्ध सन्त रहते हैं जिनका नाम योगानन्द है। उनकी सिद्धि की बहुत प्रतिष्ठा है। दयानन्द जी यह सुनकर बहुत प्रसन्न हुये और चलकर गंगा तट पर पहुँचे। वहाँ एक ब्रह्मचारी बैठे ध्यान कर रहे थे। दयानन्द जी खड़े हो गये। ध्यान तोड़ने के बाद ब्रह्मचारी जी ने पूछा, "आप यहाँ क्यों खड़े हो? आपका क्या नाम है? और क्यों यहाँ आये हो ?"

दयानन्द जी ने कहा मेरा नाम दयानन्द है। मैं सिद्ध सन्तों से कुछ प्राप्त करने के उद्‌देश्य से यहाँ आया हूँ। विद्या और योग दोनों की प्राप्ति की जिज्ञासा है। और आपका क्या नाम है, तथा आप कहाँ रहते हो? ब्रह्मचारी जी बोले, "मैं ब्रह्मचारी हूँ, मेरा नाम **स्वयम्भू** स्वरूप है, मैं कैलाश आश्रम में रहता हूँ।" दयानन्द जी ने कहा, "क्या मैं वहाँ रह सकता हूँ ?" ब्रह्मचारी ने कहा, "हाँ ! परन्तु आश्रम के अध्यक्ष की आज्ञा प्राप्त करनी होगी।" दयानन्द ने कहा, आप मेरी सहायता कर दें, आपके सहयोग से मुझे अध्यक्ष की आज्ञा प्राप्त हो सकती है, ऐसा मुझे आत्मविश्वास है। ब्रह्मचारी का हृदय भी उन्हें देखकर आत्मीयता का अनुभव करने लगा। वो बोले ठीक है, मुझ से जो होगा वह मैं आपके लिये सहयोग करूँगा। फिर दोनों साथ–साथ कैलाश आश्रम आये। उस समय कैलाश आश्रम के अध्यक्ष स्वामी **विष्णु देवानन्द** जी थे। ब्रह्मचारी स्वयम्भू स्वरूप ने बड़ी विनम्रता से अध्यक्ष महोदय से प्रार्थना की, "महाराज यह बड़े अच्छे सन्त हैं और मेरे परिचित हैं, अच्छे शिक्षित भी हैं, विद्या प्राप्ति की अभिलाषा लेकर यहाँ आये हैं।" अध्यक्ष महोदय ने ब्रह्मचारी की रुचि देखकर कहा

ठीक है। अपने कमरे के निकट वाले कमरे में इन्हें ठहरा दो। दयानन्द जी को स्थान मिल गया वह बड़े प्रसन्न हो गये।

इस प्रकार, दयानन्द और मेरी (स्वयम्भू स्वरूप ब्रह्मचारी की) घनिष्ठता बढ़ गई। आत्मीय एवं सौहार्दपूर्ण वातावरण में दयानन्द जी रहने लगे और वहाँ विद्वान् सन्त के सान्निध्य से दयानन्द की विद्या प्राप्ति की जिज्ञासा पूरी होने लगी।

5. कैलाश आश्रम में सन्तों से संपर्क :

फिर हमारे बीच योग की चर्चा चलने लगी। काशी से कुछ योगी लोग आये थे। मैंने (ब्रह्मचारी स्वयम्भू स्वरूप ने) बताया कि प्रणवानन्द जी बहुत अच्छे योगी हैं तथा योग क्रियाएं सिखाते भी हैं। उनसे योग क्रिया सीखी जाये। दयानन्द जी तो पहले से ही योग के जिज्ञासु थे, तत्काल तैयार हो गये। हम दोनों प्रणवानन्द जी के पास गये और अपनी इच्छा प्रकट की। योग्य शिष्य को पाकर गुरु भी बहुत प्रसन्न होता है और अपनी विद्या देकर कृतार्थ होता है। प्रणवानन्द ने योग शिक्षा देने की स्वीकृति दे दी।

कैलाश आश्रम के उत्तर में एक झरना है जो जंगल के बीच में है। वहाँ बड़ी पवित्रता और शान्ति है। हम दोनों प्रणवानन्द जी से यौगिक क्रियायें सीखने लगे। योग्य अधिकारी शिष्य शीघ्र ही गुरु से विद्या प्राप्त कर लेता है। दो महीने में नौलि, धौति, नेति, बस्ती, शंख प्रक्षालन, गजकरणी आदि सभी यौगिक क्रियायें सीख लीं। दयानन्द ने पूछा क्या आप वज्रौली जानते हैं। प्रणवानन्द ने कहा, "नहीं, मैं खेचरी तक ही जानता हूँ।" दयानन्द खेचरी का अभ्यास करने लगे। उसमें दोहन, चालन, छेदन आदि करना पड़ता है। अपने को इस खेचरी मुद्रा में कोई रुचि नहीं थी। अतः हमने नहीं सीखी। इस प्रकार

योग क्रिया का कार्यक्रम समाप्त हो गया।

6. सिद्ध सन्त बनने का मोह भंग :

स्वयम्भू स्वरूप तथा दयानन्द जी की घनिष्ठता बढ़ती गई। ब्रह्मचारी ने एक दिन हंसकर कहा, आप सिद्ध बनना चाहते हो तो एक सिद्ध सन्त के पास चलो। पहले वो सिद्ध सन्त यहीं कैलाश आश्रम में रहते थे। उनका नाम नागा हरिद्वार 'गिरि' है। यहाँ आश्रम में उच्छिष्ट पात्रों को स्वयं मांजने की परम्परा है। उन्होंने इसका विरोध किया, वो अपने जूठे बर्तन स्वयं नहीं धोना चाहते थे। आश्रम के इस नियम को तोड़ भी नहीं सकते थे। अत: विरोध करके चले गये। दयानन्द ने पूछा अब वो कहाँ हैं? मैंने कहा अब वे कन्नौज के निकट छिबरा मऊ ग्राम के बाहर एक बगीचे में रहते हैं।

पता लगा कि वो सिद्ध सन्त एक तख्त पर मच्छरदानी लगाकर बैठे रहते हैं। जो गृहस्थ उनके पास इच्छा लेकर आता है उसे गाली देते हैं तथा दो–चार डंडे मारते हैं। उनकी गाली और डंडे की मार से दर्शन करने वाले इच्छुक की इच्छा पूरी हो जाती है और सारे कार्य पूरे हो जाते हैं। जब वो नागा हरिद्वार 'गिरि', इच्छुक गृहस्थ से कोई बात नहीं करता तो उस गृहस्थ का कार्य सिद्ध नहीं होता। स्वयम्भू तीर्थ ने कहा, मैं कानपुर जाया करता हूँ। जब वहाँ जाता हूँ तब उस नागा हरिद्वार 'गिरि' के पास अवश्य जाता हूँ। उनके पास खूब रुपया चढ़ता है। पांच सौ रुपया वह प्रतिमास कैलाश आश्रम को भेजते रहते हैं।

दयानन्द जी को ऐसे सिद्ध सन्त से कुछ सीखने की इच्छा थी, बोले, "चलो अवश्य ही उनके दर्शन करुंगा।" हम दोनों चल दिये। दूसरे दिन बारह बजे नागा हरिद्वार 'गिरि' के पास पहुंचे परन्तु वहाँ
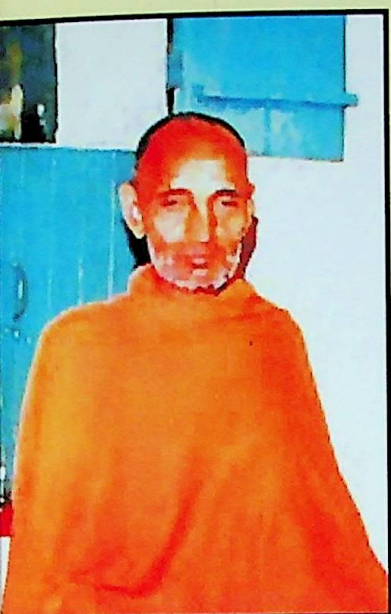
ला सेवा राम की बगीची (जगाधरी, हरियाणा)
में बनी कुटिया में स्वामी जी विराजमान
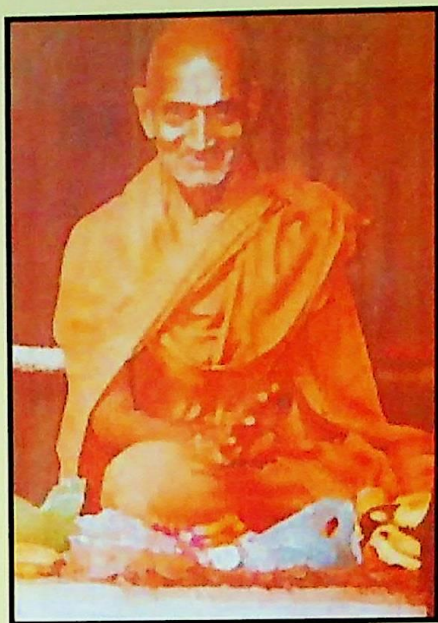
जगाधरी (हरियाणा) में गुरु पूजा के समय
लाला सेवा राम की बगीची में
बाहर तख्त पर विराजमान स्वामी जी महाराज,
भक्तों को आशीर्वाद देते हुए

म्बाला शहर में राय साहब की बगीची में बनी कुटिया
के अन्दर जाने का प्रवेश द्वार
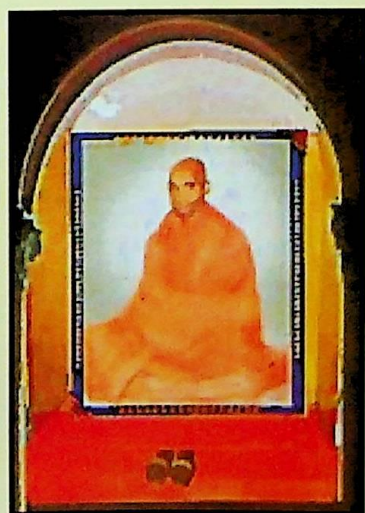
राय साहब की बगीची, अम्बाला शहर
(हरियाणा) में बनी विरक्त कुटि के अन्दर
पद्मासन पर विराजमान स्वामी जी महाराज

करते हुए कहा, "जैसे आपके दो पुत्र अपने–अपने कार्यों में जुटे हुए हैं, वैसा ही संन्यास को मेरा कार्य ही समझ लीजिये।" और मैं आपसे यह वायदा करता हूँ कि "जैसे आपके दूसरे पुत्र आपको मिलने आएंगे, मैं भी साल में एक बार अवश्य आपको मिलने आऊँगा और जब भी सेवा की जरूरत पड़ेगी तब भी आऊँगा।" उन्होंने अपना यह वायदा माता–पिता के जीवन के अन्त तक निभाया।

पिता जी ने होशियारपुर (पंजाब) में बाहर की ओर चण्डीगढ़ रोड पर अपने फार्म हाउस में सन् 1949-50 में एक कुटिया बनवा दी थी, जो अब भी स्थित है। उसका नाम *'गिरि कुटीर'* रख दिया। यहाँ आकर यदा–कदा वह ठहर जाते थे। अपने वचन के अनुसार, हर वर्ष माता और पिताजी को मिलने आते रहे। चौमासा और कभी–कभी सर्दी के दिनों में भी आकर रह जाते थे।

मदन का छोटा भाई श्री रतन चन्द शर्मा (सेवानिवृत्त चीफ–इंजीनियर, पी०डबल्यू०डी, हरियाणा, चण्डीगढ़) अपने भाई से मिला। मदन पहले उसे बहुत प्यार करते थे, अब साधारण उपेक्षापूर्वक बातचीत की और उसे ध्यान–भजन करने का उपदेश दिया। छोटा भाई उनके लिये कपड़े लेकर आया और कहा ये स्वच्छ धुले कपड़े पहन लो। दयानन्द ने कहा यह कपड़े स्वच्छ नहीं हैं, हमारे मलिन वस्त्र ही परम पवित्र हैं, इन्हें मैं स्वयं धोता हूँ और इन्हें पहनकर भजन करता हूँ। छोटे भाई ने कहा कि संतो के संग में क्या सिद्धि है जो मुझे इतना प्यार करने वाला भाई मुझसे विरक्त हो गया। दयानन्द जी ने मुस्कराकर कहा ये सिद्धि तो संतो के सत्संग से प्राप्त हो सकती है। तुम भी संतों का सत्संग किया करो।

दयानन्द जी तीन दिन शाहपुर (पाकिस्तान) में रहे, सभी रिश्तेदारों

से मिले और सभी को प्रसन्न किया। तीन दिन बाद श्री घसीटाराम जी दयानन्द जी को लेकर और साथ में फल, मिष्ठान, वस्त्र आदि उपहार लेकर महामण्डलेश्वर की सेवा में उपस्थित हुये।

दीन होकर अश्रु भरे नयनों से पिता ने अपने पुत्र को गुरुदेव के चरणों में सौंप दिया। उस समय करुणामय वातावरण बन गया। दयानन्द जी को भी अपने पिता का दुःख द्रवित कर रहा था। परन्तु दृढ़ संकल्पी लक्ष्य प्राप्ति की अभिलाषा वाले साधक को यह बाधायें विचलित नहीं कर पातीं। पिता घसीटा राम ने कहा, गुरुवर! एक बात मैं पूछना चाहता हूँ। जब ये छिपकर घर से निकल भागे थे, उस समय सम्पूर्ण परिवार बहुत दुःखी हुआ था, मैं अगाध विषाद में डूब गया था और इन्हें खोजने के लिये मारा–मारा घूमता रहा; प्रायः सभी तीर्थों में खोजा क्योंकि अनुमान था कि यह किसी तीर्थ में साधु सन्तों के अखाड़ों में होंगे। मन्दिरों में जाकर मनौतियां मनाईं कि मदन लाल मिल जाये, हम लोगों को इतना कष्ट पहुँचाया, क्या इसको पाप नहीं लगेगा? दयानन्द गुरुजनों के सामने कुछ बोलना नहीं चाहते थे। परन्तु महामण्डलेश्वर का संकेत पाकर बोले, पिताजी, आपके इस पर्यटन से पाप क्यों होगा, इससे तो पुण्य ही प्राप्त हुआ होगा। आपकी प्रवृत्ति आर्यसमाजी जैसी थी, आप कभी तीर्थों में नहीं जाते थे, मुझे खोजने के बहाने से आप ने सभी तीर्थ कर लिये। मन्दिरों की मूर्तियों पर विश्वास किया, मनौतियां मांगी, गंगा आदि पवित्र नदियों में स्नान किया। आपको तो मेरे वियोग में पुण्य ही पुण्य प्राप्त होता रहा। घसीटाराम जी चुप हो गये और अपने को लुटे हुये व्यापारी की भांति सर्वस्व खोकर घर वापस आ गये।

9. जम्मू कश्मीर की यात्रा और ऋषिकेश वापसी :

सत्संग भजन चलता रहा, अध्ययन भी होता रहा। वहाँ सत्संग में रावलपिण्डी (पाकिस्तान) के लोग भी आये हुए थे। सभी सन्तों का विचार अमरनाथ जी की यात्रा का बन गया। रावलपिण्डी से आये भक्तजनों ने कहा, कि पहले रावलपिण्डी चलो वहाँ से काश्मीर और फिर अमरनाथ की यात्रा होगी। हमारी सन्त–मण्डली, रावलपिण्डी के भक्तों के साथ उनकी गाड़ियों से रावलपिण्डी पहुँच गई और वहाँ पर ठहरने का बड़ा ही अच्छा प्रबन्ध मिला। रामबाग में हम लोग ठहरे। वहाँ भी भक्तगण आने लगे तथा कथा होने लगी। कुछ दिनों के बाद उन्हीं लोगों के प्रबन्ध से हम सभी सन्त लोग श्रीनगर गये। वहाँ काश्मीर के प्रसिद्ध स्थानों के दर्शन किये। खीर भवानी, झेलम नदी का उद्‌गम आदि अनेक दर्शनीय स्थानों पर हम लोगों ने भ्रमण किया। मटन में भी पन्द्रह दिन ठहरे। क़श्मीर तो भारत का सौन्दर्यपूर्ण स्वर्ग कहा जाता है। वहाँ के राजा हरि सिंह का प्रबन्ध रहा, उनके यहाँ केसर होती है। उन्होंने पहलगांव पहुँचा दिया, वहाँ दो महीने रहे। वहाँ से हम लोग अमरनाथ जाने के लिये उस दिन शेषनाग रात्रि भर रहे। एक दिन वहाँ रहकर पंचतरणी चले गए। पंचतरणी से अमरनाथ के दर्शन किये, वहाँ हम लोगों का पाँच दिन निवास हुआ। बाद में जम्मू वापस आ गये, जम्मू में दो महीने निवास किया। कथा सत्संग होता रहा फिर हम लोग ऋषिकेश वापिस आ गये।

10. काशी में वेद तथा दर्शनशास्त्र का अध्ययन :

उसी वर्ष प्रयाग कुम्भ था। सभी लोग ऋषिकेश से प्रयाग कुम्भ में गये। कुम्भ स्नान के बाद महामण्डलेश्वर ने हम दोनों को वेदान्त पढ़ने के लिए उस समय के प्रकाण्ड विद्वान् **श्री शंकर चैतन्य भारती** जी के पास काशी भेज दिया। हम दोनों शंकर चैतन्य भारती जी से

वेदान्त पढ़ने लगे। सभी आश्रमवासी कैलाश आश्रम ऋषिकेश आ गये। लगभग पांच–छः वर्ष तक दयानन्द जी काशी में रहे। मैं थोड़े समय तक ही काशी में रहा तथा कुछ वेदान्त पढ़कर वापस ऋषिकेश आ गया और हरिद्वार कुम्भ में मैंने दण्ड ग्रहण करके संन्यास ले लिया। दयानन्द जी ने काशी में रहते हुए वेदान्त के शीर्ष ग्रन्थ चित्तसुखी, खण्डनखण्डखाद्य, शांकरभाष्य विधिवत् पढ़े तथा न्याय, सांख्य, पूर्व मीमांसा, उत्तर मीमांसा आदि छह दर्शनों का अध्ययन किया। पूज्य पंडित रामचन्द्र दीक्षित जी से भी उन्होंने अद्वैतसिद्धि नामक ग्रन्थ पढ़ा।

11. कैलाश आश्रम में लौटना :

समस्त विद्या पारंगत होकर दयानन्द की विद्या पिपासा पूर्ण हो गई। ज्ञान गंगा के गम्भीरतम तलस्थल में पहुँचकर वह तृप्त हो गये। पुनः वह ऋषिकेश आकर साधना करने लगे और साथ में महात्माओं को धर्म ग्रन्थ पढ़ाते भी रहे। काशी से आने पर एक बंगाली कर्मचारी भी साथ आ गया था जो सोना बनाना जानता था। दयानन्द को भी सोना बनाने की इच्छा हुई। पूछने पर उसने कहा सोना बनाने के लिए सूकरी का दूध, बेल का रस, बावी की मिट्टी, तांबे के पात्रों की ज़रुरत पड़ती है तथा कई अनेक चीजें मिलाई जाती हैं। बनाने की विधि बड़ी जटिल है। मैं बदरिका आश्रम जा रहा हूँ, लौटकर सब बताऊँगा। बाद में पता लगा कि वो बदरिका आश्रम जाकर मर गया।

मैं, स्वामी स्वयम्भू तीर्थ, जब दण्ड लेकर कैलाश आश्रम आया उस समय दयानन्द के साथ कई संन्यासी बैठे हुए थे। मुझे देखते ही दयानन्द जी उठ कर खड़े हो गये। मैंने आदरपूर्वक कहा, आप विद्वत् सन्यासी हैं तथा विद्याशिरोमणि हैं। उन्होंने कहा, विद्वान् को तो शास्त्र

सम्मत् मर्यादा का पालन अवश्य ही करना चाहिये। अब आप दण्डी संन्यासी होकर जगद्गुरु शंकराचार्य के प्रतीक हैं, अतः आपका सम्मान शास्त्र सम्मत् है। वहाँ बैठे हुये अन्य संन्यासियों ने कहा, क्या हम लोग संन्यासी नहीं हैं। दयानन्द ने कहा अपने आचार्य से पूछो। वे लोग मण्डलेश्वर के पास गये और दयानन्द जी के कथन की बात कही। मण्डलेश्वर जी ने हंसकर कहा, यह वेश रोटी का ज़रिया है। सभी संन्यासी हतप्रभ हो गये। वहाँ जो दक्षिण के ब्राह्मण थे उन्होंने वह स्थान छोड़ दिया और प्रायश्चित करके दण्ड ग्रहण कर लिया। उस समय दयानन्द जी की सभी साधनायें और विद्या पूर्ण हो चुकी थीं।

12. बोधगया में बौद्ध दर्शन का अध्ययन और बौद्ध ध्यान साधना का अभ्यास :

कुछ दिनों के बाद दयानन्द बोधगया गये। वहाँ पालि भाषा पढ़ी और बौद्ध दर्शन का ज्ञान प्राप्त किया। वहाँ के बौद्धों ने उन्हें अध्यक्ष बनाने का आग्रह किया परन्तु उन्होंने अस्वीकार कर दिया और कहा मैं किसी भी बन्धन में नहीं पड़ता।

13. द्वादश ज्योतिर्लिंगों के दर्शनार्थ तीर्थ यात्रा :

बोधगया से द्वादश ज्योतिर्लिंगों के दर्शन हेतु दयानन्द जी ने पद यात्रा की। उस समय दयानन्द जी सिद्ध सन्त अपने में परिपूर्ण हो चुके थे। मार्ग में विद्वानों से शास्त्रार्थ भी हो जाता था और अन्त में सब विद्वान् दयानन्द जी से सहमत हो जाते थे।

14. राजस्थान के नाथद्वारा में सेवा और शास्त्र चर्चा :

पदयात्रा करते–करते राजस्थान में नाथद्वारा पहुँचे, वह बहुत प्रसिद्ध स्थान है। वहाँ पर भिक्षुक वेश में दयानन्द जी ने भोजन किया। वहाँ के अध्यक्ष ने कहा, आज नौकर नहीं आया है क्या आप

भण्डारे के जूठे बर्तन साफ कर देंगे। उन्होंने कहा हाँ! अभी सा
करता हूँ। दयानन्द जी ने भण्डारे के बर्तन साफ कर दिये
निरभिमानता का यह ज्वलन्त उदाहरण है। वहाँ के अध्यक्ष इन
बहुत प्रसन्न हुये और उन्हें वहाँ रहने के लिये कहा। दूसरे दि
नाथद्वारा में एक बड़ा उत्सव हुआ। बड़े-बड़े विद्वान् एकत्र हुये
परस्पर शास्त्र चर्चा चली, प्रश्नोत्तर होने लगे। दयानन्द जी भी स
के पीछे मंच के पास छिपकर बैठ गये। जब शास्त्रार्थ हो रहा था, त
वो बीच में उठ खड़े हुये और न्यायगर्भित संस्कृत बोलने लगे त
कहा, "आप लोग प्रश्न ही गलत करते हैं तो फिर उत्तर सही कै
होगा?" दयानन्द जी की न्याय सम्मत् धारा प्रवाह गम्भीर देववा
सुनकर अध्यक्ष एवं अन्य सभी विद्वान् चकित रह गये। अध्यक्ष
संस्कृत बोलने लगे। परन्तु दयानन्द जी की सारगर्भित संस्कृत भा
का प्रभाव सभी पर पड़ा, सभी मन्त्रमुग्ध थे। अध्यक्ष मंच से नी
उतरे और दयानन्द जी के चरणों में गिर पड़े और क्षमा मांगने ल
कहा-" इतने बड़े विद्वान् सन्त को अज्ञानवश, नगण्य समझकर मैं
जूठे बर्तन साफ कराये, इस पाप का कैसे प्रायश्चित होगा ?" फि
दयानन्द जी से बोले-"आप इस नाथद्वारा के अध्यक्ष बन जायें औ
मैं भिक्षुक बन जाऊँगा तभी इस पाप का प्रायश्चित होगा।" दयान
जी ने सहज भाव से कहा,"मैं तो एक पथिक हूँ। एक दिन यहाँ ठ
गया। साधु के लिए छोटा काम, बड़ा काम सभी एक-सा होता
सभी कार्यों में समदृष्टि रखने वाला ही सन्त होता है।" ऐसा कहक
वह वहाँ से चले गये। ऋषिकेश आकर यह घटना उन्होंने मुझे (स्वा
स्वयम्भू तीर्थ) सुनाई।

15. सन्त 'हरि गिरि' की कथा :

आगरा में एक सन्त 'हरिगिरि' रहते थे। उनके पास भक्त लो

ाते थे और वह सट्टा का नम्बर बताते थे। एक बार कुछ भक्तगण
ाये और सट्टे का नम्बर पूछा, नागा बाबा 'हरिगिरि' ने मना किया,
ब भक्तों ने बहुत खुशामद की और यमुना मैया की कसम खाकर
हा कि सट्टा खुलने पर आधा रुपया आपके आश्रम को दे देंगे।
हरिगिरि' बाबा ने उन्हें सट्टा का नम्बर बता दिया। उन लोगों को
हाँ नम्बर लगाने से तीन लाख रुपये प्राप्त हुये। उन्होंने आश्रम को
केवल चालीस हज़ार रुपये ही दिये और कहा अब आगे हमारी श्रद्धा
नहीं है। नागा ने कहा कि तुमने अपना वचन नहीं निभाया इसका फल
देखोगे। उन लोगों ने फिर सट्टे का नम्बर लगाया और हार गये और
सारा रुपया चला गया। वे लोग नागा बाबा के पास आये और सट्टे
का नम्बर पूछने लगे। बाबा जी ने डांट डपट कर भगा दिया। वो दुष्ट
लोग थे, उन लोगों ने गुण्डे बुलाये और कहा, हरिगिरि बाबा को जान
से मार डालो, तुम्हे मुंह मांगा इनाम देंगे। वे गुण्डे लोग रात में बन्दूक
लेकर बाबा की कुटिया में आये। नागा बाबा जाग गये और छत पर
चढ़ गये, उजेरी रात थी, गुण्डों ने गोली चलाई परन्तु वे खम्भों में
लगी। बाबा जी बच गये। गुण्डे बाहर निकल आये और बाबा जी छत
पर थे, बाहर से उन्होंने फिर बाबा जी पर गोली चलाई, बाबा जी के
मुख पर गोली लगी और उनके दांत टूट गये। गुण्डे भाग गये। दूसरे
दिन बाबा जी कानपुर चले गये वहाँ उनका स्वर्गवास हो गया।

16. स्वामी जी का कैलाश आश्रम छोड़ना :

स्वामी दयानन्द जी महाराज वेद, वेदांग (व्याकरण, ज्योतिष, आयुर्वेद) का ज्ञान प्राप्त कर तथा षड्दर्शनों–न्याय वैशेषिक, साँख्य–योग, पूर्वमीमाँसा तथा वेदान्त के शीर्ष ग्रन्थों का अध्ययन करके जब काशी से कैलाश आश्रम वापस आए, तब वे आश्रम के

अध्यक्ष स्वामी विष्णुदेवानन्द 'गिरि' जी के विशेष स्नेह पात्र बन गए
विष्णुदेवानन्द जी उन्हें अधिक से अधिक अपने निकट रखते औ
उन्हें बेटों से भी ज्यादा प्रेम करते थे। यहाँ तक कि शौच के लि
बाहर जाते समय भी स्वामी जी को साथ लेकर जाते थे। स्वामी ज
वहाँ वेदान्त के ग्रन्थों–विशेषकर शांकरभाष्य को पढ़ाने का कार्य भ
करते थे। विष्णुदेवानन्द जी ने स्वामी जी की विद्वत्ता, उनके पवि
सादा आचरण, उनकी तपश्चर्या और साधना की परिपक्व अवस्थ
से प्रभावित हो और अपनी वृद्धावस्था को ध्यान में रखते हुए स्वाम
जी को अपना उत्तराधिकारी बनाने और कैलाश आश्रम को उनवे
सुयोग्य हाथों में सौंपने का मन बना लिया और इस निमित्त स्वामी ज
को आश्रम के कार्यों का उत्तरदायित्व सौंपने लगे। यह बात आश्रम वे
अन्य महात्माओं को सहन नहीं हो रही थी। स्वामी जी को तो किसी
पद की चाह थी ही नहीं। जब उन्हें इस बात की भनक पड़ी तो वे
चुपचाप बिना किसी को बताए आश्रम से खिसक गए और ऊपर
हिमालय क्षेत्र में उत्तरकाशी की तरफ (वर्तमान उत्तराखण्ड) चले गए
और अज्ञात स्थान पर साधना करते रहे।

17. बदरिका आश्रम में सात महीने ध्यान समाधि और आत्मसाक्षात्कार:

इसके बाद दयानन्द जी ने समाधि लगाने का संकल्प किया और
इसके लिए बदरिका आश्रम चले गये। वहाँ ऊपर बीहड़ गुफा में रहने
लगे तथा वहाँ पर ही घोर तपस्या व ध्यान समाधि लगाई। उस गुफा में
दयानन्द जी सात महीने रहे। इन सात महीनों के दौरान दयानन्द जी
ने मुट्ठी भर चावल, नमक और हल्दी से खिचड़ी बनाकर उसे ग्रहण
करके जीवन चलाया और कई बार तो इन्होंने फूल, हरे पत्ते खाकर भी
तपस्या की। इस तरह कठिन जीवन दयानन्द जी ने गुफा में बिताया।

उस साधना के पश्चात् पुनः जब ऋषिकेश लौटे तो वह कैलाश आश्रम में नहीं रुके। मुझे मिले और अपना सम्पूर्ण समाचार बताया। मैंने पूछा सात महीने में क्या–क्या किया, कैसा अनुभव हुआ? उन्होंने अपने मन एवं अन्तःकरण की स्थिति बताई और कहा कि प्रारम्भ में दो महीने तक तो मन अशान्त रहा, एकाग्रता, ध्यान धारणा की स्थिति तीसरे महीने में बनी।

18. ध्यान समाधि में पूर्व जन्मों के दर्शन और आत्म–साक्षात्कार:

पतञ्जलि योग शास्त्र के अनुसार ध्यान के बाद समाधि से पहले एक धारणा स्थिति आती है, जिसे *तत्र संयमः* कहा गया है। उसमें जन्मान्तरीय दर्शन होता है। मुझे अपने पूर्व के तीन जन्मों के दर्शन हुये, जिसमें तीसरा जन्म वैश्य कुल में हुआ। उन जन्मों में मैंने जो क्रियायें की थीं वो भी सब दिखाई पड़ीं।

शेष दिनों में गुफा के बीच समाधि में लीन रहने पर आत्म–साक्षात्कार हुआ। साथ ही दयानन्द जी ने बताया कि जो करना था वह कर लिया, जो पाना था वह पा लिया, अब आगे करने–कराने या पाने को कुछ बाकी नहीं रहा, अब हम बेपरवाह हैं। इस प्रकार हम दोनों में हास्य पूर्ण बातें होती रहीं। इसके उपरांत हम दोनों पृथक–पृथक विचरण करने लगे। वो हिमाचल की ओर चल दिये और मै फर्रुखाबाद गंगा तट पर चल दिया। उन दिनों हमारे जीवन की भी एक विचित्र घटना हुई, उसका उल्लेख करना भी यहाँ पर आवश्यक है।

19. स्वयम्भू तीर्थ जी का अपना एक वृत्तान्त :

मकर का मेला एक महीना गंगा तट पर रहता है। यहाँ पर

अच्छे–अच्छे सन्त आते हैं। मुझे भी सन्तों के बीच प्रवचन करने का अवसर मिला। दण्डी महात्माओं ने एक सुन्दर मंच बनाया और मैं वहाँ प्रवचन करने लगा। मेरे प्रवचन का प्रभाव सभी पर पड़ा। माघ मेला, प्रतिवर्ष एक महीने लगता है। सात–आठ वर्षों तक मैं उस माघ मेले में जाता रहा जिससे सारा क्षेत्र मुझ से परिचित हो गया।

उस समय कानपुर में पद्म पति सिंघानिया ऐश्वर्य श्री सम्पन्न थे। स्वामी रामदेव परमहंस उनके गुरु थे। स्वामी रामदेव जी विद्वान् और तपस्वी थे परन्तु उनका स्वभाव दूसरे की प्रतिष्ठा देखकर ईर्ष्यालु होता था तथा दूसरे का खण्डन करके उनकी प्रतिष्ठा नष्ट करते थे। वही स्थिति उनकी मेरे साथ हुई। माघ मेले मे गंगा तट पर वह मेरे मंच पर आये और मेरा खण्डन करने लगे। मैंने भी उनका विधिपूर्वक उत्तर दिया। अन्ततः दो चार स्थानों पर उनके साथ मेरा विवाद चलता रहा, यद्यपि हम सन्त होने के कारण मर्यादानुसार परस्पर व्यवहार करते थे। जब विवाद बढ़ गया तब करपात्री जी और शंकराचार्य जी को मध्यस्थ बनाकर मेरा और स्वामी रामदेव परमहंस का आगामी वर्ष माघ के महीने में शास्त्रार्थ होना निश्चित हो गया। मैंने यज्ञ का संकल्प किया। क्षेत्र के ब्राह्मणों ने प्रबन्ध किया, दस हजार रुपया चन्दा हुआ, विशाल मंच बनाया गया। यज्ञ का कार्य होने लगा तथा प्रवचन होने लगे। स्वामी रामदेव जी भी यज्ञ में आते थे और त्रुटियों को देखने का प्रयास करते थे। समय पर करपात्री जी आये और मेरा प्रभाव और व्यवहार देखकर प्रसन्न हुये तथा स्वामी रामदेव को भी उनके विपरीत व्यवहार से पृथक् होने को कह गये। इस प्रकार करपात्री जी ने मेरा महत्व बढ़ा दिया। इसके उपरान्त जगद्गुरु शंकराचार्य जी आये, मंच पर सभी बैठे। स्वस्ति वाचन एवं

मंगला चरण होने के बाद भूमिका रूप में हृदय नाथ शास्त्री ने अभिनन्दन गीत सुनाया। स्वामी रामदेव एवं अन्य सभी का सामान्य परिचय दिया। स्वामी स्वयंभू तीर्थ ने जगद्गुरु शंकराचार्य कृष्ण बोधाआश्रम महाराज की कृपा की कृतज्ञता प्रगट की। स्वामी रामदेव को ही प्रथम बोलने को कहा गया और उनके समक्ष माइक बढ़ाया गया। उस मंच को तथा उपस्थित संत मण्डली को देखकर तथा स्वामी स्वयंभू के प्रति जगद्गुरु का आत्मीय भाव देखकर मलिन मुखाकृति स्वामी रामदेव जी भयाक्रान्त हो गये तथा अपनी प्रतिष्ठा बचाने हेतु बिना बोले ही उठकर मंच से उतर कर एकाकी चले गये। यह देखकर सभी संत मण्डली जिसमें दण्डी और परमहंस दोनों ही थे स्वामी स्वयंभू तीर्थ की जय जयकार बोलने लगे। फिर इस प्रकार स्वामी स्वयंभू तीर्थ का विजय घोष पूरे मेले भर में व्याप्त हो गया और अन्य लोग भी मंच के पंडाल में आ गये। बाद में शंकराचार्य जी ने अपने भाषण में यज्ञ की महिमा बताई तथा स्वामी स्वयंभू तीर्थ के यज्ञादि कार्य की प्रशंसा की तथा प्रतिष्ठा और गौरव को बढ़ाकर आशीर्वाद दिया। इस घटना का समाचार सर्वत्र फैल गया। ऋषिकेश, काशी, इलाहाबाद, कानपुर आदि सभी स्थानों पर इस घटना की चर्चा होने लगी। मैं जब ऋषिकेश आया तब वहाँ उत्सव मनाया गया। कैलाश आश्रम के महामण्डलेश्वर विष्णुदेवानन्द जी ने कहा कि स्वयम्भू ने कैलाश आश्रम का सम्मान बढ़ाया है।

20. स्वयम्भू तीर्थ जी और स्वामी जी की निकटता :

मैं धर्म संघ शिवालय ऋषिकेश में निवास करने लगा। और स्वामी दयानन्द जी पंजाब में अम्बाला की ओर चले गये। कभी–कभी वो इधर विचरण करते समय मुझे मिल जाया करते थे। उन्होंने आजीवन तपस्या करके संसार को ज्ञान प्रदान किया। ज्ञान और तप

की साक्षात् मूर्ति हमारे अभिन्न हृदय दयानन्द जी का पवित्र और आदर्श चरित्र कौन लिख सकता है!

एक बार मैं और स्वामी दयानन्द उत्तरकाशी गये और विचार किया कि यहीं इस वर्ष चतुर्मास किया जाये। पहले हम लोग पैदल चलते हुये देहरादून गये। वहाँ मार्ग में प्राकृतिक सौन्दर्य देखकर आनंदित होते रहे। पर्वतीय उत्तुंग शिखरों पर प्रातः कालीन सूर्य की किरणें श्वेत बर्फीले पहाड़ों पर स्वर्णिम पत्र मढ़ रही थीं। देवदारू के प्रलम्ब मान वृक्ष, उच्चता के आनन्द का संकेत कर रहे थे। निर्झर की मधुर ध्वनि सामवेद के मंत्रों जैसी सुनाई पड़ती थी। हम दोनों पदयात्रा करते हुये प्रकृति सौन्दर्य से मुक्त होकर मंसूरी पहुंचे जो पर्वतीय स्थानों में सुन्दरता की रानी है। पुष्पावली की मधुर गंध का आनन्द लेते हुये पर्वतीय दृश्य देखते रहे। दयाननद जी भावुक होकर झरने का कल–कल निनाद सुनते तथा हंसने लगते और कहते, पर्वत, झरनों के शब्दों में मंत्र पाठ कर रहा है। मैं भी उस दिव्य दृष्टि को देखकर थिरक उठा था। इस प्रकार प्रकृति सौन्दर्य से अभिभूत होकर हम लोग एक पर्वत खण्ड पर चढ़ गये, वहाँ पर एक लघु पहाड़ी नदी बह रही थी, उसका बहाव और मधुर ध्वनि हम लोग सुनने लगे तथा किनारे पर कम्बल बिछाकर बैठ गये। थके होने के कारण लेट गये और सो गये। कुछ देर बाद उठे तो दयाननद ने कहा कि स्वयम्भू जी अब तो भिक्षा का समय हो गया है। मैंने कहा कि मैं भिक्षा मांग कर लाता हूँ, आप बैठे रहें। मैं खप्पर लेकर चला गया। पास में ग्राम था, 'नारायण हरि' कहने पर पर्वतीय नारियां बाहर निकलीं और मुझसे कहा बाबा जी क्या चाहिये। मैंने कहा पूड़ी चाहिये। पर्वत पर रोटी को पूड़ी कहते हैं। उन्होंने मेरे खप्पर में भिक्षा

दे दी। मैं वापस आया तो देखा कि दयानन्द जी नहीं हैं। आश्चर्य चकित होकर इधर–उधर देखने लगा, बाद में देखा कि वह कमण्डलु लिये आ रहे हैं। मैंने कहा कि भिक्षा लाया हूँ, मट्ठा भी है। उन्होंने कहा भिक्षा ले लूंगा, मट्ठा नहीं। भिक्षा ग्रहण करने के बाद हम लोग उत्तरकाशी पहुँच गये। उत्तरकाशी प्रकृति सौन्दर्य से सजी हुई लजीली नववधू की भांति मन को मोहित कर रही थी। वहाँ संतो का मन सात्विकता से भर जाता है। वहाँ दयानन्द जी कैलाश आश्रम में ठहर गये और मैं दण्डी आश्रम में निवास करने लगा। वहाँ दयानन्द जी ने ब्रह्मसूत्र शंकर भाष्य को पढ़ाना प्रारम्भ किया। परम हंसों की भीड़ जुड़ने लगी। मैं भी उनसे ब्रह्मसूत्र सुनने के लिए जाने लगा। दयानन्द की पाठन शैली बहुत ही सुन्दर थी। स्वामी विष्णुदेवानन्द जैसा पढ़ाते थे उससे भी अच्छा दयानन्द जी पढ़ाते थे। उन दिनों उत्तर काशी में पठन–पाठन में खूब आनन्द आया। वहाँ पर हम सब महात्माओं को एक महीने तक ब्रह्मसूत्र पढ़ाया।

तदुपरान्त स्वामी दयानन्द जी ने गंगोत्री जाने की तैयारी की। मैं भी उनके साथ चल पड़ा, पर्वतीय दृश्यों को देखते हुये हम लोग ऊपर चढ़ने लगे। तुषारावृत्त पर्वत मालायें चमत्कृत कर रही थीं। कहीं–कहीं वर्षा हो जाती थी। हम लोग भीग जाते थे, तत्काल धूप निकल आती थी। ऐसा प्रतीत होता था मानों आकाश पर्वतों पर सोना–चांदी बिखेर रहा हो। मुक्ता माला से श्वेत हिमखण्ड़ पर्वत शिखर पर शोभायमान हो रहे थे। हम लोग वहीं एक पर्वत–खण्ड पर बैठ गये, वहाँ उनका झोला मेरे पास रखा था। वो पास में ही बैठे थे। मैंने उनका झोला देखा उसमें पीले रंग के खड़ाऊं थे। उन्होंने कहा– क्या करते हो खड़ाऊं मत छूना। मैं जानता था कि दयानन्द जी पक्के

तांत्रिक हैं, मैं हंस पड़ा, वहाँ हरसिल में गंगा नदी की तेज धार थी उस पर रस्सी का पुल था जिसमें बांस के डंडे थे। मैंने देखा पर्वतीय नारियां सिर पर घास का बोझा लाद कर उस रस्सी के पुल पर हिलती हुई उतर रही हैं। इस प्रकार हिल–हिलकर रस्सी पर चलना कितना खतरनाक है, मैं यह देखकर आश्चर्यचकित रह गया। दयानन्द ने कहा, यह सब अभ्यास का खेल है। हम लोग इस प्रकार अभ्यास करें तो इस पर चल सकते हैं। इसके बाद स्वामी जी ने कहा, मैं अब जा रहा हूँ। आप उत्तरकाशी लौट जाओ। उन्होंने झोला कंधे पर डाला और खड़ाऊं पहन लिये और तेज धार वाली गंगा में भूमि की भांति चलने लगे और गंगा के पार हो गये। मैं आश्चर्यचकित होकर देखता रहा, जब वह पार पहुँचे तो उनके इस चमत्कार के कारण बहुत से पहाड़ी लोग इधर–उधर से उनके पास एकत्र हो गये और उनसे मिन्नतें मांगने लगे। मैंने फिर इधर से देखा कि स्वामी दयानन्द जी ने उन खड़ाऊओं को पत्थर मार कर तोड़ दिया और चूर्ण–चूर्ण करके गंगा जी में फेंक दिया। तांत्रिक प्रयोग करके वो तन्त्र ज्ञान में रमे नहीं रहे। तन्त्र ज्ञान उनके लिए केवल एक कौतुहल था, उसे जानकर त्याग दिया। मुख्य लक्ष्य तो उनका आत्म दर्शन और ब्रह्म में लय होना था। मैं उत्तरकाशी आ गया। इसके बाद दयानन्द जी का पता नहीं चला वो गंगोत्री के बाद कहाँ गये।

एक बार गंगा तट पर मैं और स्वामी दयानन्द जी अन्तरंग बातें कर रहे थे। मैंने दयानन्द जी से पूछा आपको ध्यान में क्या–क्या दिखाई पड़ता है। वह बोले : अपनी मनोवृत्तियों का 'शमन' कर चेतनाकार वृत्ति बनाकर आत्मानन्द की अनुभूति करता हूँ। मुझ से बोले आप अपना कोई अनुभव बतायें, क्या कभी आपको भगवान् के

दर्शन हुये हैं? मैंने कहा, हाँ! दर्शन हुये हैं। उस समय आपको क्या प्रतीत हुआ? मैने कहा, भगवान् का स्वरूप तो आनन्द मात्र है। अतः अवर्णनीय आनन्द का वर्णन कैसे हो सकता है। यह तो अनुभवगम्य है। दयानन्द जी ने कहा, यह अनुभव आपको कब और कैसे हुआ?

मैने कहा, देवहूति नदी के तट पर एक बहुत ऊंचा टीला है और वहाँ एक विशाल रमणीय वृक्ष है। वह स्थान परम शान्त और रमणीय है। उस टीले पर वह वृक्ष, शंकर भगवान् के कैलाश पर्वत पर खड़े हुये वटवृक्ष की भांति मनोरम हैं। मैं उसी टीले पर एकाकी ध्यान–भजन करता था। एक दिन प्रातः ब्रह्ममुहूर्त में भाव विभोर होकर भगवान् के मंगलमय नामों का मन ही मन गायन करता हुआ पुलकित हो रहा था। प्राण और मन की गति बन्द हो गई। नेत्रों से अश्रुपात होने लगा। अन्तःकरण प्रकाश परिप्लावित हो गया। नेत्र खोले, तो भगवान् कृष्ण मोर मुकुट धारी बंसी अधरों पर धरी मोहिनी मुस्कान से आनन्द वर्षा करते हुये खड़े हैं। चारों ओर दिव्य प्रकाश है। मै स्तब्ध हो गया। अश्रु झड़ने लगे। विचित्र सी अवर्णनीय दशा हो गई। मैंने कहा प्रभो! मैं कृतार्थ हो गया, परन्तु मैं तो शिव का भक्त हूँ। शिव के दर्शन चाहता हूँ। अश्रु पोंछकर देखा तो वह झांकी अदृश्य थी। इधर–उधर दृष्टिपात किया, कहीं भी कुछ भी दिखाई नहीं पड़ा। अन्तःकरण का प्रकाश भी नहीं था, केवल तड़प शेष थी। दूसरे दिन प्रातः नित्य की भांति ध्यान करने बैठा और ब्रह्मकाराकारित वृत्ति बनाकर एकाग्र मन से देखा तो उसी वेश में वही मन मोहिनी मोहन की मूर्ति मुस्करा रही है। मैं कृत–कृत्य हो गया, अविस्मृत दशा में पहुँच गया, परन्तु वह दृश्य भी अधिक समय तक नहीं रहा। पश्चात् पुनः ध्यान लगाया परन्तु वे नटनागर विश्व विमोहन कृष्ण नहीं आये, मेरे पास बस! करुणार्द्र

हृदय और अश्रु धारा ही शेष थी।

दयानन्द जी मेरी बात को बड़े ध्यान से सुन रहे थे बोले, "स्वयम्भू तुम धन्य हो, मैं तो शुद्ध चेतन में डूब जाता हूँ और आनन्द लेता हूँ। आनन्द सिन्धु का सधिनीभूत स्वरूप मनमोहन का मधुर रूप नहीं दिखाई पड़ता।" इस प्रकार हम दोनों एक विशेष आनन्द का अनुभव उस दिन करते रहे।

एक बार मुझे ज्ञात हुआ कि भक्त ज्ञान चन्द गर्ग स्वामी दयानन्द जी के अनन्य भक्त हैं। टेलिफोन से पता लगाकर मैं अम्बाला शहर गया तथा दयानन्द जी से मिला। वहाँ हमारी उनसे अन्तरंग बातें हुईं। सन्तों का वार्तालाप अध्यात्म-परक ही होता है। उन्होंने मुझसे कहा कि मैं जब शरीर छोड़ूगाँ तब 15 दिन पूर्व आपको सूचना दे दूंगा। परन्तु उनका यह मिलन अन्तिम ही था। इसके उपरांत मुझे उनके दर्शन नहीं हुये और वे ब्रह्मलीन हो गये।

दयानन्द जी ने पूछा, क्या आपने कोई ग्रन्थ लिखे हैं मैने कहा, " मैं कोई ग्रन्थ नहीं लिखना चाहता था परन्तु भक्तों के आग्रह पर पांच-छः ग्रन्थ लिखे गये जिनमें आत्मकल्पद्रुम तथा ब्रह्म विज्ञान संहिता प्रमुख हैं। वेदान्त के गम्भीर ज्ञान को नाटकीय शैली में लिखी इन दोनों पुस्तकों का सन्त समाज में बहुत आदर है।" मैंने उन्हें उपहार रूप में दोनों पुस्तकें ससम्मान भेंट कीं।

स्वामी दयानन्द 'गिरि' जी ने संन्यास नियमों का पालन करते हुए भक्तों का मार्गदर्शन किया। यह सुखद आश्चर्य है कि इस भोगवादी कलिकाल में परम सत्य का साक्षात्कार करने वाला विरक्त संन्यासी भारतदेश में पैदल भ्रमण करता हुआ जनसाधारण से लेकर

उच्चकोटि के साधकों तक का मार्ग दर्शन अपने सादा अपरिग्रही और निरभिमानी जीवन से तथा ज्ञान गर्भित सरल वचनों से करता रहा है।

जीवन के अंतिम कुछ वर्षों में स्वामी जी अम्बाला शहर, जगाधरी–यमुनानगर, कुरूक्षेत्र (हरियाणा), चिन्तपूर्णी के पास धलवाड़ी गाँव (हि.प्र.) तथा उजड़ कुटि कराला गाँव (दिल्ली) में ही भक्तों और साधकों के मार्गदर्शन के लिए विचरण करते रहे।

21. महानिर्वाण :

दिनांक 18-11-2004 बुधवार को प्रातः लगभग 9-10 बजे श्री प्रेम मन्दिर अम्बाला शहर की देवियां सुश्री अमृत जी, साधना जी, नीलम देवी तथा प्रवीण देवी कार में ड्राइवर के साथ श्री स्वामी जी के लिये चाय, दूध ले कर आईं तो देखा कि कमरे में श्री स्वामी जी का आसन खाली है तो देवियों ने सोचा कि श्री स्वामी जी लघुशंका गए होंगे। दस मिनट इन्तजार करने के पश्चात् श्री गुरचरण ड्राईवर को भेजा कि देखो कि श्री स्वामी जी कमरे में आ गए हैं या नहीं। जब ड्राईवर कमरे में गया और साथ के स्नान वाले कमरे को खोला तो देखा कि श्री स्वामी जी भूमि पर लेटे पड़े हैं। ड्राईवर ने बाहर आकर श्री गुजराती महात्मा जी को साथ लिया और श्री स्वामी जी को उसी कमरे में पड़े तख्त पर लगे आसन पर लिटा दिया। देवियों ने श्री सुरजीत नागपाल को दूरभाष पर सारी व्यथा सुनाई तो वह तुरन्त श्री स्वामी जी की कुटिया पर पहुँच गये और उसी समय श्री ज्ञान चन्द गर्ग जी को भी दूरभाष पर कुटिया में आने के लिये प्रार्थना की। श्री गर्ग जी तथा उनका लड़का सुधीर भी आ गए। उन तीनों ने श्री स्वामी जी को बैठा कर प्रेम मन्दिर से आई चाय का भोग लगाने के

लिये दोनों हाथ जोड़कर विनम्रता पूर्वक प्रार्थना की। श्री स्वामी जी ने आधा कप चाय पीने के पश्चात् आदेश दिया कि उन्हें लेटने दो। स्वामी जी को बड़े आराम से लिटा दिया गया। स्वामी जी ने स्वयं अपने हाथों से शरीर पर भगवे कम्बल को अपने ऊपर ओढ़ा। स्वामी जी से जब पूछा गया कि स्वामी जी कोई ज्यादा चोट तो नहीं लगी, स्वामी जी ने कहा कि कोई चोट वगैरह नहीं लगी, जो थोड़ी बहुत लगी है वह अपने आप ठीक हो जायेगी। फिर स्वामी जी से भक्तों ने प्रार्थना की कि स्वामी जी कहो तो आप जी को किसी डाक्टर के पास ले चलते हैं। स्वामी जी ने जाने से बिल्कुल मना कर दिया और कहा कि हमें अकेला छोड़ दो। भक्तों को आज्ञा कर दी कि सभी चलो यहाँ नहीं रुकना। उस समय स्वामी जी बिल्कुल होश में थे। भक्त उनकी आज्ञा मानकर दूसरे कमरे में आ गये। इसके बाद बाहर से किसी ने कहा कि स्वामी जी को थोड़ा बहुत शहद दे दो। जब स्वामी जी से शहद लेने के लिए प्रार्थना की तो उस समय तक स्वामी जी यह जान गए थे कि अब उनका यह शरीर रहने का नहीं है, उन्होंने कड़े शब्दों में कह दिया कि उन्होंने शहद वगैरा कुछ भी नहीं लेना। स्वामी जी ने उसी समय खेचरी मुद्रा लगा ली और उसके पश्चात् ब्रह्मलीन होने तक मुख से कुछ भी स्वीकार नहीं किया। यह जो कुछ हुआ, सब स्वामी जी को पता था। उनका ब्लड प्रैशर बहुत बढ़ जाता था और किसी के कहने से भी अंग्रेजी दवाई बिल्कुल नहीं लेते थे। ऐसे ही एक दिन श्री सुरजीत नागपाल ने स्वामी जी से पूछ ही लिया कि स्वामी जी आप अपनी बीमारी क्या अपने आप दूर नहीं कर सकते, आप तो स्वयं भगवान् हैं, तो स्वामी जी ने इसके उत्तर में कहा था, "क्यों नहीं नारायण, लेकिन हम अपने कष्ट को दूर क्यों करें? हम

उसके विधान में दखल नहीं देते क्योंकि यह तो विधि का विधान है, उसके मुताबिक उसका विधान स्वीकार करेंगे। हाँ! एक बात जरूर है, स्वामी जी कहने लगे "नारायण! भगवान् भी यदि इस संसार में शरीर रूप में आते हैं तो उनकी गति भी अन्त में उसी तरह होगी जैसे किसी आम आदमी की।" इतना सुनकर सब चुप हो गये।

डा० महेश मनोचा जी को दूरभाष पर सारी व्यथा सुनाई। इतने में डा० मनोचा एम्बुलेंस लेकर राय साहिब की कुटिया में पहुंच गये, स्वामी जी के अनेक भक्त भी इक्ट्ठे हो गये। श्री स्वामी जी को डा० सन्त राम अरोड़ा के हस्पताल में ले जाया गया जहाँ पर उनके मस्तिष्क का सीटी स्केन किया गया तो ज्ञात हुआ कि मस्तिष्क की नाड़ी फटने के कारण खून मस्तिष्क में चला गया है। यह रिपोर्ट देखकर डा० सन्त राम जी ने श्री स्वामी जी को पी०जी०आई० चण्डीगढ़ रेफर कर दिया। पी.जी.आई. पहुंचने पर वहाँ की उनकी भक्त डॉक्टर नीलम मरवाह ने कमरे का प्रबन्ध करके उन्हें दाखिल करवा दिया और डाक्टरों की टीम ने श्री स्वामी जी का इलाज करना शुरू कर दिया। डाक्टरों ने साफ शब्दों में कहा कि यदि स्वामी जी खुद चाहेंगे तो ठीक हो जायेंगे वरना ठीक नहीं होंगे क्योंकि स्वामी जी ने अपनी जीभ को पलट कर ऊपर तालुए के साथ लगा रखा है। मुख से तो अन्दर कुछ जा ही नहीं रहा। एक डाक्टर ने तो कहा कि स्वामी जी ने अपनी जीभ पलट कर अपने तालू के साथ लगा रखी है, कहो तो इसको सीधी करके टेप लगा दें ताकि कुछ दिया जा सके परन्तु सब उपस्थित भक्तों ने ऐसा करने से मना कर दिया क्योंकि स्वामी जी ने एक बार भक्त श्री ज्ञान चन्द गर्ग को खुद बताया था कि नारायण! हमारे जो पूर्व के ऋषि थे वह महीनों कुछ नहीं खाया

करते थे, सिर्फ खेचरी मुद्रा लगा लेते थे। खेचरी मुद्रा लगाने से जैसे माँ के पेट में बच्चे को खुराक मिलती रहती है, ऐसे ही ऋषि लोगों को खेचरी मुद्रा लगाने से मिलती रहती है जिससे वे अपनी इच्छानुसार जीवन रख सकते हैं।

अन्ततः 23 नवम्बर 2004 प्रातः 4 बजे कार्तिक मास **शुक्ल पक्ष की देव प्रबोधिनी एकादशी के दिन अपनी जीवन यात्रा पूरी कर ब्रह्ममुहूर्त में प्रातः स्मरणीय परमहंस श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ श्री स्वामी दयानन्द 'गिरि' जी महाराज हजारों श्रद्धालुओं को शोक में डुबो कर ब्रह्मलीन हो गए।** बस! इसी शुभ दिन का स्वामी जी को इन्तजार था; नहीं तो स्वामी जी उसी दिन जब अम्बाला में गिरे थे, शरीर छोड़ देते। उनका पार्थिव शरीर चण्डीगढ़ से उनकी तपस्थली अम्बाला शहर लाया गया।

श्री 1008 श्री शील जी महाराज परमाध्यक्षा श्री अनन्त प्रेम मन्दिर, अम्बाला शहर तथा सहस्त्रों श्रद्धालुओं ने उन्हें श्रद्धासुमन भेंट किये। श्री शील जी महाराज ने कहा था कि श्री स्वामी दयानन्द 'गिरि' जी महाराज के ब्रह्मलीन होने पर आज धर्म जगत एक महान् त्यागी, तपस्वी, परोपकारी एवं पथ प्रदर्शक से वंचित हो गया है।

श्री स्वामी जी का पार्थिव शरीर अम्बाला शहर से दिल्ली गाँव कराला ले जाया गया और फिर दिल्ली से सायं 7 बजे उनकी इच्छानुसार हरिद्वार ले जाया गया, जहाँ वेद मन्त्रों के उच्चारण के पश्चात् भारी संख्या में उनके शिष्यों, संत महात्माओं व भक्तों की उपस्थिति में दिनांक 24-11-2004 को श्री गंगा जी के सप्तसरोवर घाट नं० 10 पर प्रातः ग्यारह बजकर पैंतालिस मिनट पर विधिवत् नीलधारा हरिद्वार में जल समाधि में लीन कर दिया गया। स्वामी जी
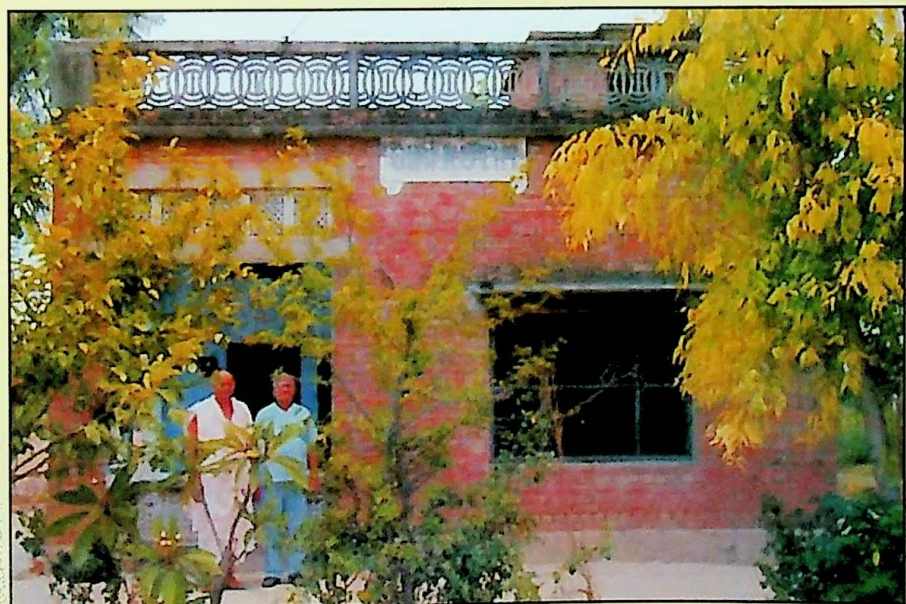
स्वामी जी के पिताजी द्वारा होशियारपुर (पंजाब) में बनाई गई 'गिरि' कुटीर

को श्रद्धांजलि देने के लिए साधन सदन के महामण्डलेश्वर स्वामी श्री गणेशानन्द जी महाराज अपने शिष्यों के साथ गंगा तट पर नीलधारा हरिद्वार में उपस्थित थे।

22. स्वामी दयानन्द जी की अन्तरंग वृत्तियाँ:

स्वामी दयानन्द जी में अभिमान नहीं था। उनकी अहंता व्यष्टिगत नहीं थी वह समष्टिगत थी। वह सभी में अपना रूप देखते थे। "आत्मवत् *सर्वभूतेषु का सिद्धान्त*" उनमें साकार रूप से था। पंजाब–सिंध क्षेत्र, हरिद्वार में भिक्षा लेने के लिये वह कंगलों की पंक्ति में खड़े हो गये। दूसरी पंक्ति तो संन्यासियों की थी। कंगले तो भिक्षा लेने में छीनाछपटी करते हैं, अतः उन पर डांट डपट भी होती है। संन्यासियों को सम्मान पूर्वक बिठाकर भिक्षा दी जाती है। क्षेत्र के अध्यक्ष ने उन्हें पहचान लिया और कहा स्वामी जी आप तो विद्वान् वीतराग योगी ब्रह्मज्ञानी हैं। आप इस पंक्ति में क्यों खड़े हैं ? दयानन्द जी ने उत्तर दिया, इसमें क्या अन्तर है। अन्न तो दोनों पंक्तियों में मिलेगा और ये अन्न इस शरीर रूपी व्याधि की औषधि है कहीं खड़े होकर यह अन्न औषधि ले ली जाये, इसमें क्या अन्तर पड़ता है। इस प्रकार उनका अभिमान रहित जीवन ज्ञानियों के लिये उदाहरण बनता है।

स्वामी जी तपस्वी, त्यागी, ब्रह्मज्ञानी व विरक्त संत थे। इन्होंने अपने जीवन को आदर्श बनाकर लोक जीवन को शिक्षा दी। इन्होंने अपने को विशेष सुखों से दूर रखा और वे संकुचित दायरे में न रहकर मात्र दस बीस–मनुष्यों के होकर नहीं रहे, अपितु सम्पूर्ण जगत् को नारायणस्वरूप समझकर सभी के होकर विचरण किया। ये अपने को सदा छिपाते रहते थे। "प्रतिष्ठा सूकरी विष्ठा" का सिद्धान्त

बनाकर इन्होंने अपनी प्रतिष्ठा हेतु कोई कार्य नहीं किया है। कोई आश्रम, मठ–मन्दिर नहीं बनाया न कोई संस्था ही चलाई। सभा आदि में बहुत कम प्रवचन देने जाते थे। हाँ, भक्त जन जो पूछते थे उसे विस्तार से समझा देते थे। संयमित जीवन, सत्य व्यवहार, दिव्य वाणी तथा तेजस्वी शरीर वाले दयानन्द जी जहाँ भी रहते थे वहीं सभी लोग इनका मान-सम्मान करते थे और इनके प्रति श्रद्धा भावना प्रगट करते थे। ये किसी बन्धन में नहीं बंधना चाहते थे। जीवन मुक्ति की स्थिति ही इनकी थी। अतएव सांसारिक कोई भी कार्य इनसे नहीं हो पाता था। इन्होंने पूरे भारत वर्ष की पदयात्रा की। दिनभर चलते थे, रात्रि में नगर के बाहर मंदिर या चबूतरे पर लेट जाते थे। नगर गांव में केवल भिक्षा हेतु ही जाते थे। "एक काम एक ध्यान" इनका सिद्धान्त था। वो कहते थे स्मृति पूर्वक कार्य करो। वे ध्यानपूर्वक बड़ी मस्ती में चलते थे और कहते भी थे कि जब हम चलते हैं तो हमारा पूरा ध्यान चलने में ही होता है। कभी पैरों की खटखट की आवाज़ सुनना और कभी मंद वायु की मीठी–मीठी ध्वनि सुनना और पक्षियों के चहचहाने की मीठी आवाज़ को सुनते हुए और उनसे बातें करते हुए चलते थे।

संन्यास के नियमों का इन्होंने आजीवन पालन किया, पदयात्रा की, सवारी का त्याग किया और धन व स्त्री का स्पर्श नहीं किया। किसी से भी जीवन के अन्तिम समय तक सेवा नहीं ली। अपना खप्पर स्वयं ही धोते थे। रात्रि में बिजली के प्रकाश का प्रयोग 80 वर्ष की आयु तक नहीं किया। दीपक, मोमबत्ती से ही काम कर लेते थे। इनके झोले में दैनिक प्रयोग हेतु अल्प सामग्री ही रहती थी। यदि एक वस्त्र से ही काम चलता तो दो वस्त्र नहीं रखते थे। ओढ़ने में यदि

हल्की चादर से ही काम चल जाता तो मोटा कम्बल नहीं लेते थे। *सादा जीवन उच्च विचार इनका सिद्धान्त था।*

सर्वप्रथम आपके प्रवचनों का टेप कराला गांव (दिल्ली) के भक्तों द्वारा बड़ी श्रद्धा व लगन से किया गया और फिर पुस्तक रूप में दो भागों में छपवाया गया। जिन–जिन भक्तों ने यह सराहनीय पुण्य कार्य किया है वे आशीर्वाद के भागी हैं। 325 छन्दों की आध्यात्मिक जीवन पद्यावली (व्याख्या सहित) दो खण्डों में प्रकाशित हुई है। उसके पद्य (छन्द) स्वामी जी ने स्वयं लिखे हैं और उसकी व्याख्या भी स्वयं स्वामी जी ने की, जो साधक भक्तों के लिए अध्यात्म पथ पर चलने के लिए अवलम्बन है। "आध्यात्मिक जीवन पद्यावली की कतिपय आवश्यक संज्ञाओं का विशद् विवरण" भी श्री अनन्त प्रेम मन्दिर द्वारा प्रकाशित किया गया है। भक्तों का अज्ञान दूर करने के लिए इनके ग्रन्थ रामबाण हैं। जब इनका ज्ञान स्रोत उमड़ पड़ता था तब वो उस ज्ञान को प्रकट करते थे। 1975 की बात है कि इन्होंने दीवारों पर ही काली पेंसिल से अंग्रेजी में अनेक श्लोक लिख डाले थे। पूरी सफेद दीवार इनके लिये कागज बन गई थी। ये सदैव पद्मासन पर ही विराजमान मिलते थे। लेटे और सोते हुये इन्हें कोई नहीं देख पाता था। अपना काम स्वयं करते थे। झाडू लगाना, पानी भरना, कपड़े धोना आदि कार्य ये स्वयं अपने हाथों से करते थे। सावधान और सतर्क रहने के लिए भक्तों को सचेत करते रहते थे। "सम्भल सम्भल पग धरिये मुसाफिर" तथा "सावधानी हटी दुर्घटना घटी" इत्यादि वाक्यों से भी सभी को सावधान करते रहते थे। ये कभी समय को निरर्थक नहीं खोते थे। ये बड़े दयालु थे ओर कठोर भी।

"वज्रादपि कठोराणि मृदूनि कुसुमादपि"

दूसरों के लिए कोमल और अपने लिये कठोर थे। साधना में शिथिलता देखकर बहुत कठोर हो जाते थे और उन्हें डांट–डपटकर भगा देते थे। बार–बार उपदेश करने पर भी जिन भक्तों में कोई परिवर्तन नहीं होता था उनके प्रति उदासीन ही रहते थे।

नारियों के प्रति सम्मान था। परन्तु कोई एकाकी नारी इनके दर्शन करने नहीं आ सकती थी। नारी, पति के साथ या निकट सम्बन्धी के साथ ही इनके दर्शन कर सकती थी। इनका यह नियम, जीवन के अन्त तक चलता रहा। आप ज्योतिष शास्त्र, आर्युवेद विज्ञान, वेद वेदांग में पारंगत पंडित थे। परन्तु आपने अपनी विद्या बल से कभी किसी का तिरस्कार नहीं किया। दयानन्द जी ने अपने ग्रन्थों में जीव का दुःख और उसे दूर करने का उपाय बताया है। दस बन्धन और उन बन्धनों को काटने के उपाय इन्होंने 'आध्यात्मिक जीवन पद्यावली' में लिखे हैं।

यद्यपि यह सब है अस्थिर,
तुझ बिन तुमको सुहाय को फिर–फिर?
जब तुम न सत्य का करोगे भान,
फिर क्या करे गुरु, क्या करे भगवान्?

इस प्रकार इनके पद्य मार्मिक और जनकल्याणार्थ हैं। इनके ग्रन्थ जन–जन तक पहुँचें और उस पर चलकर लोक हित हो, यही उनकी सच्ची सेवा है।

इस दिव्य विभूति के सम्बन्ध में जो भी लिखा जाये वह कम ही है। साक्षात् सरस्वती और शेषनाग भी इनके दिव्य गुणों का बखान नहीं कर सकते।

मैं पंजाब, हरियाणा, हिमाचल, चण्डीगढ़, कराला, मजरी, होलम्बी खुर्द तथा निठारी (दिल्ली) के आस–पास के गांवों तथा अन्य स्थानों के समस्त भक्तजनों को भी आशीर्वाद दिये बिना नहीं रह सकता, जो स्वामी दयानन्द 'गिरि' के परम प्रिय प्यारे–दुलारे अनन्य सेवक हैं। इन सभी भक्तों को स्वामी जी ने अपने आत्मस्रोत से निस्सृत स्नेह सलिल से सदैव सिंचित किया है।

इन लोगों ने स्वामी दयानन्द जी की कृपा वर्षा में स्नान करके पवित्रता, उज्ज्वलता और आत्म स्वस्थता प्राप्त की है और अपनी भांति उस आनन्दानुभूति को सभी को देना चाहते हैं। ईश्वर इनकी मंगल कामना पूर्ण करें।

श्री शील अध्यक्षा श्री अनन्त प्रेम मन्दिर अम्बाला शहर को मैं विशेष शुभाशीर्वाद दिये बिना नहीं रह सकता जो आध्यात्मिक जगत् को जागृत करके एक नई चेतना दे रही हैं। गार्गी, मदालसा की भांति परमार्थ पथ को स्वच्छ बनाकर जन–जन में नवीन चेतना प्रदान कर रही हैं। ईश्वर उन्हें इसी प्रकार सद्बुद्धि देता रहे, जिससे वह आध्यात्मिक साहित्य के प्रकाशन में सहयोग करती रहें।

भाग–II

स्वामी जी के भक्तों के कुछ संस्मरण

स्वामी जी के अनेक भक्तों को चिरकाल तक स्वामी जी का सान्निध्य प्राप्त हुआ है। इन्होंने स्वामी जी के पूर्ण परिपक्व आध्यात्मिक जीवन को निकटता से देखा है और उनकी आध्यात्मिक शक्तियों का अनुभव किया है। यहाँ स्वामी जी के भक्तों के कुछ संस्मरण प्रस्तुत हैं। इन संस्मरणों में स्वामी जी के पूर्ण सन्तस्वरूप का परिचय मिलता है। इस प्रकार ये सब संस्मरण स्वामी जी के 'जीवन–चरित' के भाग ही हैं। इन संस्मरणों के श्रद्धालु पाठकों को आध्यात्मिक जीवन जीने की प्रेरणा और बल मिलेगा। इन संस्मरणों का संकलन भी ज्ञान चन्द जी गर्ग ने किया है।

संस्मरण

विमला बहिन : आदरणीय *विमला भनोट जी श्री स्वामी दयानन्द 'गिरि' जी की सहोदरा भगिनी हैं।* उन्होंने दयानन्द जी के सम्बन्ध में कुछ विशिष्ट बातें लिखी हैं। वे यहाँ प्रस्तुत हैं :

1. गृहत्याग : सरगोधा में दसवीं कक्षा पास करने के बाद स्वामी जी ने आगे पढ़ने से इन्कार कर दिया। उनके पिता जी उनसे घर की देखभाल तथा गृहस्थी की व्यवस्था चलवाना चाहते थे परन्तु उनका मन गृह कार्यों में नहीं लगता था। अतः उस व्यवस्था से वे विरक्त हो गये और अपना सारा समय भजन पूजन में लगाते थे। 19 वर्ष की आयु में जब स्वामी जी घर से निकले तब हमारा (विमला जी का) परिवार शाहपुर (पाकिस्तान) में रहता था। तब वे जाते समय अपनी माता जी से यह कह गए कि मैं मेला देखने जा रहा हूँ। माता जी ने स्वामी जी को कहा, कि आप–अपने छोटे–भाई रतन चन्द को भी साथ ले जाओ, किन्तु उन्होंने उत्तर दिया कि यह भीड़ में गुम हो जायेगा, इसलिए मैं अकेले ही जा रहा हूँ।

उनके माता–पिता को उन पर इतना विश्वास था कि उनके पास सारे घर के खर्च का पैसा रहता था जिसका वह हिसाब रखते थे। इसके अलावा उनके पास अपना, अपने छोटे भाई रतन चन्द और छोटी बहन विमला के जेब खर्च के पैसे भी पड़े रहते थे। घर से निकलते समय वे केवल अपने जेब खर्च के पैसे लेकर, ट्रंक को ताला लगाकर, और चाबी ट्रंक के ऊपर रखकर चले गए। उस रोज शाम तक उनके माता–पिता उनके घर आने का इन्तजार करते रहे। जब वे घर न लौटे तब उसी शाम वे उनको ढूँढने निकल पड़े। शाहपुर शहर में लोगों से पूछने पर पता चला कि मदनलाल को बस

स्टैंड पर देखा था।

इस समाचार के बाद उनकी माता को पिछले दो–तीन दिनों वाक्य याद आए जो उन्होंने पिताजी को बताए कि वह हरिद्वार कुम्भ मेले में जाने के बारे में कई चीजें पूछते रहे और हँसी–हँसी कहते रहे कि मुझे कुम्भ पर पहुँचे हुए देखना। यह बात सन् 193 अप्रैल की है।

कुम्भ मेले के तीन–चार दिन बाद उनके माता–पिता और उनकी छोटी बहन विमला, उनको ढूँढने हरिद्वार गये। वहाँ जाकर सभी आश्रमों में पूछताछ की परन्तु कहीं नहीं मिले।

घर से निकलते समय मदनलाल के पास उन थोड़े से जेब खर्च के अलावा और कुछ भी नहीं था। यदि उनके पास कुछ था तो वह थी प्रभु मिलन की उत्कट अभिलाषा।

घर छोड़ने के तीन साल बाद साहीबाल में, जब स्वामी जी अपने गुरु जी के साथ साहीवाल स्टेट के राजा के पास ठहरे हुए थे, और शाम के समय जब प्रवचन हो रहा था तब एक लड़की जो बचपन में स्वामी जी के साथ खेलती थी, उसने स्वामी जी को पहचान लिया। उसने तुरन्त स्वामी जी का साहीवाल में होने का पता स्वामी जी के घर वालों को दे दिया। बड़े भाई श्री मुनि लाल जी वहाँ गये और स्वामी जी को महामण्डलेश्वर की आज्ञा से तीन दिन के लिए शाहपुर में उनके माता–पिता के पास मिलाने ले आये।

2. तीर्थयात्रा : सन् 1951 में स्वामी जी ने अपने माता–पिता, तथा विमला बहिन एवं दूसरी बहिन की लड़की प्रतिभा को बद्रीनाथ, केदारनाथ की तीर्थ यात्रा करवाई थी। विमला बहिन का स्वामी जी के प्रति अटूट प्रेम था और स्वामी जी भी उनसे बहुत ही स्नेह करते
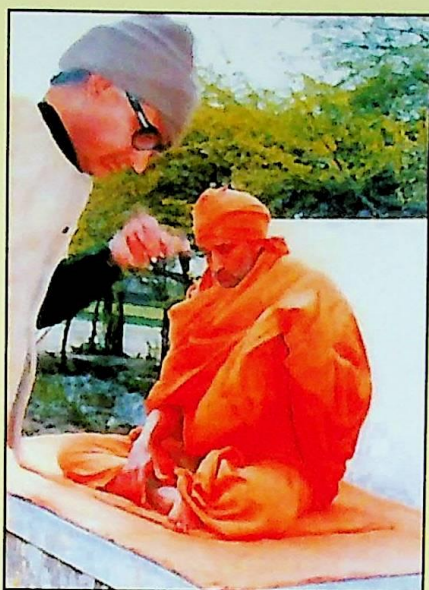
अम्बाला शहर में राय साहिब की बगीची में बाहर चुबतरे पर
प्रवचन देने के लिए बैठते समय स्वामी जी महाराज

अम्बाला शहर में राय साहिब की बगीची के बाहर प्रवचन देते हुए स्वामी जी महाराज

थे। उस समय स्वामी जी बीहड़ गुफा में ध्यान, भजन के लिए रहते थे। ये सभी लोग भी तीन दिन के लिए बीहड़ गुफा में ही रहे। अपने परिवार के साथ इन्होंने चमोली से बद्रीनाथ, केदारनाथ तक पदयात्रा की थी। उस समय आठ मील का पड़ाव होता था, रात को रुक जाते थे, प्रातः होते ही फिर चल पड़ते थे। कभी–कभी दो पड़ाव भी कर लेते थे। स्वामी जी ने अपने छोटे भाई श्री रत्न चन्द शर्मा जी तथा उनकी धर्मपत्नी को भी उत्तराखंड के चार धामों की यात्रा करवाई थी। स्वामी जी अपने से छोटे भाई को बहुत ही ज्यादा स्नेह और सम्मान देते थे और उनकी प्रशंसा भी हर जगह किया करते थे। सन् 1954 में स्वामी दयानन्द ने अपने माता–पिता को भारत वर्ष के सभी तीर्थ अपनी संरक्षता में करवाये थे।

3. माता–पिता का देहावसान : स्वामी जी के पिता जी सर्विस से निवृत्त होकर सन् 1945 में होशियारपुर आ गये थे। संन्यास लेने के बाद स्वामी जी पहली बार सन् 1947 में होशियारपुर आये थे। इनके पिता जी ने 16 अकटूबर सन् 1975 में चण्डीगढ़ में अपना शरीर छोड़ा था। उस समय स्वामी जी नहीं आये थे। तीन महीने बाद अपनी माता जी से मिलने के लिये होशियारपुर आये। स्वामी जी की माता ने 13 अप्रैल सन् 1981 में होशियारपुर में वैसाखी के दिन अपना शरीर छोड़ दिया था। स्वामी जी 9 दिन बाद होशियारपुर कुटिया में आ गये थे।

4. भनोट जी से बातचीत : प्रभु कृपा से सन् 1958 में अचानक सायंकाल स्वामी जी बंगाली मार्किट, दिल्ली में हमारे घर आ गए, जबकि हमने उन्हें कभी भी अपने घर का पता नहीं बताया था। हम सभी लोग स्वामी जी को देखकर चकित रह गये कि वह इस घर में

कैसे पहुँच गए, यह तो एक प्रकार का चमत्कार ही है। उस समय मेरे पति श्री कैलाश नाथ भनोट जी भी घर पर ही थे। वह कभी भी इससे पहले स्वामी जी को नहीं मिले थे। मेरे पति भनोट साहिब पहली बार स्वामी जी से मिले। भनोट साहिब स्वयं भी बहुत विद्वान थे। स्वामी जी व भनोट साहिब सारी रात सोये नहीं और भनोट जी के साथ स्वामी जी हर विषय पर चर्चा करते रहे चाहे वह सांसारिक विषय हो या आध्यात्मिक विषय। भनोट साहिब स्वामी जी के साथ सारी रात बात करने से पूरी तरह संतुष्ट थे और उन-पर स्वामी जी की चर्चा का इतना प्रभाव पड़ा कि उन्होंने स्वामी जी को उसी रात अपना गुरु भी स्वीकार कर लिया और उनके परम भक्तों की गिनती में आ गये। इसका परिणाम यह हुआ कि कैलाश जी ने अपना सारा जीवन स्वामी जी से पाए हुए ज्ञान में बदल डाला। स्वामी जी की भी अपार कृपा पूर्ण रूप से उन पर जीवन पर्यन्त बनी रही। कैलाश जी के शरीर छोड़ने से कुछ दिन पहले स्वामी जी हमारे घर में दर्शन देकर गए। यह भी उनकी अपार कृपा थी कि वे भनोट जी के जीवन के अन्तिम दिनों में भी उन्हें आशीर्वाद देने के लिए हमारे घर आये।

***

निर्मला शर्मा : मैं, निर्मला शर्मा, स्वामी जी के छोटे भाई श्री रत्नचन्द शर्मा जी की धर्मपत्नी, घर परिवार के सदस्यों से स्वामी जी के बारें में कई बातें सुना करती थी। उनमें से एक दो बातें जो मेरे अनुभव में आई वह लिख रही हूँ।

5. ज्योतिषी ने परिवार में ब्रह्मज्ञानी महात्मा बताया :

लगभग वर्ष 1970 की बात है कि मैं अपने बड़े भाई के साथ जालन्धर एक ज्योतिषी के पास बच्चों के टेवे दिखाने के लिये गई

जो कि लाल किताब से बताता था। जब मैंने अपने पति का टेवा दिखाया तो ज्योतिषी ने शुरु में जो एक–दो बातें बताईं वह ठीक ही थीं और फिर वह एक दम चुप हो गया और कहने लगा कि पहले आप यह बताओ कि आपके पति के परिवार में से कोई महात्मा है, जब तक आप यह नहीं बताओगे तब तक मैं आगे कुछ भी नहीं बताऊँगा। मैं पहले तो चुप हो गई, फिर सोच कर उत्तर दिया कि हमारे परिवार में एक भिक्षु महात्मा तो हैं। ऐसा सुनकर ज्योतिषी ने कहा कि ऐसे में तो आपको घर में गंगा जल और किसी स्वामी या महात्मा की फोटो रखने की आवश्यकता नहीं है। यह सुनकर मैं एक दम चुप हो गई और अपने भाई की तरफ देखने लगी क्योंकि मेरे मन में यह आ रहा था कि हम अपने स्वामी जी की फोटो घर में क्यों न रखें, वह तो हम हर कमरे में रखते हैं और रखेंगे भी। मैं कुछ बोली नहीं लेकिन भाई की तरफ देखती रह गई और मन में यह सोच रही थी कि यह गलत बता रहा है और यह पंडित ठीक नहीं है। अभी पंडित ज्योतिषी टेवा देख ही रहा था और देखते देखते एक दम बोला कि आप के परिवार में जो महात्मा हैं वह तो बहुत ही उच्चकोटि के महात्मा हैं उनकी फोटो आप रख सकते हैं। यह सुनकर मैं खुश हो गई और एकदम बोली कि पंडित जी मेरे मन में यही चल रहा था कि हम अपने स्वामी जी की फोटो घर में क्यों न रखें। ऐसा हो ही नहीं सकता क्योंकि हमारा पूरा परिवार उन्हें गुरु के समान मानता है। फिर ज्योतिषी ने हमें कहा कि मैं तो यह सब अभी बता ही रहा था। आप के तीन भाई हैं, आप के तीन बेटे हैं और आपके पति भी तीन भाई हैं। उनके मंझले भाई बहुत ही उच्च कोटि के ब्रह्मज्ञानी महायोगी हैं और गंगा जल के बारे में जो मैंने कहा था कि इसको भी रखने की

जरूरत नहीं है क्योंकि आपके पति भगवती माता के भक्त हैं, इसलिये गंगा जल रखने की भी आवश्यकता नहीं है।

6. माता जी को अंतिम प्रणाम : हम स्वामी जी को कई बार जहाँ कहीं भी हमें पता चलता था मिलने जाया करते थे। बीबी जी (स्वामी जी के माता जी) भी हमारे पास ही रहते थे वह भी जाया करते थे। 1980 की बात है बीबी जी का स्वास्थ्य कुछ ठीक नहीं रहता था तो उन दिनों हम उन्हें साथ नहीं ले जा सके। हमने स्वामी जी को जा कर बताया कि बीबी जी आना चाहते थे पर हम उन्हें ला नहीं सके क्योंकि कार भर गई थी और उसमें बीबी जी के लेटने के लिए जगह नहीं बची थी, अगली बार ले आयेंगे। वह आपको 'नमो नारायण' कहते थे। अगली बार फिर हम उनके पास गये तो बीबी जी को फिर न ले जा सके क्योंकि उनकी तबीयत ज्यादा ही खराब थी। हम एक दो महीने के पश्चात् स्वामी जी के दर्शनार्थ जाया करते थे परन्तु कुछ कारणों से बीबी जी हमारे साथ जा ही नहीं सकीं। उस समय हम चण्डीगढ़ में सैक्टर–5 में पांच कनाल की कोठी में रहते थे जिसके 2 गेट थे। हम कोठी के अन्दर ही एक गेट से दूसरे गेट तक घूम रहे थे कि अचानक हमने एक गेट से स्वामी जी को आते हुए देखा जबकि उन्हें इधर का कुछ पता ही नहीं था। स्वामी जी को जब हमने गेट के अन्दर आते देखा तो हम गद्गद् हो गये और प्रणाम करने के पश्चात् उन्हें अन्दर आने के लिए प्रार्थना की। स्वामी जी उस समय बीबी जी को ही मिलने आये थे क्योंकि उन्हें पता था कि मेरे पति शर्मा जी पाँच साल के लिये भारत से बाहर जाने वाले हैं और हो सकता है कि उसके बाद बीबी जी को मिलाने के लिए कोई ला न सके।

हम बहुत हैरान हो गये और पूछा कि स्वामी जी आपको इस जगह का पता कैसे लगा तो कहने लगे कि हमें पता चल गया। वह एक रात ठहरे। बीबी जी से बातें करते रहे, दूसरे दिन सुबह चले गये। जाते हुए बीबी जी के पैरों में प्रणाम करके गये। उनके जाने के बाद बीबी जी ने हमें बताया कि पता नहीं क्यों स्वामी जी इस बार मेरे पैरों को छू कर प्रणाम करके गये हैं। हम सब बड़े हैरान थे कि पहले तो वह कभी भी जब से महात्मा बने हैं माता जी और पिता जी के पैर नहीं छूते थे, केवल 'नमो नारायण' ही करते थे, शायद उनको यह पता था कि बीबी जी के साथ उनका यह आखिरी मिलन है। लगभग साल बाद ही बीबी जी का स्वर्गवास हो गया। जब बाहर से दो साल बाद मेरे पति शर्मा जी दो महीने की छुट्टी पर आये तो हम स्वामी जी को मिले और उन्हें बीबी जी के बारे में उन्हें बताया तो वह कहने लगे कि हमें मालूम था, वे नहीं रहे।

7. तीर्थ यात्रा : जब कभी भी हमें परम आदरणीय स्वामी जी से मिलने का सौभाग्य प्राप्त होता था तो हम उनसे विनम्र प्रार्थना किया करते थे कि स्वामी जी हमें भी आप कृपा करके अपने सान्निध्य में तीर्थों की यात्रा करवायें क्योंकि उन्होंने पिता जी व बीबी जी को भी तीर्थ यात्रा करवाई हुई थी। हमारे बार–बार प्रार्थना करने पर पूज्य स्वामी जी हमें तीर्थ यात्रा करवाने के लिए मान ही गये क्योंकि स्वामी जी बहुत दयालु थे और अपने भक्तों पर सदैव अपना आशीर्वाद बनाए रखते थे। इन्जीनियरिंग कॉलेज में यहाँ पर मेरे पति कार्यरत थे वहाँ पर हर वर्ष गर्मियों की छुट्टियां होती थीं, इसलिए सन् 1959 में यह तय हुआ कि मैं और मेरे पति श्री आर०सी०शर्मा जी दोनों, दो या तीन जून को हरिद्वार में पंजाबी क्षेत्र में पहुँच जायें और स्वामी जी ने कहा कि हम भी वहाँ पहुँच जायेंगे। जब हम दो जून

को पंजाबी क्षेत्र में पहुंचे तो वहाँ पर स्वामी जी पहले से ही पहुंचे हुए थे। हम हरिद्वार में उस रात ठहरे और दूसरे दिन पैदल ऋषिकेश पहुंच गये। ऋषिकेश से हमने देव प्रयाग की बस ली क्योंकि वहाँ एक रात ठहर कर दूसरे दिन हमारी पैदल यात्रा शुरू होनी थी। देव प्रयाग पहुंचने पर हमें पता चला कि रुद्र प्रयाग तक भी बस जाती है। हम रुद्र प्रयाग जाने के लिए बस स्टैंड गये तो टिकटें नहीं मिलीं क्योंकि सभी टिकटें बुक हो चुकी थीं। प्रोग्राम के अनुसार हम दूसरे दिन प्रातः पैदल ही यात्रा के लिए चल पड़े। अभी हम सिर्फ दो या तीन मील ही पैदल चले थे कि पीछे से एक बस आ रही थी। उसमें एक बहुत बड़ा अफसर अपनी धर्म पत्नी के साथ बैठा हुआ था। उसने जब हमें (स्वामी जी, शर्मा जी, मैं और हमारा नौकर) चारों को पैदल चलते हुए बस में से देखा तो उसने ड्राईवर को कहकर बस रुकवा ली, ऐसी उसके मन में प्रेरणा हुई वह हमें पहले जानता ही नहीं था। उस अफसर ने हम सब को बस में प्रेमपूर्वक चढ़ा लिया और साथ में हमें सीटें भी दे दीं। उस बस में हमने बीस मील की यात्रा और की। ऐसा लगता था कि जैसे कोई दैवीय शक्ति कार्य कर रही है जिसके कारण रास्तें में गाड़ी रोक कर हमें उसमें बैठाया गया। गाड़ी में बैठे यात्री रास्तें में "जय केदार नाथ", "जय केदार नाथ" करते जाते थे। बस में बैठे दोनों पति और पत्नी सचमुच हमारे प्रिय मित्र ही बन गये ऐसी स्वामी जी की कृपा हुई। स्वामी जी के न चाहते हुए भी सभी के आग्रह करने पर उनको बस में 20 मील की यात्रा करनी पड़ी।

बीस मील की बस की यात्रा के पश्चात् हम चारों और उन दोनों पति और पत्नी ने पैदल यात्रा शुरू कर दी। हमारे मित्र अफसर

ने रास्ते में सब गैस्ट हाऊस पहले से ही बुक करवा रखे थे। उन्होंने हमें भी उनमें अपने साथ ही ठहराया। गैस्ट हाऊस में काफी कमरे थे इसलिए पूज्य स्वामी जी को अलग से कमरा दे दिया जाता था। सात दिन की यात्रा के बाद हम पैदल केदार नाथ पहुंचे। केदार नाथ के रास्ते में बहुत ही सुन्दर दृश्य थे और काफी मन्दिर भी थे जिनके हम सभी ने स्वामी जी के सान्निध्य में दर्शन किये। केदार नाथ में पहुंचकर हम प्रातः तैयार होकर मंदिर में सुबह पांच बजे दर्शन करने के लिए पहुंच गये। पहले से ही हमारे साथ वाले मित्र ने अलमोड़ा के किसी खास पुजारी से सभी पुजारियों के नाम पत्र ले रखे थे जिनके कारण मन्दिर के पुजारी ने सब से पहली पूजा हम सभी से करवाई और बड़ी अच्छी तरह प्रातः का अभिषेक भी हमारे से ही करवाया। ऐसा लग रहा था कि मित्र साथियों का मिलना तो एक बहाना ही था, दरअसल यह सब कुछ प्रभु कृपा व स्वामी जी महाराज के आशीर्वाद से ही हो रहा था। साथ में उन दोनों भाग्यशाली पति व पत्नी को भी भगवान् के दर्शन के साथ साथ स्वामी जी का भी आशीर्वाद मिलना था। यह एक बड़े सौभाग्य की बात थी।

केदार नाथ में हम सभी तीन दिन ठहरे, उसके पश्चात् हम सभी तुंग नाथ की यात्रा के लिए निकल गये। रास्ते में सभी जय जय करते जाते थे। तुंग नाथ जाते समय रास्ते में दो रातें ठहर कर हम प्रातः 5 बजे वहां पहुंचे। वहां पर भी सबसे पहला अभिषेक वहाँ के पुजारी ने हम सबसे ही करवाया।

तुंग नाथ में चार घण्टे ठहर कर हमने तो वापिस बद्री नारायण की तरफ यात्रा शुरू कर दी और हमारे मित्र और उनकी धर्म पत्नी वापिस रुद्र प्रयाग की तरफ चले गये क्योंकि वे लोग पहले साल बद्री

नारायण जा आये थे। पांच, छः दिन की यात्रा करने के बाद हम जोशी मठ पहुंचे और वहाँ से फिर हम बद्री नाथ पहुंचे। रास्ते में हम दुकानदारों द्वारा बनाई गई चट्टीयों में (किराये पर देने के लिए छोटे–छोटे कमरे) ही ठहरते रहे। बद्री नाथ पहुंचने पर वहाँ के मन्दिर के पुजारी ने हमें मन्दिर की धर्मशाला में ठहराया। प्रातः पूजा के बाद हमें मन्दिर से ही प्रसाद मिला। मन्दिर बहुत ही सुन्दर था और वहाँ का वातावरण भी बहुत शुद्ध था। मन्दिर में जाते समय सभी भक्त जन "जय बद्री नारायण" का उच्चारण कर रहे थे और साथ में भजन भी गाते जाते थे। बद्री नारायण में तीन दिन ठहर कर हमने अगले दिन वापसी की यात्रा आरम्भ कर दी। रास्ते में हमें स्वामी जी सभी मन्दिरों और जगहों के बारे में बताते रहे। यह सारी 250 मील की यात्रा हमने स्वामी जी के सान्निध्य में लगभग 27 या 28 दिन में पैदल पूरी की। सारी यात्रा में स्वामी जी हमारे साथ ही रहे और उन्हीं की कृपा व आशीर्वाद से यह यात्रा हम पूरी कर पाये वरना ऐसी यात्रा करना हमारे लिये बड़ा मुश्किल था। जब हम हरिद्वार पहुंचे तो स्वामी जी कहने लगे कि बस नारायण! अब हम चलते हैं, आप अपने घर चले जाना। उसके बाद हम अकेले हरिद्वार में दो दिन ठहर कर वापिस अपने घर पहुंच गये। इस यात्रा के लिए हम परम पूज्य स्वामी श्री महाराज के ऋणी हैं जिसकी छाप आज भी हमारे दिलो–दिमाग में बनी हुई है।

***

अम्बाला के श्री ज्ञान चन्द गर्ग स्वामी जी के परम भक्त हैं। उन्हें स्वामी जी के सान्निध्य का सौभाग्य प्राप्त हुआ है। आगे प्रस्तुत उनके संस्मरणों में स्वामी जी के गुणों और बलों का दर्शन होता है:

8. हिंसक वृत्ति का शमन : सन् 1988 की बात है स्वामी श्री दयानन्द 'गिरि' जी अम्बाला शहर में लाला राय साहब की बगीची में ठहरे हुए थे। श्री ज्ञानचन्द गर्ग, उनके पिता तथा कराला गांव (दिल्ली) से आये श्री बलवन्त माथुर प्रातः दस बजे स्वामी जी के दर्शनार्थ कुटिया में गये। वहाँ पहुँचकर देखा कि स्वामी जी अस्वस्थ हैं और कुटिया में विश्राम कर रहे हैं। सर्दी का समय था, भीतर से जाली के किवाड़ बन्द थे, थोड़ी देर में देखा कि वहाँ एक मोटा–ताजा महात्मा भी विचित्र भेष बनाये हाथ में भाला लिये तथा कई शस्त्र लटकाये मौजा बूट पहने आ गया और स्वामी जी को आवाज़ देने लगा तथा किवाड़ भी खटखटाये। स्वामी जी ने भीतर से कहा नारायण! क्या बात है कहिये, मेरी आज तबीयत कुछ ठीक नहीं है। वह गुस्से में भरकर अनाप शनाप बकने लगा, गाली भी देने लगा। थोड़ी देर में स्वामी जी बाहर आ गये और उसे समझाने लगे, परन्तु वह बके ही जा रहा था। कभी–कभी बीच–बीच में स्वामी जी को मारने को हाथ भी उठाता था। हम लोग जो दर्शनार्थी वहाँ खड़े थे, उन्हें यह सब देखकर कष्ट हो रहा था परन्तु स्वामी जी शान्त थे। भक्तों ने कहा पुलिस बुला लें। स्वामी जी ने कहा नहीं वह स्वयं ही शान्त हो जायेगा। थोड़ी देर बाद वह सचमुच ही चुप हो गया और वहाँ से चला गया। स्वामी जी की सहिष्णुता और क्षमाशीलता से हिंसक और दुष्ट पुरुष भी प्रभावित हो जाते थे। स्वामी जी तपस्वी संत थे। अतः उन्होंने अपनी तप शक्ति का प्रयोग नहीं किया केवल संकल्प मात्र से ही दुष्ट पुरुष शान्त हो गया।

9. डाकुओं से कोई डर नहीं : स्वामी जी पंजाब में मानसा जिले के मूसा गांव के बाहर खेतों में ऊंचे टीले पर ठहरे हुए थे। ग्रामवासी स्वामी जी के प्रति अटूट श्रद्धा रखते थे। उन दिनों लाल

कुर्ती वाले डाकू उस क्षेत्र में भ्रमण करते थे और एकाकी लोगों को पाकर उन्हें मार डालते थे। साधु–सन्तों को भी नहीं छोड़ते थे। ऐसी घटनायें वहाँ होती रहती थीं। स्वामी जी अकेले ही वहाँ रात्रि में रहते थे। ग्रामवासियों ने मिलकर स्वामी जी को प्रार्थना की, कि वहाँ डाकू आते हैं इसलिए यदि आप उचित समझें तो रात में हम दो–चार लोग आपके पास लेट जाया करेंगे, क्योंकि आप अकेले हैं। स्वामी जी ने कहा–" नारायण! यदि डाकू आ गये तो वह, हम सभी चारों पांचो को काट डालेंगे, यदि मैं अकेला रहूँगा तो वह केवल मेरे को ही मारेंगे। आप लोग मेरे कारण क्यों संकट में पड़ना चाहते हो, आराम से अपने घर में रहो।" और आगे कहने लगे– "रक्षा कोई भी किसी की नहीं कर सकता, रक्षक तो सबका भगवान् ही है।" एक दिन सचमुच ही रात में पांच छः डाकू हाथ में हथियार लेकर मुंह बांधे हुये घोड़ों पर सवार वहाँ पर पर आ गये और स्वामी जी से पूछने लगे, महात्मा क्या यह खेत और कुटिया आपकी है ? स्वामी जी ने कहा, नारायण हमारा यहाँ पर कुछ भी नहीं है। मैं तो रमता फक्कड़ जोगी हूँ। कहो तो उठ कर अभी यहाँ से चला जाता हूँ और यदि आप यहाँ विश्राम करना चाहते हो तो आराम से करो। ऐसी बात स्वामी जी से सुनकर उन डाकुओं ने कहा, नहीं स्वामी जी, आप कहीं नहीं जायेंगे, आप यहाँ ही ठहरें, हम ही जा रहे हैं। हमारा सरदार इसी भेष में थोड़ी देर बाद यहाँ आयेगा आप उससे यह कह देना कि आपके लोग यहाँ आये थे और चले गये। यह कहकर सभी डाकू चले गये। थोड़ी देर बाद डाकुओं का सरदार भी वहाँ आ गया। स्वामी जी ने डाकुओं की सारी बात उस सरदार को बता दी और यह सुनकर वह भी चला गया। प्रातः यह बात ग्रामवासियों को ज्ञात हुई तो सभी लोग स्वामी जी के तप के प्रभाव की प्रशंसा करने लगे। स्वामी जी के तपोबल के सामने

अच्छे बुरे सभी प्रकार के व्यक्ति प्रभावित हो जाते थे।

10. प्रेतात्मा का उपद्रव शान्त करना : मानसा के पास मूसा गांव (पंजाब) के खेतों में बाबा चरण दास का स्थान था। चरण दास एक महात्मा थे परन्तु मृत्यु के बाद वह प्रेत हो गये। वो जिन्दा भी बहुत क्रोध करते थे और प्रेत होने पर भी उग्र रहते थे। जो कोई उनकी समाधि के पास जाता था उसका गला पकड़कर पटक देते थे। उस स्थान के आस–पास भी कोई नहीं जाता था। ग्रामवासी अपने खेतों में रात में पानी देने भी नहीं जाते थे क्योंकि सभी लोग बाबा चरणदास से डरते थे। एक बार स्वामी दयानन्द जी मूसा गांव की कुटिया में चौमासा काटने के लिए ठहरे हुए थे। जब गांव वालों को इस बात का पता चला कि स्वामी जी कुटिया में ठहरे हुए हैं तो गांव वाले बिना किसी डर के कुटिया के आस–पास घूमते रहते थे और बिना किसी भय के खेतों में रात को भी पानी देते रहते थे, क्योंकि उनको पता था कि स्वामी जी कुटिया में विचर रहे हैं और उनके होते हुए चरणदास बाबा उनका कुछ नहीं बिगाड़ सकता। एक बार उसी कुटिया में स्वामी जी रात्रि के समय ध्यान कर रहे थे। तो अचानक स्वामी जी को सुनाई पड़ा कि शीशियां आपस में खड़क रही हैं और उनके बार–बार खड़कने से स्वामी जी का ध्यान भंग हो रहा था। स्वामी जी ने बैट्री जगाकर देखा कि यह आवाज़ किस कारण से आ रही है। कहीं चूहा वगैरा तो नहीं है जो शीशियों को खटका रहा हों। परन्तु देखने से मालूम हुआ कि वहाँ तो कुछ भी नहीं है। फिर स्वामी जी ध्यान में बैठ गये। पुनः अब और जोर से शीशियों की खटखटाहट होने लगी। तब स्वामी जी समझ गये कि यह बाबा चरण दास की ही शरारत है जो मेरा ध्यान भंग करना चाहता है। स्वामी जी फिर पद्मासन पर डटकर बैठ गये और कहने लगे, चरणदास! तू भी

बाबा और मैं भी बाबा, आज देखते हैं कैसे तू हमारा ध्यान भंग करता है। इतने में स्वामी जी को बाहर कुटिया के पास तालाब के किनारे बाबा चरण दास की परछाई दिखाई दी और वह इशारे–इशारे से यह कह रहा था कि स्वामी जी मैं यहाँ से जा रहा हूँ और जहां तक आपने कुटिया के आस–पास झाड़ू लगा रखा है, मैं उसके पीछे–पीछे ही रहूँगा आगे नहीं आऊंगा। इस प्रकार स्वामी दयानन्द जी का प्रभाव सूक्ष्म प्राणियों, भूत, प्रेत, राक्षसों पर भी पड़ता था। यह थी उनकी तपस्या की शक्ति।

11. साधक महात्माओं में भी 'मैं' : भक्त की भावना के अनुरूप ही भगवान् अपना स्वरूप बना लेते हैं। **श्री ज्ञानचन्द गर्ग** ने जो स्वामी दयानन्द जी को भगवान् मानते हैं, एक बार स्वामी जी को भिक्षा कराने का संकल्प किया। परन्तु स्वामी जी का, कहीं पता नहीं था कि आजकल कहाँ विचर रहे हैं। अनुमान से ही प्रातःकाल भिक्षा बनाकर पत्नी सहित स्कूटर से चल दिये। जिन–जिन स्थानों पर स्वामी जी के विचरने का अनुमान था उन–उन स्थानों पर देखते और पूछते चले गये, परन्तु स्वामी जी कहीं नहीं मिले। मध्याह्न तक चलते रहे, अन्त में निराश हो गये। मध्याह्न का डेढ़ बजा था। गर्मी और भूख से वे लोग व्याकुल थे क्योंकि यह संकल्प किया था कि स्वामी जी को भिक्षा कराने के बाद ही कुछ खायेंगे। एक दम चलते–चलते स्कूटर स्वयं बन्द हो गया। सड़क के किनारे स्कूटर को लगाकर देखा कि उसमें पेट्रोल बिल्कुल खत्म हो गया था। सड़क पर खड़े होकर ये लोग सोचने लगे कि स्कूटर में पेट्रोल नहीं है, तो अब कहाँ जायें। पास में वृक्षों का एक झुरमुट दिखाई पड़ा। स्कूटर खड़ा करके, भोजन का झोला लेकर ये लोग वृक्षों

की ओट में पानी की आशा से चल दिये। आगे चलने पर इन्हें एक कुटिया दिखाई दी। उस कुटिया में एक महात्मा बड़े ज़ोर–ज़ोर से किसी प्राणी से बातें कर रहा था कि मैं जिसको दवाई दे देता हूँ वह ठीक हो जाता है। अचानक गर्ग जी की नज़र एक दुबले–पतले संत पर पड़ी जो पत्थर पर सिर रखकर एक करवट में लेटे हुए थे। गर्मी अत्यधिक थी, खूब आंधी धूल चल रही थी। भक्त प्रवर गर्ग ने देखा, कि बांई करवट लेटे हुए स्वामी जी ही हैं। आश्चर्यचकित होकर सन्त भगवान् की करुणा और दयालुता पर ज्ञान चन्द गर्ग गद्गद् हो गये और भावुकता–वश उनकी आँखों से अश्रु छलक पड़े। भगवान् की लीला तो देखो, जिन्हें वे खोज रहे थे, उनका स्कूटर रोककर उन्हें स्वयं अपने पास बुलाकर दर्शन दिये। वह भाव विभोर होकर स्वामी जी के चरणों में गिर पड़े। स्वामी जी ने उठकर पूछा नारायण! आप यहाँ कैसे? मैं तो यहाँ कुछ समय आराम करने के लिए ही रुक गया था। सामने देखो मेरी भिक्षा टंगी पड़ी है जो मैं पीछे से मांग कर लाया हूं। गर्ग जी ने स्वामी जी से प्रार्थना की, कि स्वामी जी, भिक्षा तो मैं भी लाया हूँ। स्वामी जी ने आज्ञा की : नारायण! जाओ पहले जो अन्दर महात्मा बैठा है उसको भिक्षा देकर आओ और साथ में कुछ दक्षिणा भी उसे दे देना। देखो, उस महात्मा को मेरे बारे में कुछ भी नहीं बताना कि मैं स्वामी जी को जानता हूं। उनको भिक्षा देकर मेरे पास चुपके से आ जाओ। ज्ञान चन्द गर्ग ने वैसे ही किया, जाकर महात्मा को नमोनारायण कहा और प्रेम से भिक्षा लेने के लिये प्रार्थना की। महात्मा ने भिक्षा प्रेम से ले ली और साथ में तुच्छ दक्षिणा भी ले ली। ज्ञान चन्द गर्ग ने विनम्रता से महात्मा से पूछा कि महात्मा जी, सामने पेड़ के पास

एक महात्मा लेटे हुए हैं यदि आज्ञा हो तो मैं उनको भी भिक्षा दे दूँ। कहने लगे, हाँ ज़रूर दो, मैं भी आपके साथ चलता हूँ। वह महात्मा भी ज्ञान चन्द गर्ग के साथ स्वामी जी के पास चले गये और स्वामी जी को ज़ोर–ज़ोर से कहने लगे, महात्मा! भिक्षा आई है, प्रेम से भोग लगाओ, आई भी कढ़ी–चावल है, मैंने कहा था ना कि भिक्षा यहीं आयेगी, हम कहीं भिक्षा मांगने नहीं जाते। स्वामी जी ने बड़ी मुश्किल से उन्हें अपने पास से विदा किया और ज्ञान चन्द गर्ग को कहने लगे, देखो नारायण! किस–किस रूप में यह 'मैं' बोलती है, इसलिये हम स्वतंत्र घूमते हैं। जब आप लोग हमारे पास आ जाते हैं तो हमारी स्वतंत्रता भंग हो जाती है। उस महात्मा के जाने के बाद स्वामी जी ने बड़े प्रेम से अपने खप्पर में भिक्षा ले ली जिसमें पहले से मांगी हुई भिक्षा भी थी। स्वामी जी ने वह भिक्षा एक अन्य सन्त को खिलाकर उसके बाद स्वयम् पाई। **यह है सन्त भगवान् की करुणा, जिसे साधारण जीव नहीं पा सकता।** भगवान् अपने भक्तों पर कृपा करके स्वयं दर्शन देते हैं। इस प्रकार गर्ग जी के जीवन में स्वामी जी के जीवन की अनेक मंगलमयी घटनायें घटती रहीं। सन्त और भगवान् में कोई अन्तर नहीं है। "**हरि अनन्त हरि कथा अनन्ता**" इसी प्रकार सन्त की अनन्त महिमा का गान कौन कर सकता है?

12. भक्तों की रक्षा : जुलाई 1983 में स्वामी जी की कृपा से स्वामी जी द्वारा रचित आध्यात्मिक जीवन पद्यावली ग्रन्थ (व्याख्या सहित) छप कर तैयार हो गया। उसका विमोचन स्वामी जी महाराज से करवाने के लिए मैं **(ज्ञान चन्द गर्ग) व सुरजीत वासुदेवा** जो बैंक ऑफ बड़ौदा अम्बाला शहर में कार्यरत हैं दोनों 15 पुस्तकें लेकर स्कूटर पर जगाधरी के लिए चल पड़े। उस समय स्वामी जी लाला

सेवा राम की बगीची जगाधरी में चौमासा बिता रहे थे। दोनों में स्वामी

जी से विमोचन कराने का इतना जोश था कि स्कूटर चलाते समय उनको एक ही लगन थी कि स्वामी जी के पास जल्दी–जल्दी जाकर यह पुस्तक स्वामी जी के सामने प्रस्तुत करें। क्योंकि स्वामी जी ने यह पुस्तक अपने ही कर कमलों द्वारा कई वर्ष लगाकर लिखी थी। यह पद्यावली वेदों, उपनिषदों तथा सभी धर्म ग्रन्थों का सार है। जब हम लोग जगाधरी जा रहे थे तो अचानक मुलाने के पास सड़क पर डीज़ल बिखरा पड़ा था। जब हम उसके उपर से निकालने लगे तो एक दम स्कूटर बड़े ज़ोर से फिसल गया। फिसलने से मैं (ज्ञान चन्द गर्ग) व सुरजीत वासुदेवा दोनों इतनी जोर से सड़क पर गिरे कि जो लोग वहाँ सड़क के पास खड़े थे कहने लगे, कि यह दोनों नहीं बचेंगे। किताबें जाकर एक तरफ गिर गईं। ऐसे में, सेवक चोट की परवाह न करते हुए किताबें उठाने की ओर भागा। स्कूटर गिरा हुआ स्टार्ट ही रहा तो इतने में सुरजीत वासुदेवा भी उठकर आ गया। हम दोनों ने स्टार्ट स्कूटर को उठा लिया और किताबें भी सुरजीत वासुदेवा ने उठाकर पीछे बैठकर अपने पास रखलीं। लोग बहुत इकट्ठे हो गये थे। वे हमको अभी पूछ ही रहे थे कि कहीं चोट वगैरह तो नहीं लगी, कि हम दोनों स्कूटर को भगाकर ले गये और जगाधरी पर जाकर पुलिस नाका चुन्गी के पास रुक गये। वहाँ पर मिट्टी से लथपथ मुँह–हाथ साफ किया। कपड़े और सारा शरीर काले तेल से लथपथ था। वहाँ से हम लाला सेवा राम की बगीची पहुँचे। स्वामी जी ने हम दोनों को कुटिया के अन्दर जाने से पहले ही कह दिया, नारायण! बहुत बड़ी दुर्घटना टली है। चलो अच्छा हुआ कहीं चोट तो नहीं आई। जब भी कोई अच्छा काम होता है तो लोग नज़र बट्टू लगा लेते हैं, आपका तो नज़र बट्टू कालस ही से लग गया है, जिसके कारण

आप दोनों बहुत बड़ी घटना से बच गये हो। इससे पता चलता है कि स्वामी जी अपने भक्तों पर कितनी कृपा दृष्टि रखते थे और समय–समय पर रक्षा भी करते थे।

13. राम मन्दिर कैसे बने : एक समय स्वामी जी जगाधरी में लाला सेवाराम की बगीची में चौमासा काट रहे थे। उस समय वहाँ पर एक बहुत बड़ा सन्तों का सम्मेलन होने जा रहा था जो राम मन्दिर निर्माण के लिए अयोध्या को जा रहे थे। उस सम्मेलन का जो इन्चार्ज महात्मा था वह स्वामी जी का पुराना मित्र था। वह कुछ समय से श्री राम मन्दिर निर्माण के आन्दोलन में ही लगा हुआ था। जब उस महात्मा को पता चला कि स्वामी जी वहाँ जगाधरी में विचर रहे हैं तो वह भी स्वामी जी को मिलने आया और आग्रह करने लगा कि स्वामी जी यहाँ पर बहुत बड़ा संत सम्मेलन होने जा रहा है। बहुत दूर–दूर से संत महात्मा इकट्ठे हो रहे हैं इसलिए आप भी उस संत सम्मेलन में आकर दो शब्द बोलने की कृपा करें। पहले तो स्वामी जी ने उस महात्मा को बिल्कुल मना कर दिया कि नारायण! हम तो ऐसे संत सम्मेलनों में कभी जाते ही नहीं, हमने कभी ऐसे मंचों पर कभी कुछ बोला भी नहीं है। परन्तु उस महात्मा के बार–बार आग्रह करने पर स्वामी जी मान गये और कहने लगे नारायण, जो कुछ भी हम बोलेंगे वह हम अपनी मर्जी से बोलेंगे ऐसा न हो हमारा बोला हुआ उन सन्तों को अच्छा न लगे और आपके लिए उनको सम्भालना मुश्किल हो जाये। महात्मा कहने लगा–स्वामी जी जो कुछ भी आप बोलना चाहें बोलें इसमें कोई कुछ नहीं बोलेगा। स्वामी जी बोले, "अच्छा आप चलो मैं अपने–आप उस स्थान पर पहुँच जाऊँगा जहाँ सम्मेलन हो रहा है।" स्वामी जी समय के अनुसार उस स्थान पर

पहुँच गये जहाँ सम्मेलन हो रहा था और जाकर स्टेज के पीछे बैठ गये। उस मित्र महात्मा ने स्वामी जी को बैठते हुए देख लिया और माईक पर जाकर पहले ही स्वामी जी को बोलने के लिए प्रार्थना की। स्वामी जी माईक पर जाते ही बोलने लगे और कहा कि नारायण! देखो राम मंदिर तो बनना ही चाहिए, इसमें किसी को भी कोई आपत्ति नहीं है। हर एक व्यक्ति चाहता है कि राम मन्दिर बने परन्तु जिस तरीके से आप राम मन्दिर बनाना चाहते हो तो क्या आप उस तरीके से राम मंदिर बना पाओगे? आप संत महात्मा निहत्थे हो वहाँ सरकार के पास ताकत है। यदि आप वहाँ जाकर हल्ला–गुल्ला करोगे तो इससे बेचारे निहत्थे महात्मा अपनी जान गवां लेंगे, क्योंकि वह तो आपको अन्दर जाने नहीं देंगे। हां ! एक बात ज़रूर है कि आपमें से कोई एक महात्मा अपने में इतनी शक्ति उपजावे कि वह अकेला महात्मा अयोध्या में राम मन्दिर स्थल के पास समाधि लगाकर, इस संकल्प के साथ बैठ जाये कि जो तो राम मन्दिर बनाने के हक में होगा वह तो अन्दर जा सकता है और यदि वह राम मन्दिर निर्माण का घोर विरोधी होगा और इस निर्माण में बाधक होगा तो यदि वह अन्दर जाने की कोशिश करेगा तो उसका सिर इस प्रयास में कट जायेगा। बस! इतने में ही आप के मन्दिर का निर्माण निश्चित रूप से हो जायेगा। फिर कोई भी शक्ति इस निर्माण को रोक नहीं सकेगी। इसी सन्दर्भ में स्वामी जी ने श्री सिद्ध बाबा श्याम 'गिरि' सवाई जिनकी समाधि यमुना जी के तट पर पूर्वी दिल्ली–53 में अभी भी स्थित है, जो औरंगजेब के समय में हो चुके हैं उनकी शक्ति का उल्लेख किया। औरंगजेब ने अपने राज्य में हुक्म दे रखा था कि कोई भी गेरुए रंग के कपड़े पहने हुए महात्मा यदि भिक्षा मांगता हुआ

मिल जाए तो उसे तुरन्त जेल में बन्द कर दिया जाये और उससे वहाँ पर अनाज पीसने की चक्की चलवाई जाये। सैंकड़ों महात्मा बन्द कर दिये गये और उनसे जेल में कठोर यातनाओं के बलबूते पर चक्कियां चलवाई जाने लगीं। उनमें से किसी महात्मा ने हिम्मत करके राजा तक यह बात पहुँचा दी कि यदि आप बाबा श्याम 'गिरि' सवाई जो पूर्वी दिल्ली यमुना पार कुटिया में रहते हैं को यह बात मनवा लें कि कोई महात्मा न तो मांगेगा और न ही भगवें वस्त्र पहनेगा, इससे आपकी सारी समस्या दूर हो जायेगी क्योंकि सभी महात्मा बाबा जी की ही बात को मानते हैं। राजा की यह बात समझ में पड़ गई, उसने तुरन्त हुक्म दे दिया कि बाबा श्याम 'गिरि' सवाई को भी पकड़ कर जेल में बन्द कर दिया जाये और उससे भी जबरदस्ती चक्की चलवाई जाये। बाबा जी बन्द कर दिये गये और उनसे चक्की चलाने का हुक्म कर दिया गया। बाबा ने जेल के अन्दर चक्कियों को गाली देकर अपनी आत्मिक दिव्य शक्ति द्वारा उच्चे स्वर से कहा, चक्कियो! बहुत ही जोर से चलो और चलो भी उल्टी दिशा में। इतना ही कहना था कि सभी चक्कियां अपने आप घरड़–घरड़ करके बड़ी तेज आवाज़ करती हुईं उल्टी दिशा में चलने लगीं और कुछ ही समय में पूर्ण सरकारी अनाज के भंडार को पीस डाला। बाबा जी ने अधिकारियों को और अनाज लाने के लिए कहा, और यदि न ला सके तो राजा की पूरी सलतनत भस्म हो जायेगी। सारी सूचना राजा तक पहुँची कि जो बाबा हमने अभी जेल में बन्द किया है यह तो कोई पहुँचा हुआ फकीर है। इस बात को सुनकर राजा नंगे पांव दौड़कर सीधा बाबा श्याम 'गिरि' सवाई के चरणों में गिर पड़ा और माफी मांगने लगा और कहने लगा कि, ऐसी क्रूरता

भविष्य में कभी भी नहीं होगी। सभी सन्तों को सम्मानपूर्वक जेल से मुक्त कर दिया गया। स्वामी जी तो इतना बोलकर उस आयोजन से चले गये। यह घटना स्वामी जी ने श्री ज्ञान चन्द गर्ग और उनके साथियों को तब सुनाई थी जब वे लोग दर्शन करने के लिए जगाधरी, लाला सेवा राम की बगीची में गये थे।

14. कर्मफल के भोग का नियम अटल : स्वामी जी के पास धनी, गरीब, पढ़े लिखे, अनपढ़, विद्वान् तथा संत महात्मा हर किस्म के व्यक्ति आया करते थे और अपनी समस्याओं का समाधान करवाया करते थे। ऐसे ही एक दिन कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय के कुलपति (I.A.S) स्वामी जी के दर्शन करने के लिए आ गये। उनके साथ उनकी धर्मपत्नी तथा एक इतिहास के विभागाध्यक्ष भी थे। उस समय मैं (ज्ञान चन्द गर्ग) भी स्वामी जी के पास बैठा हुआ था। सब से पहले स्वामी जी ने उनसे उनका परिचय पूछा और फिर कहा नारायण! कुछ पूछना चाहते हो तो पूछो। शर्मा जी कहने लगे कि स्वामी जी आजकल समय बहुत खराब आ गया है। सिफारिश वाले लोग घर में भी चैन से बैठने नहीं देते, अक्सर आकर तंग करते रहते हैं। स्वामी जी ने कहा कि नारायण! सिफारिश का जमाना है इसलिए लोग तो आयेंगे ही। पलटते ही शर्मा जी ने कहा, स्वामी जी कोई भी व्यक्ति यदि मेरे घर में सिफारिश लेकर आता है, मैं या तो उसको मिलता ही नहीं या यह कहला देता हूँ कि शर्मा जी घर पर नहीं हैं। यदि किसी समय कोई मिल भी गया तो मैं डांट–फटकार मारकर उसको घर से भगा देता हूँ। जब मैं आफिस में जाता हूँ तो जाते ही सिफारिश करने वाले आदमी की फाईल तुरन्त मंगवाकर उसका केस खराब करके वापिस आफिस में भेज देता हूँ ताकि आगे कोई मेरे को सिफारिश

करने की हिम्मत ही न करे। स्वामी जी ने यह सब सुनकर शर्मा जी को कहा नारायण! फिर तो आप सर्वशक्तिमान हुए, ठीक केस को भी आप गलत करके भेज देते हैं। यह तो आपकी कोई अच्छी नीति नहीं है। इससे तो आप अपने बाहर दुश्मन ही पैदा कर रहे हो। यह कुर्सी तो सारी उमर आपके पास रहेगी नहीं और एक न एक दिन तो यह जायेगी ही क्योंकि रिटायर तो आपको एक न एक दिन होना ही है। रिटायर होने के बाद आपको अकेले भी होना है तो बाहर आपको कभी भी बेपरवाह का जीवन नहीं मिलेगा, क्योंकि आपने सब के सुख में सुखी होना नहीं सीखा बल्कि दुश्मन ही बनाये हैं। यदि आराम का जीवन कोई व्यतीत करना चाहता है तो उसको व्यापक की भक्ति करनी पड़ती है। आगे स्वामी जी कहने लगे कि हां! एक बात तो अवश्य है कि जो भी व्यक्ति आपके पास सिफारिश लेकर आया है, आप उसकी परवाह न करते हुए, आपके पास रोटीन में जो भी फाईल आती है चाहे व सिफारिश करने वाली की भी क्यों न हो, आप सही फैसला लिख कर भेज देते हैं चाहे वह उसके पक्ष में होता या खिलाफ। तो लोग आपके बारे में यह कहना शुरू कर देते कि शर्मा जी को सिफारिश करो या न करो वह तो वही करेंगे जो ठीक होगा। इससे आपका कोई भी बैरी नहीं बनता और सब लोग आपकी प्रशंसा ही करते।

उसके पश्चात् शर्मा जी की धर्मपत्नी स्वामी जी को कहने लगी कि, स्वामी जी एक बात बताओ कि मेरे पिता जी इतने ईमानदार, भक्त, भगवान् को मानने वाले थे और पूजा पाठ भी बहुत करते थे और समाज में भी उनकी बहुत प्रतिष्ठा थी। फिर भी अन्त समय उनका इतना दुःखमय था कि वह वर्णन नहीं हो सकता। उनके प्राण

भी बड़ी मुश्किल से निकले। यह क्या बात है, भगवान् ने उनके साथ न्याय क्यों नहीं किया? स्वामी जी बोले, देवि! यह बताओ, आपको पता है कि आपने दो दिन पहले क्या खाया था। जब आपको दो दिन पहले का खाया हुआ नहीं पता कि क्या खाया था तो आप अपने पिता के कर्मों का क्या पता लगा सकती हो कि उसने छुप–छुप कर क्या कर्म कर रखें हैं, वह तो वे ही जानते थे। जो उन्होंने किया होगा उसी के अनुसार ही उनको भुगतना भी पड़ा। ऐसा हो ही नहीं सकता जो नहीं किया उसका फल मिल जाए। यह तो विधि का विधान है और अटल भी है। इतना सुनते ही दोनों चुप हो गये और दण्डवत प्रणाम् करके कहने लगे स्वामी जी आप धन्य हैं जो आपने हमें सही ज्ञान से अवगत करवाया। हमने तो इस प्रकार कभी सोचा भी नहीं था। यँह थी स्वामी जी की कृपालुता जो गलत रास्ते पर चल रहे थे उनको सही रास्ते पर चलने की प्रेरणा दी।

15. गुरुदेव की भक्तिः एक दिन स्वामी दयानंद 'गिरि' जी महाराज हमेशा की तरह अपने विद्यागुरु स्वामी श्री विष्णुदेवानन्द 'गिरि' जी महाराज के साथ गंगा किनारे सायं को घूमने गये हुए थे। महामण्डलेश्वर श्री विष्णुदेवानन्द 'गिरि' जी महाराज बहुत ही उच्चकोटि के विद्वान् महात्मा थे और वे हमेशा अपने साथ गंगा किनारे घूमने के लिए अपने सबसे प्रिय व बुद्धिमान शिष्य स्वामी दयानन्द 'गिरि' जी को ही साथ लेकर जाया करते थे। लघुशंका जाने के पश्चात् जब महामण्डलेश्वर गंगा किनारे अपने हाथ वगैरा साफ कर रहे थे तो अचानक उनकी चिप्पी का ढक्कन उनके हाथ से श्री गंगा जी की तेज धारा में गिर गया। महामण्डलेश्वर जी के थोड़ा आगे स्वामी दयानन्द 'गिरि' जी भी गंगा किनारे बैठे हुए थे और

उनका पूरा ध्यान अपने गुरु की तरफ ही था। जब उन्होंने देखा कि गुरुदेव की चिप्पी का ढक्कन उनके हाथ से गंगा की तेज धारा में बह गया है तो उसी समय गंगा में बहते हुए उस ढक्कन को स्वामी जी ने बड़ी सावधानी व शीघ्रता से पकड़ लिया और पकड़ कर महामण्डलेश्वर को दे दिया। महमण्डलेश्वर इससे अति प्रसन्न हुए और कहने लगे कि दयानन्द यह कार्य जो आपने किया है वह आप ही कर सकते थे और कोई नहीं कर सकता था। आप बहुत ही बुद्धिमान् हैं और आप में सभी गुण व्याप्त हैं जो एक संन्यासी में होने चाहिएं। ऐसा महामण्डलेश्वर का स्वामी दयानन्द 'गिरि' जी के प्रति भाव था। यह घटना स्वामी जी ने मुझे (ज्ञान चन्द गर्ग) व अन्य एक दो सेवकों को स्वयं सुनाई थी। स्वामी दयानन्द 'गिरि' जी महाराज आम तौर पर सभी भक्तों को '**एक काम एक ध्यान**' की शिक्षा दिया करते थे।

यहाँ एक और घटना का कथन प्रासंगिक है। जब काशी जी से स्वामी जी शास्त्र विद्या पूर्ण करके वापिस चलने लगे तो उनके विद्या गुरु परम श्रद्धेय स्वामी चेतन भारती जी महाराज स्वामी दयानन्द जी को अपने राज राजेश्वरी मठ से बाहर छोड़ने आये तो उस समय स्वामी जी ने स्वामी चेतन भारती जी को बताया कि स्वामी जी आज से मैं पैसे को बिल्कुल हाथ नहीं लगाऊँगा और शरीर की आवश्यकता भिक्षा माँग कर पूरी करूँगा और पूर्ण आयु पैदल भ्रमण करुंगा। यह बात सुनकर स्वामी जी के विद्या गुरु स्वामी चेतन भारती जी कहने लगे, दयानन्द यह जो मार्ग आप लेने जा रहे हैं वह मैं लेना चाहता था। एकदम स्वामी दयानन्द जी बोले कि स्वामी जी अब क्या हो गया है अभी आप मेरे साथ चलें मैं आपका सब सामान लेकर चलूँगा और मेरी भिक्षा के साथ साथ आपजी के लिए भी भिक्षा माँग कर खिलाऊँगा।

यह उत्तर सुन कर गुरुदेव गद्गद् हो गये और आशीर्वाद के सहित कहने लगे कि दयानन्द अब मेरे बस की बात नहीं है, अब तो हम यहीं ठीक हैं।

16. साधना काल के दो मित्र महात्माओं का आत्मीय मिलन :

एक समय स्वामी दयानन्द 'गिरि' जी महाराज लाला सेवा राम की बगीची, जगाधरी में विचर रहे थे। उनके पास यमुना गैस के मालिक की माता जो स्वामी जी की श्रद्धालु थी, अपने गुरु स्वामी गणेशानन्द जी महाराज, मण्डलेश्वर साधना सदन हरिद्वार का संदेश लेकर आई कि स्वामी जी हरिद्वार से श्री गणेशानन्द जी महाराज आपजी को जगाधरी में आकर मिलना चाहते हैं, जिसके लिए वह जानना चाहते हैं कि वह आपके पास किस समय आएं। यह बात सुनकर स्वामी जी मुस्कुराये और कहने लगे कि नारायण! हम तो रमते राम भिक्षु फक्कड़ महात्मा हैं, हमसे क्या समय लेना है। हमारे पास तो किसी भी समय कोई भी आ सकता है क्योंकि हम तो खुद किसी की जगह पर विचर रहे हैं। समय तो मण्डलेश्वरों से लेना पड़ता है जो कि आश्रमों के कार्यक्रम में व्यस्त होते हैं। स्वामी जी को मेरी तरफ से प्रार्थना करना कि वे कभी भी किसी भी समय दर्शन देने के लिए आ सकते हैं। यहाँ यह बात भी लिखना आवश्यक है कि स्वामी गणेशानन्द जी महाराज तथा स्वामी दयानन्द जी महाराज दोनों साधना काल के लम्बे समय से मित्र महात्मा थे। स्वामी जी के कथन अनुसार माता जी ने स्वामी गणेशानन्द जी को आगे संदेश दे दिया। स्वामी गणेशानन्द जी महाराज अपने कई शिष्यों के साथ बड़ी गाड़ी लेकर जगाधरी बगीची में आ गये। स्वामी दयानन्द 'गिरि' जी

महाराज ने उनको बहुत ही आदर व सम्मान दिया। दोनों महात्मा

आपस में मिलकर बहुत ही प्रसन्न हुए। दोनों महात्माओं की आपस में अन्तरंग बातें होती रहीं। बाकी सब महात्माओं ने स्वामी जी को दण्डवत् प्रणाम् किया। दोनों संतों का उस समय का मिलन ऐसा था कि वह शब्दों में लिखना बड़ा छोटा मालूम होता है अर्थात् विलक्षण था।

स्वामी गणेशानन्द जी महाराज सभी महात्माओं तथा स्वामी जी के लिए भिक्षा तथा फलाहार भी काफी मात्रा में लाए थे। भिक्षा के लिए महात्माओं की पंक्ति लग गई और स्वामी गणेशानन्द जी ने स्वामी जी को भी अपने साथ भोजन के लिए प्रार्थना की। स्वामी जी ने कमरे में टंगा हुआ अपना खप्पर उठाया जिसमें पांच घरों से मांगी हुई भिक्षा पड़ी थी और स्वामी गणेशानन्द जी महाराज के साथ पंक्ति में बैठ गये। जब भिक्षा वितरित होने लगी तो स्वामी जी ने पास में बैठे स्वामी गणेशानन्द जी को अपना भिक्षा पात्र दिखाया जिसमें पहले से ही मांगी हुई भिक्षा पड़ी थी। स्वामी जी, स्वामी गणेशानन्द जी से कहने लगे कि मैं तो अपने भक्तों से मांगी हुई भिक्षा ही ग्रहण करूंगा, आप सभी महात्मा अपना भोजन ग्रहण कीजिए। फिर भी स्वामी गणेशानन्द जी महाराज के आग्रह करने पर स्वामी जी ने एक दो चम्मच सब्जी और एक दो टुकड़े रोटी के तथा थोड़ा सा फलाहार प्रसाद रूप में स्वीकार कर लिया और अपने खप्पर में ही डाल लिया। ऐसा था स्वामी जी महाराज का त्यागमय जीवन जिसकी मिसाल मिलनी अति मुश्किल है। अंत में भिक्षा के उपरान्त स्वामी जी तथा स्वामी गणेशानन्द जी की अकेले में कुछ अन्तरंग बातें हुईं। ऋषियों का वार्तालाप तो सिर्फ अध्यात्मपरक ही होता है। इसके पश्चात् स्वामी गणेशा नन्द जी महाराज ने स्वामी जी से वापिस जाने

की आज्ञा मांगी और स्वामी दयानन्द जी महाराज ने बड़े प्रेम से श्रद्धापूर्वक स्वामी गणेशानन्द व उनके अन्य अनुयायी महात्माओं को सम्मान के साथ उठकर प्रेमपूर्वक विदा किया।

***

स्वामी जी के एक अन्य भक्त अम्बाला के **श्री सुरजीत** नागपाल के साथ घटित चमत्कारी घटनाओं का विवरण :

17. भक्तों का मार्गदर्शन : वर्ष 1972 में श्री स्वामी जी लभ्भू के तालाब (दु:ख भंजनी मन्दिर) एस.ए.जैन कॉलेज रोड अम्बाला शहर पर पधारे हुए थे। उनके दर्शन करने के लिये सुरजीत नागपाल सायं चार बजे लभ्भू के तालाब के पास एक पुरानी कुटिया पर पहुँचे, वहाँ श्री स्वामी जी प्रवचन की अमृत-वर्षा कर रहे थे। यह, नागपाल जी की श्री स्वामी जी से पहली मुलाकात थी। उस समय चौमासा भी श्री स्वामी जी ने इसी स्थान पर काटा था। हर रविवार को छुट्टी होने के कारण प्रवचन सुनने का सौभाग्य श्री नागपाल को प्राप्त होता रहा और श्री स्वामी जी की कथनी और करनी एक देख कर उनके मन में श्रद्धा दिन-प्रतिदिन बढ़ने लगी।

एक दिन सायं पाँच बजे प्रवचन सुनने के पश्चात् श्री नागपाल श्री स्वामी जी को उनके कमरे में अलग से मिला। उन्होंने श्री स्वामी जी से दोनों हाथ जोड़कर विनम्र प्रार्थना की कि स्वामी जी हमारे घर भी एक दिन भिक्षा के लिये आने की कृपा करें। श्री स्वामी जी ने यह प्रार्थना स्वीकार कर ली और रविवार छुट्टी वाले दिन आने का निश्चित समय कर दिया। उसी निश्चित दिन पर श्री स्वामी जी अम्बाला शहर की नई बस्ती में स्थित श्री नागपाल की कुटीर में भिक्षा लेने के लिये आ गए। वह दिन उनके पूरे परिवार के लिये बड़ा ही भाग्यशाली था कि भगवान् स्वयं अवतार ले कर श्री स्वामी जी के

रूप में अपने श्रीचरण डालने के लिये उनके घर पधारे।

श्री स्वामी जी महाराज के आने से पहले श्री अनन्त प्रेम मन्दिर की परमाध्यक्षा श्री शील जी महाराज भी देवियों के साथ घर पधारी हुई थीं। बहिन श्री शील जी महाराज की भी श्री स्वामी जी के साथ यह पहली मुलाकात थी। श्री स्वामी जी के आने पर पूज्य श्री शील जी महाराज एवं अन्य देवियाँ श्री स्वामी जी के श्री चरणों में प्रणाम करके बैठ गए। श्री स्वामी जी ने अपना आसन ग्रहण करने के पश्चात् श्री शील जी महाराज को कहा, "नारायण! कोई धर्म की बात पूछनी है तो कहें?" श्री बहिन जी महाराज ने दोनों हाथ जोड़कर विनम्र भाव से प्रार्थना की कि स्वामी जी आप स्वयं ही कृपा करें।

श्री स्वामी जी महाराज ने मोक्ष के पाँच बलों श्रद्धा, वीर्य, स्मृति, समाधि एवं प्रज्ञा पर संक्षिप्त रूप में प्रकाश डाला। उन्होंने कहा कि मनुष्य को अपने आप को यहाँ तक चेतन करना चाहिये कि ऊपर कहे गये मोक्ष के उपाय रूप पाँच बलों को, कुदरती जीवन के दोषों को शमन करता हुआ, आत्मा के हित के लिये अपने जीवन में अपनाए और सदा बनी रहने वाली शान्ति को प्राप्त करे। भिक्षा ग्रहण करने के पश्चात् स्वामी जी अपनी कुटिया की ओर चले गए। बहिन शील जी के भावपूर्ण निवेदन को स्वीकार करते हुए एक निश्चित दिन भिक्षा के लिए स्वामी जी श्री अनन्त प्रेम मन्दिर अम्बाला शहर में पधारे। भक्तों के आग्रह करने पर श्री स्वामी जी मन्दिर के अन्दर आ गये और आसन पर विराजमान हो गये। श्री शील जी महाराज की प्रार्थना करने पर कि स्वामी जी हमारे करने–कराने के लिए हमें कुछ भी उपदेश देने की कृपा करें। श्री स्वामी जी ने श्री शील जी महाराज की प्रार्थना को स्वीकार करते हुए मैत्र्यादि दस बलों जैसे

मैत्री, करुणा, मुदिता, उपेक्षा, क्षमा, शील, दान, वीर्य, ध्यान, समाधि एवं प्रज्ञा पर प्रकाश डाला। उन्होंने कहा कि उक्त दस बलों द्वारा आध्यात्मिक जीवन व आध्यात्मिक जीवन के साधना के अंगों को पुष्ट करना परमावश्यक है क्योंकि स्वभाव से मनुष्य का जीवन भौतिक क्षेत्र में ही सीमित रहता है। मनुष्य भौतिक सुखों को ही ग्रहण करने में सारा जीवन लगा देता है इसलिये मनुष्य को भौतिक जीवन में अधिक विश्वास न रखकर इसके विपरीत अपने आप में जीने के लिये सर्वप्रथम श्रद्धा रख कर आध्यात्मिक साधना के पथ पर चलना होगा।

इसके पश्चात् स्वामी जी अपने खप्पर में भिक्षा डलवाकर कहने लगे, "नारायण! अब हम चलते हैं।" इसके पश्चात् जब भी स्वामी जी एक दो वर्ष के बाद अम्बाला शहर आते तो श्री शील जी महाराज स्वयं देवियों के साथ भिक्षा लेकर जातीं या स्वामी जी से प्रार्थना करतीं कि वह प्रेम मन्दिर से भिक्षा अवश्य लेकर जाएं जिससे कि सब देवियों को भिक्षा के बहाने स्वामी जी महाराज के दर्शन भी हो जाया करें। श्री शील जी महाराज के साथ जब भी देवियां स्वामी जी के दर्शनार्थ कुटिया जाया करतीं तो वे स्वामी जी से गीता जी के मुख्य–मुख्य श्लोकों का संस्कृत भाषा में शुद्ध उच्चारण तथा उनकी व्याख्या पूछा करती थीं। स्वामी जी देवियों की गीता जी के प्रति श्रद्धा देखकर बहुत ही प्रसन्न होते और देवियों को गीता जी के मुख्य–मुख्य श्लोकों का शुद्ध उच्चारण पुराने ऋषियों के अनुरूप अपने मुखारविन्द से सुनाते थे और उन श्लोकों की व्याख्या भी समझ में आने वाली भाषा में बड़े विस्तार से समझाते थे, जिनको सुनकर प्रेम मन्दिर की देवियां धन्य हो जाया करती थीं और कहती

भी थीं कि गीता जी के श्लोकों का जैसा शुद्ध उच्चारण और उनकी व्याख्या पूज्य स्वामी जी करते हैं उतना शुद्ध उच्चारण तो हमने आज तक कभी भी किसी से भी श्रवण नहीं किया। ऐसे में प्रेम मन्दिर की सभी देवियां स्वामी जी को भगवान् ही मानने लग गई थीं। देवियों की श्रद्धा, सुन्दर भाव व निर्मल जीवन देखकर स्वामी जी कभी-कभी देवियों के आग्रह करने पर अपनी पहनने वाली चादर, गेरूआ रंग करने के लिए श्री शील जी महाराज को दे दिया करते थे। देवियां बड़ी श्रद्धा पूर्वक गेरूआ रंग करने के पश्चात् चादर श्री शील जी महाराज के साथ स्वामी जी को दे आती थीं। जो कोई भी भक्त देहली, चिन्तपूर्णी इत्यादि शहरों से स्वामी जी के दर्शनार्थ आते तो उनके रहने के लिये स्वामी जी महाराज प्रेम मन्दिर जाने की आज्ञा दे देते थे।

18. नाग को शान्त करना : एक बार वर्ष 1976 में श्री स्वामी जी अम्बाला शहर के एस.ए.जैन कॉलेज रोड पर राय साहिब की बगीची में आये हुए थे। श्री सुरजीत नागपाल अपनी सुपुत्री चन्दना को लेकर दर्शन करने के लिये कुटिया गया। वे दोनों श्री स्वामी जी के श्री चरणों में प्रणाम करके बैठ गये। उस दिन श्री स्वामी जी बड़ी प्रसन्न मुद्रा में बैठे हुए थे। श्री स्वामी जी ने कहा, "नारायण! आज आप अपनी बेटी को भी साथ लाये हो।" श्री नागपाल जी ने दोनों हाथ जोड़ कर विनम्रतापूर्वक कहा कि हाँ स्वामी जी, क्योंकि बेटी हठ करने लग गई थी कि मुझे भी श्री स्वामी जी के दर्शनार्थ ले चलो।

श्री स्वामी जी ने कहा, "नारायण! कुछ पूछना है तो पूछो।" उन्होंने विनम्र प्रार्थना की कि प्रभु आप स्वयं ही कृपा करो। श्री स्वामी

जी ने एक घटना सुनाई। एक महात्मा पैदल भ्रमण करने वाला था। वह पैदल भ्रमण करते–करते सायं को एक ऐसे स्थान पर पहुँचा जहां पर एक कुटिया खाली पड़ी थी। उसमें आसन लगाने से पूर्व साथ ही एक पाठशाला थी जिस में बच्चे पढ़ते थे, उनके अध्यापक से महात्मा ने पूछा कि अध्यापक जी यदि आपको कोई एतराज न हो तो हम एक रात साथ खाली पड़ी कुटिया में आसन लगा लें। इतने में पाठशाला के अध्यापक ने कहा कि महात्मा जी हमें आपके कुटिया में रहने से तो कोई एतराज नहीं है, परन्तु रात्रि को इस कुटिया में हर रोज शेषनाग निकलता है। यह सुन कर महात्मा ने कहा कि आप इसकी चिन्ता मत करें। महात्मा ने अपना आसन उस कुटिया में लगा लिया। रात्रि बारह बजे बच्चों ने जो पास में ही गुरुकुल में रहते थे गुरु जी को कहा कि गुरु जी चलकर देखें तो सही कि रात्रि में शेषनाग कुटिया में आया है कि नहीं। बच्चे तथा गुरु जी दूर से कुटिया की तरफ देखने लगे तो क्या देखते हैं कि शेषनाग की रोशनी आगे से भी कहीं अधिक थी। शेषनाग जब महात्मा के सामने आया तो महात्मा ने उसके मुख के सामने अपना खप्पर कर दिया। इस प्रकार शेषनाग कई बार उठ कर फुंकार मारता और फिर पृथ्वी पर बैठ जाता। उतनी ही बार महात्मा शेषनाग के मुख के आगे अपना खप्पर कर देता। जब शेषनाग थक गया तो महात्मा ने अपने तप के बल से उस शेषनाग के ऊपर अपना खप्पर रख दिया तथा उसके ऊपर एक ईंट भी रख दी और अपने आसन पर स्थिर होकर अपने ध्यान भजन में लग गया।

प्रातः पाँच बजे बच्चों ने फिर गुरु जी को कहा कि गुरु जी

महात्मा जी के पास चलते हैं और उनसे पूछते हैं कि क्या रात्रि में शेषनाग आया था या नहीं। गुरु जी बच्चों को लेकर महात्मा जी के पास गए और प्रार्थना की कि महात्मा जी रात्रि में कोई शेषनाग आया था? महात्मा जी ने कहा कि आया तो था, यदि आपको विश्वास न हो तो आपको खप्पर उठाकर दिखाऊँ कि शेषनाग बैठा है या नहीं। महात्मा जी ने खप्पर को थोड़ा ऊपर करके बच्चों को शेषनाग दिखाया जो गुंजल मार कर खप्पर के नीचे बैठा था। तब गुरु जी तथा बच्चों ने कहा कि यह महात्मा तो अवतारी महापुरुष है और प्रणाम करके वापस अपने स्थान को चले गये।

श्री स्वामी जी ने कहा कि वह महात्मा तो कर्मयोगी व सिद्ध महापुरुष था, यदि वह चाहता तो उस शेषनाग को भस्म भी कर सकता था। परन्तु उस महात्मा ने अपनी शक्ति का दुरुपयोग नहीं किया, केवल अपनी रक्षा के लिये खप्पर का प्रयोग किया। इसी प्रकार **मनुष्य को भी चाहिए कि जब वह अपनी शक्ति (पावर) में हो तो अपनी शक्ति का दुरुपयोग न करे प्रत्युत् अपने अधीन कार्य कर रहे कर्मचारियों के प्रति दया तथा क्षमा भाव रखे।** ऐसा उपदेश सुनकर श्री नागपाल ने स्वयं इसे अपने जीवन में उतारने का प्रयत्न किया जिससे सेवा काल के समय उन्हें अद्भुत लाभ हुआ। इस सारी कथा से ऐसा प्रतीत होता है कि महात्मा कोई और नहीं था परन्तु स्वयं स्वामी जी महाराज ही थे। अपने संबंध में घटी किसी घटना को बताते समय ऐसा ही कहते थे कि एक महात्मा थे। उनके साथ यह घटना घटी। 'मैं' को अपने उपदेशों या ज्ञान–चर्चा में प्रवेश नहीं करने देते थे। स्वामी जी हमेशा अपने–आप को छुपाते ही रहते थे।

19. भिक्षुक स्वरूप : वर्ष 1991 में श्री शील जी महाराज श्री 1008 श्री मुनि हरमिलापी जी महाराज के साथ श्री अनन्त प्रेम मन्दिर अम्बाला शहर से देहली जा रहे थे क्योंकि उन दिनों में श्री मुनि हरमिलापी जी महाराज का स्वास्थ्य ठीक नहीं चल रहा था। जब श्री शील जी महाराज की कार मुरथल (हरियाणा) के निकट पहुंची तो उस समय के कार चालक ने श्री स्वामी दयानन्द 'गिरि' जी महाराज को सड़क के किनारे–किनारे पैदल जाते देखा तो कार चालक ने गाड़ी रोक ली और श्री शील जी महाराज को श्री स्वामी जी के पैदल जाने की सूचना दी। इतने में चालक ने श्री स्वामी जी के पास जा कर प्रणाम किया। श्री स्वामी जी ने पूछा, "नारायण! आप यहां कैसे?" तो चालक ने बताया कि श्री शील जी महाराज श्री मुनि हरमिलापी जी महाराज के साथ दिल्ली जा रहे हैं। आप जी को जाते देख कर हम दर्शन के लिए रुक गये। इतने में श्री शील जी महाराज कार से नीचे उतर कर स्वामी जी को मिलने के लिए आ ही रहे थे कि श्री स्वामी जी, कृपा के भण्डार दयालु भगवान्, स्वयं कार के पास आ गये। श्री शील जी महाराज तथा उनके साथ देवियों ने श्री स्वामी जी को नमस्कार किया। श्री स्वामी जी ने बहिन श्री शील जी महाराज से पूछा, "नारायण! आप यहाँ कैसे," तो श्री शील जी महाराज ने श्री मुनि हरमिलापी जी महाराज का स्वास्थ्य ठीक न होने के बारे में दोनों हाथ जोड़कर विनम्रतापूर्वक संक्षिप्त में सारी बात कही। श्री स्वामी जी ने भी बहिन शील जी से श्री मुनि हरमिलापी जी महाराज के स्वास्थ्य के बारे में पूछा। श्री शील जी महाराज ने श्री हरमिलापी जी महाराज के हाथ से कुछ फल, थोड़ा सा मिष्ठान तथा

काजू की बर्फी भिक्षा के रूप में लेने के लिए स्वामी जी से विनम्र प्रार्थना की। स्वामी जी ने बहिन शील जी का विनम्रता का भाव देखकर फलाहार के रूप में भिक्षा अपने खप्पर में डलवा ली। भिक्षा लेते समय स्वामी जी के हाथ में रास्ते में किसी भक्त द्वारा प्रेम से दी हुई एक गाजर भी थी, वह भी स्वामी जी ने खप्पर में ही डाल ली। श्री स्वामी जी की श्री हरमिलापी जी महाराज के साथ यह पहली मुलाकात थी। श्री स्वामी जी भिक्षा लेकर अम्बाला की ओर पैदल चल दिये और श्री शील जी महाराज देहली की तरफ चले गये। श्री स्वामी जी जब अम्बाला शहर की राय साहिब की बगीची में पधारे तो भक्त नागपाल श्री स्वामी जी के दर्शनार्थ गया। उस समय श्री स्वामी जी ने बताया कि रास्ते में बहिन शील जी तथा श्री मुनि हरमिलापी जी महाराज मिले थे और उन्होंने जो फलाहार के रूप में भिक्षा दी थी वही हमने उस दिन मुरथल से चल कर समालखा के शिव मन्दिर में जाकर ग्रहण की और वहीं पर उस दिन हमारा पड़ाव रहा। सुबह होते ही हम अगले पड़ाव के लिए चल पड़े। आगे श्री स्वामी जी ने बताया कि जब हम पैदल विचरते घरौंडा के पास पहुंचे तो रास्ते में एक किसान का घर आया। उस घर से भिक्षा लेने के लिए हमने 'नारायण हरि' बोला। आवाज सुनकर घर से एक लड़का आया और खड़ी बोली में कहने लगा कि बाबा! पहले डांगरां नूं पट्ठे डाल फिर भिक्षा मिलेगी। इतना सुनकर श्री स्वामी जी आराम से आगे भिक्षा लेने के लिए चल पड़े। थोड़ी दूर पर ही एक और मकान आया उस पर भी श्री स्वामी जी ने भिक्षा के लिए 'नारायण हरि' कहा। उस घर के अन्दर से एक माता आई और आकर उसने बड़े प्रेम से नमस्कार किया और कहा कि बाबा जी ठहरो मैं अभी आई। वह बड़े भक्ति भाव

से घर के अन्दर जाकर भिक्षा लाई और श्रद्धापूर्वक हमारे खप्पर में भिक्षा डाल दी और साथ में काफी मात्रा में मक्खन भी डाल दिया। वही भिक्षा हमने अपने अगले पड़ाव पर जाकर ग्रहण की। यहाँ पर एक बात विचार करने की है कि एक घर में तो संत के भिक्षा मांगने पर उस घर का प्राणी बिना सोचे विचारे भिक्षा देने की बजाए 'मैं' के शब्द बोलता है और दूसरी तरफ जब वही संत दूसरे घर में 'नारायण हरि कह कर भिक्षा मांगता है तो अन्दर से उस घर का प्राणी बड़ी श्रद्धा से प्रेमपूर्वक मक्खन के साथ भिक्षा देता है और अपने आप को धन्य मानता है कि आज हमारे घर में भगवान् ने किसी संत के रूप में दर्शन दिये हैं। बस! यहीं से जीव या प्राणी का भाग्य बनना शुरू होता है। यही है भौतिक जीवन जीने में और आध्यात्मिक जीवन जीने में अन्तर। स्वामी जी तो फक्कड़ विरक्त महात्मा थे। वह तो इस व्यापक में हर स्थिति में पूर्ण स्वतंत्र होकर विचरण करते थे। वे तो सब को 'नारायण' कहते थे और सब में 'नारायण' के दर्शन करते थे। ऐसा उनका निष्कलंक व बेपरवाह जीवन था। गुरुवाणी में भी ठीक ही लिखा है :–

"जे राज देवे तो कवन बड़ाई।
जो भीख मंगाये तो क्या घट जाई।।"

श्री स्वामी जी का जीवन भी ऐसा ही पावन पवित्र सर्वगुण सम्पन्न था। उनको प्रशंसा से कोई प्रसन्नता नहीं होती थी और न ही भिक्षा मांग कर लेने में कोई संकोच होता था। श्री स्वामी जी सदैव सादा जीवन उच्च विचार के सिद्धान्त पर विश्वास करते थे।

20. स्वामी जी से प्राप्त चाय प्रसाद का रस : वर्ष 1996 के श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ परमहंस श्री स्वामी दयानन्द 'गिरि' जी महाराज अम्बाला से चिन्तपूर्णी पैदल भ्रमण करते–करते चौमासा काटने के लिये चिन्तपूर्णी के निकट गाँव धलवाड़ी (हिमाचल प्रदेश) में ठहरे हुए थे। श्री स्वामी जी के दर्शनार्थ श्री सुरज़ीत नागपाल का मन बहुत व्याकुल हो गया। उन्होंने अपनी धर्मपत्नी से कहा कि कल श्री स्वामी ज़ी की भिक्षा प्रात:काल शीघ्र उठ कर तैयार कर लेना ताकि हम हरियाणा राज्य परिवहन की बस जो प्रातः छहः बजे ज्वाला जी के लिए चलती है, उस बस के द्वारा जा कर श्री स्वामी जी के श्री चरणों में दोपहर तक पहुंच कर भिक्षा दे दें तथा उनके दर्शन भी कर लेंगे एवं माता चिन्तपूर्णी के दर्शन भी कर आएंगे।

इस प्रकार वे प्रातः छह बजे बस पर सवार हुए और लगभग ग्यारह बजकर पंतालिस मिनट पर चिन्तपूर्णी पहुंचे। वहाँ से दो–तीन किलोमीटर दूर धलवाड़ी गांव पैदल चलते–चलते लगभग एक बजे श्री स्वामी जी की कुटिया पर पहुंचे। श्री स्वामी जी के दर्शन करने के पश्चात् मन की कली खिल उठी तथा उनके श्रीचरणों में प्रणाम करने के पश्चात् उनके श्रीचरणों में बैठ गए। श्री स्वामी जी ने बड़े स्नेहिल शब्दों में कहा "नारायण! इतनी दूर कैसे आ गए।" रास्ता भी ठीक नहीं है, श्रीचरणों में विनम्र भाव से प्रार्थना की कि स्वामी जी दर्शनार्थ आए हैं एवं साथ भिक्षा भी ले कर आए हैं। श्री स्वामी जी धूने के निकट विराजमान थे और पीतल की गड़वी में खीरे की सब्जी केवल नमक डाल कर रखी हुई थी। श्री स्वामी जी ने कहा कि मौसम ठीक न होने के कारण हम भिक्षा लेने नहीं गये। कल की चपातियों के छोटे–छोटे टुकड़े करके अखबार पर बिखेर रखे थे। यह भिक्षा खीरे की सब्जी में डालकर धूने पर रख देनी थी, थोड़ी देर के बाद यह

दलिये की भान्ति नर्म हो जाती और फिर यही हमने ग्रहण करनी थी। श्री स्वामी जी से विनम्र भाव से प्रार्थना की कि प्रभो! यह सेवक भी भिक्षा ले कर आया है। श्री स्वामी जी ने सहर्ष प्रार्थना स्वीकार करते हुए आज्ञा दी, "नारायण! कमरे में हमारा खप्पर पड़ा है, वह ले आओ।" सेवक आज्ञानुसार खप्पर ले आया और श्री स्वामी जी ने बड़े प्रेम से भिक्षा ली और आधे खीरे की सब्जी हम को प्रसाद रूप में भी दी तथा आज्ञा दी कि बाहर वृक्ष के नीचे बैठ कर भोजन कर आओ। तत्पश्चात् आप को धूने की बनी चाय पिलाएंगे, क्योंकि सफर करके आए हो। श्री स्वामी जी ने लोटे में धूने पर चाय रख दी और हम भोजन करने के लिये बाहर वृक्ष के नीचे चले गये। श्री स्वामी जी ने भी बड़े प्रेम से भिक्षा ग्रहण की तत्पश्चात् हम भी भोजन करने के पश्चात् श्री स्वामी जी के श्रीचरणों में आए और नमस्कार करके बैठ गए। श्री स्वामी जी ने अपने कर कमलों द्वारा बनाई गई चाय पहले स्वयं अपने कसोरे में ली तथा शेष हम दोनों को पीने के लिये दी। चाय पीने का जो आनन्द श्री स्वामी जी के श्रीचरणों में आया उसका वर्णन करना इस लेखनी से बाहर है। श्री स्वामी जी की आज्ञानुसार एक रात स्वामी जी के अनन्त भक्त पंडित सन्त राम जी के घर रुके।

प्रातः स्नान करके आज्ञानुसार वे श्री स्वामी जी के लिये दूध एवं चाय ले कर कुटिया पर गये। श्री स्वामी जी पद्मासन पर अपने कमरे में ध्यान–समाधि में बैठे हुए थे। थोड़ी देर प्रतीक्षा की और तत्पश्चात् श्री स्वामी जी ने आदेश दिया, "नारायण! अन्दर आ जाओ।" वे श्रीचरणों में नमस्कार करके बैठ गए तथा श्री स्वामी जी ने बड़े प्रेम से दूध तथा असगन्ध ग्रहण किया। तत्पश्चात् चाय के

साथ आरोग्यवर्धनी वटी ग्रहण की। चाय पीने के पश्चात् श्री स्वामी जी ने बताया कि धर्म, आस्था और विश्वास से शुरू होता है और जब आस्था व विश्वास स्थायी हो जाते हैं तो वहाँ तर्क समाप्त हो जाता है। इसलिये, साधक को चाहिए कि वह दूसरे के सुख में मैत्री भाव रखे तथा उसके सुख में सुखी रहे। दूसरे के दु:ख में दया का भाव अपनाना चाहिए तथा दूसरे के गुण को देखकर प्रसन्न होवे। उन्होंने कहा कि "साधक को चाहिये कि दूसरों की कमी, कमजोरी, पाप, दोष, अवगुण की ओर ध्यान न दे तथा न ही अपने जीवन में किसी दूसरे की निन्दा करे।"

थोड़ी देर में पंडित श्री प्रकाश कालिया चिन्तपूर्णी वाले भी श्री स्वामी जी के दर्शनार्थ आ गये तथा तत्पश्चात् श्री स्वामी जी के श्रीचरणों में प्रणाम करके जाने की आज्ञा मांगी तो श्री स्वामी जी ने सहर्ष आज्ञा दी और कहा कि पंडित प्रकाश कालिया के साथ माता चिन्तपूर्णी के दर्शन भी करते जाना। आज्ञानुसार हम पंडित प्रकाश जी के साथ माता चिन्तपूर्णी के मन्दिर जाकर श्रीचरणों में बैठकर दर्शन करके अम्बाला को रवाना हो गये।

श्री स्वामी जी ज्ञान के माध्यम से श्रोताओं को श्रद्धा और विश्वास के मार्ग पर लाते थे। उन्होंने कहा था कि मनुष्य मानवीय सभ्यता के शिखर पर विश्वास एवं श्रद्धा के माध्यम से पहुँच सकता है।

21. खेचरी मुद्रा प्रदर्शन : वर्ष 1996 मैं श्री स्वामी जी महाराज अम्बाला शहर राय साहिब की बगीची में आए हुए थे। सायं को 4 से 5 बजे तक श्री स्वामी जी प्रवचन किया करते थे। कुछ श्रद्धालुजन भी श्री स्वामी जी के प्रवचनों का लाभ उठाने हेतु कुटिया में आ जाया करते थे।

एक दिन प्रातः लगभग 9 बजे मैं श्री स्वामी जी के लिये उनके

अनुकूल दूध, चाय लेकर जिससे स्वामी जी अपनी देसी–जड़ी बूटी ले सकें, कुटिया में पहुँच कर श्री स्वामी जी के श्री चरणों में विनम्रता पूर्वक प्रणाम करके बैठ गया। श्री स्वामी जी कहने लगे, "नारायण! चाय लाये हो तो कसोरा जो साथ के कमरे में पड़ा है, जाकर ले आओ।" श्री स्वामी जी की आज्ञा का पालन करते हुए सेवक कसोरा लेकर आ गया। श्री स्वामी जी ने पहले दूध में असगंध तथा शहद डालकर ग्रहण किया और फिर उसके पश्चात् बहुत ही कम मात्रा में चाय का भोग लगाया और साथ में आरोग्यवर्धनी वटी भी ली।

थोड़े समय के पश्चात् एक व्यक्ति अपनी पत्नी के साथ श्री स्वामी जी के दर्शनार्थ आये और श्री चरणों में प्रणाम करके बैठ गए। श्री स्वामी जी ने उन्हें कहा, "नारायण! कैसे आये? धर्म–सम्बन्धी कुछ पूछना है तो पूछो।" इतने में माता जी ने श्री स्वामी जी से प्रार्थना की कि प्रभो! मैंने 'खेचरी मुद्रा' के बारे में कुछ सुन रखा है, आपजी कृपा करके मुझे 'खेचरी मुद्रा' के बारे में कुछ बताएं कि यह क्या क्रिया है। श्री स्वामी जी उस समय बड़ी प्रसन्न मुद्रा में आसन पर बैठे हुए थे। श्री स्वामी जी ने कहा कि बताना क्या है, हम आप को खेचरी मुद्रा लगा कर ही दिखाते हैं। इतने में श्री स्वामी जी ने प्रसन्नतापूर्वक कहा, "नारायण! उठ कर देखें।" श्री स्वामी जी की आज्ञा पाकर हम तीनों उठ कर खड़े हो गये। श्री स्वामी जी ने अपना मुख खोला और पूरी जीभ को अन्दर की तरफ ले गए। हमने देखा कि श्री स्वामी जी का मुख (भगवान् श्री कृष्ण की भान्ति ब्रह्माण्ड दिखाया) बिल्कुल खाली है और जीभ बिल्कुल दिखाई नहीं दे रही थी। थोड़ी देर के पश्चात् श्री स्वामी जी ने जीभ को बाहर कर लिया और मुख में उसको पलटकर अन्दर ले जाकर मुँह के ऊपरी तल पर तालू के साथ लगाकर खेचरी मुद्रा लगाकर दिखाया, यह देखकर हमारा

शरीर रोमाँच से भर गया और हम श्री स्वामी जी को भगवान् का अवतार समझने लगे। खेचरी मुद्रा के बारे में एक बार स्वामी जी ने श्री ज्ञान चन्द गर्ग जी तथा अन्य सेवकों को भी बताया था कि यह योग की ऐसी क्रिया है जिसके द्वारा योगी इस मुद्रा को लगाकर बिना किसी अन्न–पानी के जितने वर्ष चाहें, जीवन रख सकते हैं। इस क्रिया में योगी महात्मा अपनी जीभ को पलटकर तालू के ऊपरी भाग पर ऐसे लगा देते हैं जैसे बच्चा माँ के पेट में होते हुए अपनी खुराक लेने वाली नाड़ी जहाँ से बच्चे को खुराक मिलती है, में लगी होती है। ऐसे में महात्मा जितनी देर भी चाहें इस मुद्रा से बिना किसी जलपान के अपना शरीर रख सकते हैं। इसके पश्चात् श्री स्वामी जी के प्रति हमारी श्रद्धा और भी बहुत गहरी हो गई। उन दिनों में मंगलवार तथा रविवार को ही मुझे श्री स्वामी जी के पास भिक्षा ले जाने का सुअवसर प्राप्त होता था। कुटिया में जाकर श्री स्वामी जी के श्रीचरणों में प्रणाम करके बैठ जाता। श्री स्वामी जी जब कभी बहुत खुश होते थे तो उस दिन अपनी मौज में कई बातें इस तुच्छ सेवक को सुनाया करते थे।

तत्पश्चात् श्री स्वामी जी के आदेशानुसार भिक्षा को उनकी इच्छानुसार खप्पर में डाल देता जो श्री स्वामी जी बड़े प्रेम से एकान्त में बैठकर भिक्षा कर लेते थे। भिक्षा डलवाते समय स्वामी जी ने अपने मुँह में गिने–चुने जितने ग्रास डालने होते थे उतनी ही भिक्षा अपने खप्पर में डलवाते थे। जब स्वामी जी भिक्षा कर लेते तो अपना भिक्षा पात्र स्वयं साफ करते थे, अन्य किसी को भी हाथ नहीं लगाने देते थे। भिक्षा देने के पश्चात् सेवक दण्डवत् प्रणाम करके सेवक घर लौट आता। जब स्वामी जी कुछ अस्वस्थ रहने लगे तब सेवक ने स्वामी जी से कुटिया में भिक्षा को सिर्फ गर्म करने की आज्ञा मांगी ताकि स्वामी जी की सेहत ठीक रहे। बहुत ही आग्रह करने पर इस

तुच्छ सेवक को स्वामी जी ने यह सेवा दे दी तो मैं प्रतिदिन दोपहर को भक्तों द्वारा दी गई भिक्षा को गर्म करके स्वामी जी महाराज के खप्पर में डाल देता जिसे स्वामी जी बड़े प्रेम से ले लेते और मैं स्वामी जी को प्रणाम करके अपने घर लौट आता। ऐसा था स्वामी जी का सादा जीवन और ऐसा स्वामी जी का आशीर्वाद श्री नागपाल पर अन्त तक बना रहा।

22. भक्त को दर्शन : एक बार श्री सुरजीत नागपाल को हैदराबाद (आन्ध्र प्रदेश) में वर्ष 1999 में यात्रा करने के लिये अपनी छोटी बहिन के पास जाने का अवसर मिला। 3 जुलाई से 12 जुलाई 1999 तक वहाँ रहा। दिनांक 11 जुलाई, 1999 को श्री स्वामी जी महाराज स्वप्न में आए और ब्रह्ममुहूर्त में दर्शन दिये और कहने लगे कि सुरजीत "आप का मन अम्बाले आने का नहीं करता।" यह दर्शन होते ही यह सेवक दिनांक 12-7-1999 को हैदराबाद से अम्बाला पहुँच गया तो उसी दिन ही श्री स्वामी जी महाराज भी प्रातः कराला गाँव से अम्बाला के लिये रवाना हुए और सायं को ही अम्बाला शहर राय साहिब की बगीची में पहुँच गये। रात्रि को श्री सुरजीत नागपाल जब श्री चरणों में सेवा एवं दर्शानार्थ राय साहिब की बगीची पहुँचा तो श्री स्वामी जी ने कहा कि नारायण! आप कब हैदराबाद से आए हो? सेवक ने बहुत विनम्रता से कहा, "प्रभो! आप की प्रेरणा से आज ही सायं अम्बाले पहुँचा हूँ।" इसका मतलब है जब भगवान् अपने भक्त पर कृपा करते हैं तो स्वयं ही दर्शन दे देते हैं।

23. पत्नी को स्वास्थ्य लाभ : दिनांक 12-2-2002 को मेरी (सुरजीत नागपाल) धर्मपत्नी श्रीमती राज नागपाल एकाएक हरनियां की पेट में गुच्छियां बन जाने से अथाह पीड़ा से जूझने लगी। स्थानीय

डॉक्टर संतराम अरोड़ा ने जाँच करने के पश्चात्, स्थिति की नाजुक

बताते हुए इसे चण्डीगढ़ के सैक्टर 32 के मैडिकल कॉलेज हस्पताल में ले जाने का परामर्श दिया। वहाँ ले जाने से पूर्व मैं अपनी धर्मपत्नी को परम आदरणीय स्वामी जी के पास दर्शनार्थ ले गया। सब स्थिति को जानने के पश्चात् स्वामी जी ने आदेश दिया, "जाओ अपनी पत्नी की सेवा मेरी सेवा समझ कर करो, स्वस्थ हो जाएगी।" चण्डीगढ़ के मैडिकल हस्पताल में निरीक्षण पर बढ़ी हुई शुगर और नाड़ियों के इकट्ठे होने की वजह से 80% बचने की उम्मीद नहीं थी। परन्तु फिर भी, इलाज हुआ, कई दिनों तक I.C.U. में रहने के पश्चात् और ऑपरेशन के बाद, समय के अन्तराल के साथ, अब वह वाकर ले कर चलने लगी है। यह सब पूज्य स्वामी दयानन्द 'गिरि' जी महाराज और श्री जीवन मुक्त सर्वव्यापी जी महाराज तथा उनकी शिष्या श्री शील जी महाराज जो अन्नपूर्णा माँ हैं, की कृपा और आशीर्वाद से हुआ है। सुरजीत नागपाल और राजनागपाल महापुरुषों से ऐसा स्नेह और कृपा पाकर नतमस्तक हैं।

***

24. एक विरला महात्मा : स्वामी जी के ब्रह्मलीन होने के पश्चात् उनके **एक भक्त श्री अश्विनी कुमार** जी ने स्वामी दयानन्द जी के सम्बन्ध में कुछ विशिष्ट बातें लिखी हैं। उनके कुछ अंश प्रस्तुत हैं:

स्वामी जी कभी-कभी अत्यन्त प्रेम में विभोर होकर भक्त साधकों को साधना में प्रेरित करने के लिए अपने जीवन की घटनाओं से अवगत कर देते थे। ऐसे ही एक भक्त साधक को महाराज श्री ने बताया कि 1945-46 की बात है, वह बद्रीनाथ की तरफ पहाड़ों में साधना-रत थे। भारत में गेहूं की काफी कम उपज उस वर्ष हुई होगी। गेहूँ मोल मिलने में भी दिक्कत थी। महाराज श्री बता रहे थे

कि साधु महात्मा को तो मांगने से किसने रोटी देनी थी? लगभग 28 दिन घास खाकर ही समय व्यतीत किया। शेर, भालू आदि जंगली जानवरों का भी उनको कोई भय नहीं था और स्वयं ही आगे बता रहे थे कि ध्यान में इतना आनन्द विभोर रहते थे कि किसी जंगली जानवर की जैसे कोई खबर ही नहीं। 1947 में महाराज श्री नीचे आये तो मालूम हुआ कि देश का बटंवारा हो गया है। उस समय से 80 वर्ष की आयु तक आप भ्रमण में ही रहे। सारे भारतवर्ष का पैदल भ्रमण किया। किसी भी सवारी गाड़ी का उपयोग नहीं किया। गर्मी, सर्दी, बरसात में भी चलते थे। इस दौरान रात्रि–काल में विश्राम की व्यवस्था गाँव या बस्ती के बाहर किसी मन्दिर या उसके चबूतरे पर या अन्य किसी टूटी फूटी खण्डर हुई–हुई उजड़ी–उजाड़ जगह पर ही होती थी। प्राय: ऐसी व्यवस्था न होने पर सड़क के किनारों पर भी पेड़ों के नीचे रात बिताकर सुबह चल देते थे। उनका निष्कलंक जीवन इतना सरल सादा सहज स्वाभाविक व प्राकृतिक हो चुका था कि वह सभी के लिये एक मिसाल था। उनकी दिनचर्या इतनी स्वच्छ थी कि कोई भी उनके प्रति अंगुली नहीं उठा सकता था। जो भी संसार में प्रकट भगवान् कभी हुए, उनके जीवन को पूर्व के ऋषियों के अनुसार महाराज श्री जी ने भी ध्यान में समझकर प्राकृतिक जीवन की लाचारियों पर काबू पाकर, थोड़ा सुख त्यागकर थोड़ा दु:ख झेलकर भी भगवान् में ही बसने वाली शान्ति और सुख को पाया और आध्यात्मिक जीवन का मार्ग उन्नत एवं विकसित करने की वही शिक्षा ही दूसरों को कल्याण के लिये बतलायी। ग्रन्थों के प्रकटीकरण में जो एक दो बात असामान्य देखी गयी, वह बताना चाहूँगा। यह बात 1975 की है। महाराज श्री चतुर्मास के लिये जगाधरी (हरियाणा)

कुटिया में ठहरे हुए थे। घटना के दिन मेरा बड़ा भाई भी मेरे साथ था। सायंकाल जब महाराज श्री के दर्शन हेतु हम गये तो कुटिया में क्या देखते हैं कि सारी दीवार अंग्रेजी के Verses (श्लोकों या छन्दों) से लिखी भरी पड़ी है। कारण कि कागज था नहीं। किसी से माँगने की इच्छा नहीं हुई। अन्दर से ज्ञान का चश्मा फूट रहा था। तो दीवार को ही कागज बना दिया। सफेद दीवार थी। कच्ची काली पैंसिल से लिखा हुआ था। यह हमने स्वयं देखा।

दूसरी विशेष बात यह थी कि जब तक महाराज श्री पैदल भ्रमण में रहे 80 वर्ष की आयु तक, तब तक मोमबत्ती या दीये (दीपक) की रोशनी से ही रात्रि का सारा काम चलाते थे। बिजली की रोशनी का उपयोग नहीं करते थे। अतः उपर्युक्त वर्णित सारे धर्म ग्रन्थों की विषय सामग्री की तैयारी मोमबत्ती व दीये की रोशनी में ही की गयी। कितना सादा कम से कम जरूरतों वाला उनका जीवन था। छोटी-मोटी जरूरत की चीज रखने के लिये एक झोला (थैला), वस्त्र रूप में एक दो चद्दर, सर्दी के लिये गुदड़ी, भोजन का खप्पर तथा पानी की चिप्पी, सारी आयु बस! यही उनकी asset या belongings या संग्रह था। आयु-पर्यन्त महाराज श्री जी ने अपनी कोई कुटिया या निजी स्थान नहीं बनाया। प्रायः अपने जीवन के अन्तिम समय में ऐसा कहा भी करते थे कि न तो उनको किसी स्थान विशेष से लगाव है और न ही कोई इस बात का भय ही है कि रहने की व्यवस्था वृद्धावस्था में भी कैसे होगी? क्योंकि प्रतिकूल से भी प्रतिकूल परिस्थितियों में भी रहकर उन्होंने देखा हुआ था।

स्वामी जी की जीवन शैली की कुछ विशेषताएं—

जब भी कभी किसी ने उनको देखा हो तो पदमासन पर ही विराजमान पाया, लेटे हुए तो शायद ही कभी किसी ने उनको देखा

हो। बोलते थे– ***"पराधीन सुपनेहु सुख नाँही"*** अर्थात् छोटे से छोटे काम के लिए भी किसी पर निर्भर नहीं करते थे। झाड़ू इत्यादि सफाई करना, पानी की बाल्टी भरना। जीवन के अन्तिम दिन तक उन्होंने अपना भोजन का खप्पर भी किसी को धोने नहीं दिया। वस्त्र इत्यादि भी स्वयं धोते थे। ध्यानयोगी व ज्ञानयोगी होते हुए भी वे एक महान् कर्म योगी भी थे। हर एक कर्म में मन से जुड़कर इतनी स्मृति से करते थे कि देखने वाला हैरान होता था। उनको स्मृतिपूर्वक सब कर्म करने की विशेषता को देखकर कभी यदि किसी ने उनके सामने ऐसा बोल भी दिया हो, कि स्वामी जी! जब आप भिक्षा के लिये बाजार से निकलते थे, तो न तो दांये देखते थे न बांए। अपनी चाल में ही आप का ध्यान होता था। तो ऐसा कहने वाले से कहते थे कि यदि आपको ऐसा अच्छा लगा है तो आप भी सब कर्म इसी प्रकार स्मृति से किया करो। स्वयं भी खाने पीने में, बातचीत में, रहन सहन में इतने संयमी थे कि आम मनुष्य जिसकी कल्पना भी नहीं कर सकता। समय स्थिति के अनुसार जितनी मात्रा में भोजन की आवश्यकता है बहुत गहराई से उसका माप तोल रखते थे। दर्शन करने आये श्रद्धालु भक्तों से प्रायः पूछा करते थे कि कैसे आये हो नारायण? धर्म सम्बन्धी यदि कोई बात पूछनी है तो पूछ लो। भक्तों, साधकों की धर्म सम्बन्धी शंकाओ का बहुत ही बढ़िया ढंग से समाधान करते थे। ऐसे में चाहे घण्टों ही क्यों न लग जायें। चाहे भोजन इत्यादि भी देरी से ही क्यों न करना पड़े। यह गुणवत्ता आप जी के जीवन में अन्तिम दिन तक पायी गयी कि दूसरे प्राणियों के सुखों के लिये अपने जरूरी सुख आराम का त्याग तथा दूसरे किसी भी प्राणी, चाहे परिचित हो या अपरिचित, के दुःख में दया व कृपा का भाव। प्रायः ऐसा कहा करते

थे कि परिचितों के दुःख में तो दया भाव सभी रखते हैं परन्तु भगवान तो सब के सुख में सुखी तथा सबके दुःख में दयालु व कृपालु होते हैं। ऐसी अनेक घटनाएँ आप जी के जीवन से सम्बन्धित मिलती हैं जिनमें अनायास ही आप जी ने श्रद्धालुओं, भक्तों व साधकों के दुःखों का निवारण किया और धर्म के मार्ग पर लगाया। समय को कभी व्यर्थ नहीं जाने देते थे। श्रद्धालु भक्तों के कहने पर कि वह आपजी के सिर्फ दर्शन करने आये हैं तो उत्तर स्वरूप में प्रायः कहा करते थे कि "दर्शन तो हो गये। जाओ अब। जिसके दर्शन करने हैं वह तो नारायण! आपके अन्दर ही बैठा हुआ है। इस हड्डी मांस चमड़े के क्या दर्शन करने हैं; परन्तु फिर भी श्रद्धा अनुरूप थोड़ा समय दे देते थे।" कहा करते थे कि यदि एकान्त में, अकेले में ही किसी को आनन्द का अनुभव हो जाये तो इसको दूसरों की संगत अच्छी नहीं लगती। दूसरों की संगत में समय देना केवल दूसरों की खुशी के लिये या बात करना शंका समाधान के लिये—ऐसी उनकी रहनी सहनी थी। कोई किसी से माँग नहीं, कोई किसी से चाहना नहीं। अकेले एकान्त में अपने आसन पर ही सदा विराजमान रहते थे। पूर्ण तृप्ति व पूर्ण तेज की अभिव्यक्ति आप जी की मुखाकृति पर थी। महाराज श्री के व्यक्तित्व में एक बड़ी विचित्रता देखी व अनुभव की गयी। अत्यन्त दयालु होते हुए भी आध्यात्मिक जीवन के मार्ग पर चलने की ढिलाई देखकर भक्त साधकों की आध्यात्मिक उन्नति के लिये बहुत कड़े मालूम होते थे। ऐसी स्थिति में उस भक्त साधक को महाराज श्री जी के दर्शन मात्र के लिये भी बड़ी हिम्मत उपजानी पड़ती थी। परन्तु दयालु तो थे ही। जब–जब भी भक्त साधक को उन्नति के पथ पर चढ़ता हुआ पाते थे तो ऐसे में आप जी की

करुणामयी दृष्टि ही प्रसाद रूप में धर्म पथ पर बनें रहने की बहुत बड़ी प्रेरणा का काम करती थी। नारी जाति के प्रति भी उनके मन में सम्मान था। परन्तु बड़ों, पूर्वजों की ही रीति के अनुसार मर्यादा वश कोई भी स्त्री अपने निकट के किसी पुरुष सम्बन्धी के साथ ही महाराज श्री के दर्शन या श्रवण के लिये आ सकती थी। उनका यह मर्यादित जीवन अन्तिम दिन तक परिपूर्ण था। ऐसी दिव्य विभूति का संसार में अवतरण अति दुर्लभ है। आप जी ज्योतिष शास्त्र, भूगोल शास्त्र, सौर मण्डल विज्ञान, आयुर्वेद के अतिरिक्त अनेक विद्याओं के ज्ञाता थे परन्तु कहीं पर भी अपना अस्तित्व (सत्ता) प्रकट नहीं होने देते थे। स्वयं ईश्वर स्वरूप में होते हुए भी हमेशा अपने आपको छिपाते ही रहते थे।

25. शेर भी अहिंसक बन गया : स्वामी जी एक बार नेपाल की तरफ जाने के लिए पैदल भ्रमण कर रहे थे। जब स्वामी जी घने जंगल में से गुजर रहे थे तो अचानक नज़दीक से स्वामी जी ने एक शेर को आते हुए देखा। वहाँ पर चौराहा था। स्वामी जी शेर को देखते ही एक दम चौराहे के एक साइड में सीधे खड़े हो गये। शेर भी आकर चौराहे के दूसरी साइड में खड़ा हो गया। शेर ने गर्दन हिला–हिला कर चारों तरफ देखा और स्वामी जी को भी बड़े ध्यान से देखा। देखने के कुछ ही समय बाद शेर, शहनशाह की चाल से चौराहे की एक पगडण्डी से सीधा निकल गया। शेर के निकलने के बाद स्वामी जी भी सीधा नेपाल की तरफ चल दिये। इससे पता चलता है कि स्वामी जी के तपोबल का कितना प्रभाव था कि शेर भी स्वामी जी के दर्शन करके चुप–चाप आगे निकल गया।

***

26. विद्याधनं ब्राह्मणस्य : हमेशा की तरह **सेवक ज्ञान चन्द गर्ग** गुरुवार को स्वामी जी की चाय लेकर गया और जाकर विनम्रता पूर्वक नमोनारायण करने के पश्चात् स्वामी जी की आज्ञा के अनुसार अन्दर जाकर बैठ गया। बैठने के पश्चात् उसने स्वामी जी से प्रार्थना की, स्वामी जी आपकी लिखी हुई पुस्तकों के बारे में किसी भक्त का एक पत्र आया है और उसने इस पत्र में लिखा है, कि स्वामी जी ने जो अपनी पुस्तकों में ज्ञान दिया है वह अनमोल है, जिसको पढ़कर मेरे मन के बिखरे हुए मोती इकट्ठे हो गए हैं। इतना सुनते ही स्वामी जी कहने लगे नारायण! यह जो कुछ भी इन पुस्तकों में लिखा हुआ है, यह मेरा अपना नहीं है। यह अनादि काल से जब से यह सृष्टि रची गई है तब से सृष्टि रचयिता ने सृष्टि रचते समय जो शब्द बोले थे वह ज्यों के त्यों ब्रह्मण्ड में व्याप्त थे। सृष्टि रचयिता के बोले हुए वह शब्द आजकल की भाषा में तो थे नहीं, वे तो वैदिक संस्कृत में थे। इनको हमारे बुद्धिमान्, विचारशील तथा ध्यान में सत्य को पहचानने वाले आचार्यों तथा ऋषियों ने ध्यान में ज्यों का त्यों उन शब्दों को सुना, अनुभव किया और सुनकर उनको कहीं पत्तों पर, जमीन पर या दीवारों पर लिख दिया, क्योंकि उस समय लिखने का कोई साधन नहीं था। बस! हमने तो इतना ही कार्य किया है कि उन ऋषियों द्वारा लिखे हुए शब्दों को, जो वैदिक संस्कृत में थे उनको आम बोलचाल की भाषा में लिख दिया ताकि आम लोग उसको पढ़कर तथा समझकर अपने जीवन में उतार सकें। हाँ, एक बात तो है कि सबसे पहले भगवान् ने यह विद्या ब्राह्मण को दी, क्योंकि जो हमारे पूर्वज ऋषि थे वो ब्राह्मण ही थे। ब्राह्मण का यहाँ मतलब है जो ब्रह्म को जानता है और उसके पश्चात् स्वामी जी ने संस्कृत में एक श्लोक भी बोला और उस श्लोक का अनुवाद करके भी सुनाया:

विद्या धनं ब्राह्मणस्य = विद्या धन है ब्राह्मण का।

ब्राह्मणमाजगाम = वह विद्या ब्राह्मण के पास आई।

गोपयेति माम् = और कहती है, "मेरी रक्षा कर।"

का ते गुप्तिरिति ? = तेरी रक्षा क्या है ?

"ना माम् अतपस्कायामेधाविने अशिष्यायापुत्राय दद्यात्।"

विद्या कहती है "जो अतपस्वी, अमेधावी, अशिष्य और अपुत्र हो उनको मुझे न दे, यही मेरी रक्षा है।"

व्याख्या : चार प्रकार के जन को यह विद्या तथा ज्ञान नहीं देना चाहिए। एक जो अतपस्वी है–जो तप नहीं करता, जिसको तंगी सहन करने की आदत नहीं है। दूसरा अमेधावी यानी जिसके अन्दर मेधाशक्ति नहीं है, विद्या के ज्ञान को धारण करने की या टिकाये रखने की शक्ति नहीं है। अभी कहा और अभी ही भूल जाता है या मौके पर याद नहीं आता। तीसरा अशिष्य अर्थात् जिसके अन्दर सीखने की इच्छा ही नहीं है, जो जिज्ञासु नहीं है या जिसमें सीखने की योग्यता नहीं है। और जो शिक्षा के अनुसार चलने को तैयार नहीं है। चौथा जो अपुत्र है, "पुं नाम नरकात् त्रायते तस्मात् इति पुत्र।" और अपुत्र यानि जो पिता को पुम् नाम के नरक से उद्धार नहीं करता, जो प्रेम पूर्वक सेवा में प्रयत्नशील नहीं है, जो कहे अनुसार चलता नहीं या जो आज्ञा का पालन नहीं करता है। ऐसे जनों को विद्या नहीं देनी चाहिए (और योग्य, उत्तम अधिकारी को विद्या देनी चाहिए) यही विद्या की रक्षा है।

इस श्लोक को बोलने और समझाने के बाद ही स्वामी जी की समाधि लग गई और उनकी आंखों से अश्रुपात होने लग गया। यह नज़ारा देखते ही बनता था, जैसे स्वामी जी पूर्ण रूप से उस सर्वशक्तिमान के साथ ओत–प्रोत हो रहे हों। कुछ समय पश्चात् स्वामी जी अपने–आप कहने लगे कि नारायण! छोड़ो, बस हो गया।

यह तो ऐसे ही अचानक पिछली साठ साल पुरानी अन्दर की रील ज्यों की त्यों चल पड़ी जिसका वर्णन करना भी असम्भव है। कमरे के अन्दर पूरा सन्नाटा था, ऐसा लग रहा था मानों भगवान् स्वयं इस कुटिया में ही उतर आये हैं। सेवक यह पूरी लीला देखकर स्तब्ध हो गया और चुपचाप इस विचित्र लीला को देखता रहा। सेवक के पास कोई भी शब्द बोलने के नहीं थे, बस! मनोमन कहता रहा कि स्वामी जी आप धन्य हो, जो हम जैसों को भी अपने पास बैठाकर एक अलौकिक नज़ारे का अमृतपान करवा रहे हो। थोड़े समय के बाद स्वामी जी कहने लगे, नारायण! चाय लाए हो, सेवक ने कहा, हाँ, स्वामी जी। स्वामी जी ने थोड़ी सी चाय ग्रहण की और उसके बाद सेवक दण्डवत प्रणाम करके वापिस अपने घर लोट आया। परम पूज्य स्वामी दयानन्द 'गिरि' जी महाराज में समस्त विभूतियां उपस्थित थीं, परन्तु वे उनको छिपाकर रखते थे।

***

27. प्रार्थना का महत्त्व एवं स्वरूप :

साध्वी गुरुप्रिया पुरी (सत्यम् शिवम् सुन्दरम् मन्दिर), दिल्ली 110051, हरिद्वार में साधना–सदन आश्रम में थीं और त्याग–मूर्ति ब्र०ली० श्री स्वामी गणेशानन्द् जी के सान्निध्य में सत्संग आदि का परम लाभ प्राप्त कर रही थी; तभी वहाँ ऐसा समाचार मिला कि परमपूज्य वीतराग ब्रह्ममूर्ति श्री–श्री 108 स्वामी दयानन्द 'गिरि' जी महाराज जगाधरी की एक वनस्थली में केवल आज के दिन ही रहेंगे। त्यागमूर्ति जी और पूज्य स्वामी दयानन्द जी में घनिष्ठ आध्यात्मिक सान्निध्य एवं मित्रतापूर्ण मधुर व्यवहार था। श्री महाराज जी वहाँ से जगाधरी की तरफ चल पड़े और उन्होंने कृपा करके कुछ और सन्तों के साथ साध्वी गुरुप्रिया पुरी को भी अपनी गाड़ी में बैठा लिया।

सब लोग तीन घंटे में ही जगाधरी की उस पावन वनस्थली में जा पहुंचे, जहाँ श्री स्वामी दयानन्द 'गिरि' जी महाराज बगीची की कुटिया में विराजमान थे। उस समय एक दो भक्त स्वामी जी के लिए अपने–अपने घर से भिक्षा बनवाकर लाये थे।

श्री महाराज जी और श्री त्यागमूर्ति जी अत्यन्त प्रसन्नता एवं आनन्द से आत्म–चर्चा करते रहे और इन दोनों सन्तों ने कृपादृष्टि से देखते हुए साध्वी गुरुप्रिया से कहा कि आप भी कुछ पूछना चाहते हो तो पूछ लो, तब उन्होंने विनम्रतापूर्वक निवेदन किया कि प्रभो! आप के दर्शन और सत्संग से जीव को परमानन्द प्राप्त होता है! आप साक्षात् ब्रह्मस्वरूप हो, भक्तों के हृदय–तिमिर का आप अपने अनुभव–स्वरूप वचनों द्वारा विनाश करते हो और सदा–सर्वदा के लिए प्रकाशित कर देते हो। कृपया सरल ढंग से यह बतलाइए कि हम किस प्रकार आनन्द–स्वरूप परम् सत्ता का सम्पर्क प्राप्त करें और जीवन को सफल बनायें। परमात्मा का साक्षात्कार कैसे करें, वही साधन कृपा करके समझाइये।

साधक हृदय की सरल प्रार्थना पर गुरुदेव तुल्य दयालु ऋषि द्रवित हो गए और मधुर स्वर से निम्न उपदेश देकर एकदम शान्त एवं स्वरूपस्थ हो गए। महाराज जी ने कृपा करके फरमाया कि वत्स! परम दयालु प्रभु को प्राप्त करने के लिए सरल हृदय से स्तुति एवं प्रार्थना अत्यन्त सरल एवं समर्थ साधन हैं।

स्तुति एवं प्रार्थना :

प्रार्थना का महत्त्व : वत्स! प्रार्थना सत्सङ्कल्प है, शरणागति का रूप है, परम सत्ता से सम्पर्क का उपाय है। अहं के सहारे या अन्य सहारे वाले सभी साधन या उपाय प्रार्थना की अपेक्षा कमजोर होते हैं।

सच्ची प्रार्थना व्यर्थ होती ही नहीं। किसी भी संकट अथवा समस्या को

प्रार्थना तत्काल हटा देती है। सद्बुद्धि और संयम की शक्ति परमात्मा से प्रार्थना द्वारा ही प्राप्त की जा सकती है। तात्कालिक विघ्न निवृत्ति व ईश्वर कृपा प्राप्ति का यह अनन्य उपाय है।

विधि :– निद्रा से ठीक पहले व नींद खुलने के तत्काल बाद प्रतिदिन प्रार्थना करें। पहले परमात्मा के स्वरूप का स्मरण, तत्पश्चात् परमात्मा के प्रत्येक वाक्य का गम्भीरता व मधुरतापूर्वक उच्चारण करें, फिर कुछ क्षण शान्त रहें। इसी प्रकार प्रत्येक वाक्य का प्रयोग करें। निम्नलिखित प्रार्थना में कम से कम एक बार में पन्द्रह मिनट लगायें। प्रार्थना में परमात्मा का जो स्वरूप बताया गया है, उसमें दृढ़ विश्वास हो जाना तथा जो अपेक्षा की गई है, उसकी पूर्ति होने लगना प्रार्थना की सम्यक्ता का लक्षण है।

परमात्मा के स्वरूप का ध्यान और स्तुति : हे सबको उत्पन्न करने वाले, सबको सुख देने वाले तथा सबको अपने में लय कर अद्वयमोक्ष प्रदान करने वाले आप ही अपरिवर्तनशील हैं। सब की आत्मा हैं। आनन्द स्वरूप हैं और अद्वय हैं। आप सब कुछ कर सकते हैं। सबको निरन्तर जान रहे हैं। सब आप के वश में हैं। आप सब जगह और सर्व रूप में उपस्थित हैं।

प्रार्थना : (क) हे आकाशवत् परिपूर्ण आनन्द चैतन्य! परम हितैषी! सबसे अधिक प्रिय। तदीक्षण व अहंप्रेक्षा से मन में शरणागति का भाव बना रहे। मुझे वासना से, झूठे अभिमान से, लोगों के असत् प्रभाव से, दुःखों के भय से तथा तात्कालिक अनुभाव्य सुखों के लालच से बचावें! मुझे सद्विवेक, श्रद्धा और संयम की परिस्थिति प्रदान करें। मैं आत्मानुसन्धानपूर्वक आनन्दी हो जाऊँ।

(ख) हे अनन्त! मैं सद्गुरु के निर्देशानुसार ही लक्ष्य की दृष्टि से सन्तोषपूर्वक जीवन–यापन करूँ! जिसके बिना काम चल

सके, उसे छोड़ दूँ और निरन्तर सावधान रहूँ। जिसे छोड़ना है, उधर ध्यान न दूँ और जिसे स्वीकार करना है, उधर ही मेरी दृष्टि बनी रहे। सर्वत्र और सर्व रूप में आप को न भूल पाऊँ। आप के स्वरूप के अनुरूप ही मेरा व्यवहार भी हो।

(ग) हे अमृत! समीक्षणपूर्वक सद्विद्या की पूर्णता तक मुझे कोई बाधा न हो। प्राणापान-समायोग द्वारा वैश्वानर का समादर करूँ, जिससे यह प्राप्त शरीर नीरोग, स्वस्थ एवं समर्थ रहे।

(घ) हे रस स्वरूप प्राज्ञ! समग्र सम्प्रेषण आप से ही प्राप्त करूँ। आनन्दमय कोष का भी अतिक्रमण कर जाऊँ। सत्य सुख के प्रकाशन का अमोघ प्रभाव रहे। मुझे सभी प्रकार से योगक्षेम प्राप्त रहे। यह सब तन, मन और 'मैं' आप में समर्पित हों। अतः अन्य सब और मैं कुछ नहीं हैं।

***

श्री हरीश चन्द्र मदान (इन्द्र नगर, अम्बाला शहर) ने स्वामी जी के सान्निध्य में अनुभूत अपने हृदय का भाव इस प्रकार लिखा है।

28. भक्त का भाव : मैं और मेरी धर्मपत्नी 1995 में स्वामी जी के दर्शनार्थ चिन्तपूर्णी के पास धालवाड़ी गांव में गए। हम इस स्थान को देखने पहली बार गए थे। हमें स्वामी जी की कुटिया का पता भी नहीं था। हमने स्वामी जी को मन ही मन याद किया और क्या देखते हैं कि स्वामी जी कुटिया से निकल कर हमारे सामने खड़े हैं। हम स्वामी जी की भिक्षा लेकर गए थे। स्वामी जी के कमरे के बाहर धूना जल रहा था। स्वामी जी ने हमें चाय का प्रसाद दिया। हम तीन थे। हमारे बाद नंगल से स्वामी जी के और भक्त भी आ गए। स्वामी जी की छोटी सी लुटिया में से चाय निकलती जा रही थी।

छोटी सी लुटिया में से सात–आठ भक्तों ने चाय का प्रसाद ग्रह
किया। यह स्वामी जी का चमत्कार ही था। ऐसे थे हमारे कृपाल
करूणामय स्वामीं दयानन्द 'गिरि' जी महाराज। उनको हमार
कोटि–कोटि नमस्कार।

29. पूर्ण तृप्ति : श्री अमरजीत ऋषि, अम्बाला शहर, स्वामी जी के एक निष्ठवान भक्त हैं। उन्होंने स्वामी जी के सान्निध्य क अपना अनुभव इस प्रकार लिखा है :

कहाँ से अपनी बात शुरु करूँ। मन में संकोच का गहरा समुद्र है। फिर भी व्यवसाय से मैं थल सेना में प्रधान लिपिक के पद प कार्यरत था और 1991 में सेवा निवृत्त हुआ। थल सेना के लम्बे कार्यकाल में कई धार्मिक स्थानों के दर्शन करने का अवसर मिल जिसमें मेरा अन्तर्मन साधु–सन्तों के दर्शन के लिए हमेशा लालायित रहता था।

कहते हैं सन्तों एवं महापुरुषों का दर्शन एवं सान्निध्य बड़े शुभ एवं पावन कर्म करने के बाद मिलता है। मैं एक घटना का वर्णन इस प्रकार करना चाहूँगा। बात 1992 जून माह की है जब अम्बाला शहर में हमारे चाचा जी स्वर्गीय बाबू हेमराज आनन्द के साथ महाराज जी के प्रचवन सुनने हेतु राय साहब की बगीची, अम्बाला शहर में जाने का मौका मिला। उन दिनों महाराज श्री दयानन्द जी 'गिरि' राय साहिब की बगीची में ही ठहरा करते थे। अपने प्रवचनों में वह प्रश्न तथा उनका समाधान बड़े ही सहज ढंग से समझाते थे। उनके ज्ञान से ओत–प्रोत भाव मेरे नादान मन को कुछ इस तरह से छूए कि मैं यदा–कदा बगीची में महाराज जी के दर्शन हेतु पहुँच जाया करता और यह क्रम चलता रहा।

महीना तो मुझे पक्का याद नहीं पर अन्दाजे से जून 1995 की बात रही होगी। बाबू स्वर्गीय श्री हेमराज आनन्द जी इसी महीने के आखिरी रविवार को प्रातः साढ़े आठ बजे मेरे घर आये और कहने लगे कि यदि समय हो तो आओ बगीची में चलें। कुछ देर बाद चाय पीकर हमने बगीची की तरफ प्रस्थान किया। लगभग आधे घण्टे में हम बगीची में पहुंच गये। बगीची में उस समय मुरम्मत का काम चल रहा था। महाराज जी के विशेष श्रद्धालु जो उस समय वहाँ कार्यरत थे उनसे महाराज श्री से मिलने के लिए अनुरोध किया। उन्होंने बताया कि इस समय उनके दर्शन नहीं हो सकते क्योंकि बाहर से आये कुछ श्रद्धालुओं के साथ उनकी सत्संग–चर्चा चल रही है। यह बात महाराजश्री को कैसे मालूम हुई, इसका तो पता नहीं परन्तु अन्दर से आवाज आई इनको अन्दर भेज दो।

सच पूछो तो, ऐसा स्वामी जी का आशीर्वाद सुनकर मन को बहुत खुशी हुई। अन्दर जाकर महाराज जी को नमन् किया और सत्संग चर्चा शुरु हो गई। मेरे मन में बार–बार यही जिज्ञासा हो रही थी कि कब महाराज जी को भिक्षा के लिए निवेदन किया जाए और वह पल भी आ गया। मैंने झेंपते हुए हाथ जोड़कर अपने मन की बात भिक्षा हेतु कह डाली और महाराज जी ने झट से अपनी आँखें मेरे मुख पर डालीं कि तुम तैयारी करो मैं बुधवार को आ जाऊँगा। इतनी बात सुनकर नादान मन बहुत खुश हुआ। अब तो यही बात मन में बार–बार आ रही थी कि भागो और घर जाकर यह बात सबको बता दो। अब जैसे–कैसे महाराज जी को नमन करके खुशी–खुशी घर लौटा और अपने बच्चों एवम् धर्म पत्नी स्वर्ण कान्ता ऋषि को सब बात कह सुनाई पर किसी को भी मेरी बात पर विश्वास नहीं था। बताये हुए समय के अनुसार मैं अपने मित्र–जनों के साथ महाराज

श्री को लेने के लिए साढ़े नौ बजे चल पड़ा। अभी हम एक फर्लांग ही पहुँचे थे कि महाराज श्री का आगमन हमारी तरफ ही था और पन्द्रह मिनट के बाद हम महाराज श्री के साथ अपने निवास–स्थान पहुँच गये।

विशेष बात जो मैं कहने जा रहा हूँ वह इस प्रकार से है कि मैंने सत्संग के लिये दस–बारह सज्जन ही बुलाये हुए थे ताकि उनकी सेवा ठीक ढंग से की जा सके परन्तु देखते ही देखते लगभग पचास–साठ की तादाद में संगत घर में आ गई। महाराज जी से पूछे गये प्रश्नों का समाधान तो लगभग डेढ़ घंटे से दो घंटे तक चला होगा कि बीच में कुछ देवियां उठकर जाने को तैयार हुईं, महाराज श्री ने उनको बैठने का इशारा किया परन्तु उनको कुछ भी असर न हुआ महाराज जी प्रश्नों का सहज ढंग से जवाब देते रहे कि तभी एकदम धूप का मौसम बादलों में बदला और पल भर में ही बिजली की गर्जना हुई और पल भर में ही अन्धेरे जैसा वातावरण तथा वर्षा का आगमन हो गया। महाराज श्री धीमे से मुस्कुराये और कहने लगे कि जिसने जाना है अब जा सकता है। सब लोग चुपचाप बैठ गए तत्पश्चात् मैंनें पास जाकर हाथ जोड़कर प्रार्थना की कि महाराज जी भोजन प्रसाद की आज्ञा दो तो उन्होंने आज्ञा दी कि हर एक को प्रसाद खिलाकर भेजना। सच कहता हूँ कि जो भोजन हमने सिर्फ दस–बारह सज्जनों के लिए बनवाया था वह भोजन का प्रसाद स्वामी जी महाराज की कृपा से सबने सेवन किया। उनकी कृपा से सारा प्रोग्राम बहुत अच्छी तरह से सम्पन्न हो गया।

जहाँ कृपा हो सन्तन की,

वहाँ कैसे डर लागे।।

ऐसे थे महाराज श्री की कृपा के कुछ पलों के एहसास जो अब याद

आते हैं तो मन श्रद्धा से नमन हो जाता है। भावों में सहजता हो, निःस्वार्थ एवम् निश्छल सेवा हो और प्राणी किसी ऐसे सन्त की शरण में चला जाए तो मुझे नहीं लगता कि परमपिता उससे दूर हों। अन्त में यही कहूँगा कि जब उस दयालु पिता की कृपा होती है तो विनय भरे शब्द अपने आप ही फूट पड़ते हैं:–

जो तुम पिता हो तो हम हैं बालक।
जो तुम हो स्वामी तो हम हैं सेवक।।
जो तुम देवता हो तो हम हैं पुजारी।
दया करो हे दयालु भगवन्।।
सुधारो बिगड़ी दशा हमारी।
दया करो हे दयालु भगवन्।।

***

30. भक्त की चाहत पूरी हुई :

मैं जगदीश राम, सुपुत्र स्वर्गीय श्री मल्ला राम, गांव व डाकखाना धलवाड़ी, तहसील अम्ब, जिला ऊना (हिमाचल प्रदेश) का निवासी हूँ।

गुरुदेव श्री स्वामी दयानन्द 'गिरि' जी महाराज परमहंसः महान् आत्मा को मेरा शत् शत् नमन।

मैं सन् 1989–90 में परम आदरणीय गुरुदेव श्री स्वामी दयानन्द 'गिरि' जी महाराज परमहंस के सम्पर्क में आया था। क्योंकि स्वामी जी धलवाड़ी कुटिया में आकर अपना चौमासा काटते थे, यहीं पर उनसे मेरा सम्पर्क हुआ। स्वामी जी से मेरा सम्पर्क एक घटना ही है। एक बार मैं चिन्तपूर्णी से अपने गांव धलवाड़ी जा रहा था कि रास्ते में मुझे एक सज्जन व्यक्ति मिला। वह मुझसे पूछने लगा कि भाई साहिब इधर चिन्तपूर्णी के पास कोई महात्मा रहता है तो मैंने

उत्तर में उसको कहा कि चिन्तपूर्णी के पास तो महात्माओं के बहुत से स्थान हैं, जिनमें बहुत सारे महात्मा रहते हैं, आपने किस के पास जाना है? वह कुछ बता नहीं पाया। मैंने आगे से उसे यह कह दिया कि चिन्तपूर्णी मन्दिर से नीचे तालाब है, वहाँ पर शिवालय है, वहाँ पर बहुत सारे महात्मा रहते हैं तो उस व्यक्ति ने कहा कि वहाँ पर तो वे महात्मा जिनसे मैंने मिलना है, नहीं हैं। मैंने उसे आगे कहा कि एक महात्मा तो हमारे गांव धलवाड़ी कुटिया में भी आये हुए हैं। वह व्यक्ति मेरे साथ गांव की तरफ चल पड़ा और मैं उसे नीचे खड्डे की तरफ कुटिया में महात्मा से मिलाने के लिये चल दिया। मैं भी उससे पहले महात्मा जी को कभी नहीं मिला था। जब हम नीचे कुटिया में पहुँचे तो क्या देखते हैं कि महात्मा सामने धूने के पास पद्मआसन पर बैठे हैं। वह व्यक्ति महात्मा को देखकर गद्गद् हो गया और कहने लगा कि मुझे तो इनकी ही तालाश थी, सो वे मिल गये हैं। भाई! यह तो कोई महात्मा नहीं बल्कि पूर्ण ब्रह्मज्ञानी भगवान् हैं। वह स्वामी जी के आगे सीधे लेट गया और दण्डवत् प्रणाम् करने लगा। यह देखकर मेरी आँखों से वर्षा की तरह आँसू गिरने लग गये कि हमें पता ही नहीं कि हमारे घर के नजदीक भी कोई भगवान् विचर रहे हैं। मुझे ऐसा प्रतीत होने लगा कि जैसे भगवान् ने स्वयं कृपा करके इस व्यक्ति को हमसे मिलवाया है ताकि हम भी स्वामी जी के दर्शन करके अपना जीवन सफल बना लें।

मैं अक्सर अपनी धर्मपत्नी के साथ जाकर कुटिया में स्वामी जी के पास बैठा करता था। उनसे सांसारिक जीवन के बारे में बातें किया करता था। स्वामी जी हमारे किसी भी प्रश्न का उत्तर बहुत ही विस्तार से और बड़े ही साधारण तरीके से देते थे। उनके उच्च आध्यात्मिक विचारों से हम बहुत ही प्रभावित हुए।

मैं उन दिनों भारतीय सेना में सेवारत था। स्वामी जी धलवाड़ी चौमासा काट कर चले जाया करते थे। अच्छी तरह तो याद नहीं परन्तु शायद 1992 में मैं घर छुट्टी आया हुआ था। एक दिन हमारे मन में बार–बार लालसा हो रही थी कि अब जब भी स्वामी जी धलवाड़ी गांव आएंगे, हम उन्हें अपना गुरु बनाकर उनसे दीक्षा लेंगे।

हम पर प्रभु कृपा हुई और स्वामी जी उसी दिन धलवाड़ी गांव पहुंच गए। हमारे मन की चाहत पूरी हुई। एक दो दिन के बाद मैं अपनी धर्मपत्नी के साथ कुटिया गया और अपनी इच्छा जाहिर की। स्वामी जी ने हमारी भावना को समझा और हमारी इच्छा को पूरा किया।

एक दिन हम अपने परम् आदरणीय गुरु जी को चोला भेंट करने उनकी कुटिया में गए। गुरु जी ने चोला तो स्वीकार कर लिया परन्तु साथ ही यह भी कहा कि मेरी यह अमानत अपने पास रखो, इसे अपना गुरु समझ कर मन्दिर में रखकर इसकी पूजा करो। वह चोला आज भी मेरे मन्दिर में रखा है। जब से हम स्वामी जी के बताए हुए धर्म के मार्ग पर चलने लगे हैं तब से हमारे पूरे परिवार का जीवन धन्य–धन्य हो गया है, ऐसा मेरा मानना है।

***

31. स्वामी जी के जीवन से सम्बन्धित कुछ विशेष

श्री सुरजीत लाल वासुदेव, बैंक ऑफ बड़ौदा (अम्बाला शहर) :

भारत की इस पुण्य–भूमि पर अनेक ऋषि–मुनियों, महात्माओं ने अवतार धारण किया है। उन्हीं की इस कड़ी में पूज्य स्वामी दयानन्द 'गिरि' जी महाराज भी हुए हैं। उन्हीं के सान्निध्य में जो कुछ सीखा और देखा उसी के कुछ अंश और उनके जीवन से सम्बन्धित कुछ घटनायें और उपदेश यहाँ प्रस्तुत कर रहा हूँ:

एक बार स्वामी जी पहाड़ों में निवास कर रहे थे। जहाँ वे ठह थे वहां सर्दी बहुत थीं, लोगों ने कहा कि आपके लिये लकड़ी औ भोजन का प्रबन्ध कर देते हैं। लेकिन अकस्मात् बरसात प्रारम्भ हे जाने के कारण कोई व्यक्ति वहाँ नहीं पहुँच सका और लकड़ी औ भोजन का प्रबन्ध भी नहीं कर सका। उधर भीषण सर्दी पड़ रही थी स्वामी जी के पास इस भीषण सर्दी से बचने के लिए पर्याप्त वस्त्र भ नहीं थे। ऐसे में स्वामी जी ने एक कीड़े को फर्श पर घूमते हुए देख और मन में सोचा कि जब यह कमजोर–सा कीड़ा इतनी ठंड में ज सकता है तो मैं तो इतना लंबा–चौड़ा प्राणी हूँ, मैं क्यों नहीं ज सकता? इस प्रकार स्वामी जी ने उस बर्फ जैसी जमाने वाली सर्द में भी एक सप्ताह से अधिक का समय धैर्य और ज्ञानपूर्वक, बिन भोजन के ही बिता दिया। एक सप्ताह बाद जब मौसम ठीक हुआ त लोगों ने सोचा कि महात्मा जी के पास तो हम पहुँच नहीं पाये, पत नहीं उनका क्या हुआ होगा। वे स्वामी जी के पास गये और न पहुँ पाने की मजबूरी बताई तो उन्होंने कहा कि देखो! जब एक कीड़ इतनी सर्दी में भी और बिना खाये–पीये जी सकता है तो मैं क्य नहीं?

स्वामी जी तप और त्याग की साक्षात् प्रतिमा थे। जिस कुटिय में वह रहते थे उसमें प्रायः दिन में भी सांप आ जाया करते थे तथ कई बार सांप उनकी कुटिया के दरवाजे के ऊपर अपनी केंचुल भ उतार जाते थे। लेकिन वे महान् योगी इससे विचलित हुए बिना ह उसी कुटिया में शांति से निवास करते थे। उपरोक्त सब इन पंक्तिय के लेखक ने अपनी आँखों से स्वयं देखा है।

एक बार स्वामी जी को कहीं रहने को स्थान नहीं मिला त उन्होंने सड़क के किनारे पर ही अपना आसन लगा लिया। उन दिन

पड़ोसी देश से युद्ध चल रहा था। पुलिस गश्त करती हुई आई तो उसने स्वामी जी को जासूस समझकर कुछ अनाप–शनाप बोलना शुरू कर दिया और पकड़कर जेल में बंद कर दिया। सुबह उन्हें न्यायाधीश के सामने पेश किया गया। न्यायाधीश के पूछने पर कि महात्मा जी ये पुलिस वाले आपको यहाँ कैसे लाये? स्वामी जी का उत्तर था कि मैं तो बाहर सड़क पर ठंड में पड़ा हुआ था, इनकी बड़ी कृपा है कि इन्होंने मुझे अंदर डाल दिया जिससे कि मैं ठंड से बच गया। न्यायाधीश ऐसा उत्तर सुनकर बहुत ही प्रभावित हुए और स्वामी जी को छोड़ देने का आदेश दिया। स्वामी जी के तेजस्वी व्यक्तित्व को देखकर न्यायाधीश ने स्वामी जी को अपने घर भोजन के लिये निमंत्रित किया। स्वामी जी ने कहा कि नारायण! मैं तो भिक्षु हूँ, भिक्षा मांग कर गुजारा करता हूँ; तो न्यायाधीश ने प्रार्थना की कि स्वामी जी इसे भिक्षा समझ कर ही ग्रहण कर लेना, आपजी की बड़ी कृपा होगी। न्यायाधीश का भाव देखकर स्वामी जी उसके घर भिक्षा लेने के लिए गये।

कुछ अनमोल उपदेश जिनसे मैं अत्यन्त लाभान्वित हूँ:

1. त्याग, तपस्या व धर्म के रास्ते में आने वाले दुःख को तो सहना है लेकिन एक सीमा तक ही। मरने वाला दुःख नहीं सहना अर्थात् मध्य मार्ग पर ही हमें चलना है।

2. अपने–आप को जगाने के लिये विचार द्वारा बोल–बोल कर मन को जगाना है। जैसे कि यदि मन खाली है, तो यही कहना है कि मन खाली है, कुछ समझ में नहीं आ रहा। आपे–गुरु आपे–चेला का भावार्थ यही है कि जब सांसारिक कार्यों से खाली हुए या खाली समय मिला तो अपने अन्दर झांकने लग गये अर्थात् अपने अन्दर की मन की पुस्तक को पढ़ने लग गये। यदि मन सुस्त हो रहा है तो

शब्द बोल–बोल कर इसको जगाते रहना है। बन्धनों से मुक्त होने के लिये इससे उत्तम कोई अन्य सत्संग नहीं है।

3. कोई भी वस्तु, दृश्य या रूप जिस समय देखा वह उसी समय का है। यह उस समय का देवता है जो प्रकट हो रहा है। आज से बीस, तीस या चालीस वर्ष पहले जो रूप आकर्षक लगता था, वैसा अब नहीं लगता क्योंकि उस समय का वह देवता अब वहाँ नहीं है। यदि हम अपनी पैदा होने से लेकर बचपन, जवानी, प्रौढ़ावस्था व बुढ़ापे की तस्वीरें इकट्‌ठी रखकर देखें तो यह स्पष्ट हो जायेगा कि शुरु से आखिर तक या मृत्यु–पर्यन्त जो परिवर्तन नज़र आ रहा है वह एकदम का नहीं है। यह हर क्षण, हर पल बदला है। यदि हम अपनी आयु के वर्षों को महीनों में, महीनों को दिनों में, दिनों को घंटों में, घंटों को मिनटों तथा मिनटों को सैकिण्डों से गुणा करके देखें तथा उस गणना को सामने रखें तो हमें सहज ही अनुभव हो जायेगा कि पैदा होने से लेकर वृद्धावस्था तक या मृत्युपर्यन्त यह शरीर इतने करोड़ या अरब सैकिण्डों में हर पल बदलते–बदलते इस अवस्था तक पहुँचा है। जैसे यह शरीर बदल रहा है वैसे ही मन तथा बुद्धि भी प्रत्येक क्षण बदलते रहते हैं। आज प्राणी जो निर्णय लेता है कल उसी को बदल देता है। बाहर के सब प्राणी–पदार्थ अपना अच्छा या बुरा, आकर्षक या अनाकर्षक प्रभाव एक दूसरे पर डालते रहते हैं और इन्हीं के फलस्वरूप कुछ रचने तथा बिगड़ने का क्रम अनवरत चलता रहता है जब तक कि जीव या प्राणी शून्य या नींद में विश्राम पाकर अपने–आप में स्थित नहीं हो जाता।

चाहे कोई मनुष्य कितना भी अभावग्रस्त, गरीब या दुःखी हो, गहरी नींद में वह अपने–आप के साथ शून्य में पूर्णता का अनुभव करते हुए अपने स्वरूप के पूर्ण सुख या आनन्द को पाता है। मन की

प्रत्येक अवस्था के पहले तथा बाद में शून्य ही आता है जिसमें मन जाने या अनजाने जाने की कोशिश करता है तथा अपने–आप में आत्मा का सुख पाता है। सांसारिक प्राणी–पदार्थ अपनी आकर्षण–शक्ति द्वारा मन को भावित (Charge, activate) करते हुए इसे अपने निज–स्वरूप आत्मा से दूर कर देते हैं तथा मन उन विषयों को लेने के लिये प्रयत्न करने लगता है। उनके प्राप्त होने पर उसकी दौड़ खत्म हो जाती है तथा वह अपने स्वरूप में आ जाता है। लेकिन यह केवल कुछ देर के लिये ही है जब तक कि दूसरी वासना या इच्छा पैदा नहीं हुई। यह क्रम इसी प्रकार चलता रहता है जब तक कि ज्ञान या विवेक द्वारा मनुष्य इच्छा के वास्तविक स्वरूप को जानकर उसके बंधन से आजाद नहीं हो जाता। यही जन्म–मरण का चक्कर तथा मोक्ष है। पूज्य स्वामी जी कहा करते थे कि इसके लिये चाहे आप अनेक जन्म ले लो या एक जन्म में ही ज्ञान जगाकर इच्छाओं से मुक्त हो जाओ।

***

32. A Few Reminiscences of Shri Maharaj Ji :

S.N. Bhardwaj
Principal (Retd.),
Govt. College Hoshiarpur (Pb.)

ॐ

(1) Shri Maharaj was incarnation of Supreme Spiritual Wisdom. I was privileged to sit at his holy feet from time to time. He repeatedly advised that our daily life consists of thoughts, words and actions. A seeker of Truth should always remain aware of what he thinks, feels, speaks and does with

the body-mind. None of these activities should escape hi awareness.

(2) His old schoolmate Sh. Gyan Chand Ohri of Chhat Bazar, Hoshiarpur (Pb.) told me that Madan Lal Kalia (late Swami Dayanand Giri) had once confided in him in the S.D School that he often used to hear inside him two smal voices, one was uplifting and the other down pulling. B experience of the results, he had learnt to distinguish betwee the two, and to follow the former only. This had helped hi to become more and more righteous in his conduct.

(3) Once he said to a few sadhus who were attendin his Discourse "A Jeev liberated from raga and dwesha (like & dislikes) attains peace; and that constant vigilance an sadhana were indispensable for that."

May the eternal Light and Poojya Swamiji continue t guide us !

***

33. Dr. A.C. Moudgill is retd. addl. professor of clinica psychology P.G.I. Chandigarh. He met Swamiji only once an was so much impressed with his profound spiritual wisdom an saintly simple way of living that he willingly offered his service to Swami Ji for translating his discourses published in Hin into English. He had accomplished this task creditably. All th seekers who are reading Swamiji's discourses rendered int English by Prof. Moudgil feel indebted to him.

While reading this short essay written by Prof Moudgil, th

reader will be delighted to know what a professor of modern Psychology feels about spiritual wisdom of our ancient sages made available to modern man by Swami ji in simple language.

Swamiji : The citadel of spirituality :

I have been a student of science and research for more than fifty years. My mind was chiselled by western Psychology, Philosophy, Art, Medical Science and Literature. From my early youth, I had keen interest in undertaking an objective, comparative study of both occidental and oriental religions. That is why I am least dogmatic, ritualistic or biased by temperament. But present-day stampede of religious discourses and sermons on TV and in print-media appear to me a poor commercialisation of Hindu religious thought to garner both material wealth and personal name/fame. I counted on my finger tips more than fifteen self-proclaimed gurus who claim better-than-thou mass of devotees. I donot mean any injury and insult to anyone, and have malice towards none. With this mental make-up, I decided to make first an objective and critical study of Swamiji's published books (Spiritual Discourses and Spiritual Verses in Hindi language), before personally meeting him.

When I met Swamiji, I found him very unassuming, polite, simple, natural and forth-right, but very learned, spiritually rich, with a focussed and penetrating insight and far-sight.

I was informed that the English-speaking devotees of Swamiji keenly wanted English version of Swamiji's Hindi books. I most humbly offered my services and kind Swamiji blessed me to take up this venture. He personally guided me as

how to translate from Hindi to English language the first volume of Spiritual Discourses.

I must openly confess that this book is a treasure-trove of celestial knowledge and wisdom and describes, discusses and delineates in convincing modern scientific terms the various aspects of Hindu religion, ethos, traditional rituals of worship and their scientific explanation, Atma, Paramatma and their inalienable relation, Maya and divine dyanmism, Human Nature and Universal nature, genesis of creation, spiritual evolution of human species and sentient beings, spiritual fetters and how to shatter them, human vices and weaknesses, divine qualities of Bhagwan, factors affecting human welfare and well-being, concept of Death, Trans-migration and life after death, the effect of cumulated Sanskars, cardinal objectives of human existence and many other similar subjects.

One must not forget that Swamiji delivered the Spiritual Discourses to rural people who had just a smattering of literacy and otherwise were not formally educated and were not so-called "sophisticated". But these simple, innocent, rural peasantry quickly grasped and understood the subtle spiritual topics, because Swamiji convincingly explained and elaborated with examples from rural life, these spiritual topics, at the intellectual level and mental grasp of the listeners and devotees. Swamiji himself was the living example, who actually practised in toto what he preached and prescribed for others.

The Spiritual Discourses and the Spiritual Verses written by Swamiji can be summed up as the epitome of spiritual knowledge as given in the Vedas, the Upanishadas, the Hindu Shastras, the Bhagwat Mahapuran, the Ramayana, the Gita and other classical spiritual scriptures and writings and commentaries

of Rishis and religious scholars. Swamiji had devoted many formative and creative years of his youth in getting and mastering spiritual and religious education and training at Rishikesh, Benaras and intense practice and self-discipline at Badrinath in complete isolation. His grasp of many languages, such as Sanskrit, Hindi, Pali, Panjabi, Urdu and English was par excellence. His pilgrimages (on foot) and his sojourns across Indian sub-continent and Himalayan heights, his intense study of occult sciences, his mastery of Yoga, Pranayam and Meditation, his personal encounters with realised saints, his experiences with the natural and the super-natural, with the normal and the super-normal, made him a true and spiritually-awakened Sanyasi. But Swamiji never acclaimed his great spiritualistic acumen, nor he ever adopted a disciple, nor set-up any ashram or akhara. He was a renunciate of the highest order.

For me personally, he proved a sincere friend, philosopher, guide and guru, both during his worldly existence and now in his etheral form. It was only his benevolence and blessings that helped me to complete the translation of the first volume of Spiritual Discourses and literally snatched my life from the life-threatening, serious illness. such words as Paramahansa, Veetraga, Shrotriya, Brahmnishtha, cannot depict and describe his true spiritual stature. How true the following verses of Tennyson, an English poet, represent Swamiji's person :

"Lives of great men, all remind us,
We can make our lives sublime ;
And parting, leave behind us,
Foot-prints on the sands of time."

(Tennyson)

With dedicated prostration of the lotus feet of Revered Swamiji.

***

कराला, मजरी गाँवों (दिल्ली–81) में स्वामी जी पद यात्रा करते हुए ठहरा करते थे। वहाँ चौ० ईश्वर प्रधान, चौ० अतर सिंह, श्री दुली चन्द, श्री सुरजन भगत जी, श्री रसाल भगत जी, श्री जय प्रकाश, चौ० ज्ञानी राम, श्री बलवन्त माथुर, मास्टर रामकुमार, श्री बलराम आदि अनेक ऐसे भक्त हैं जो स्वामी जी को भगवान् मानते हैं। गाँवों के सभी भक्तों ने स्वामी जी के प्रवचनों के प्रकाशन में बहुत योगदान दिया है। इन भक्तों के ऐसे अनेक अनुभव हैं जिनमें स्वामी जी के सर्वज्ञ योगी स्वरूप के दर्शन होते हैं।

यौगिक प्रत्यक्ष : एक योगी दूरस्थ घटनाओं का बाह्य इन्द्रियों से सम्पर्क के बिना ही प्रत्यक्ष कर लेता है। इसे **यौगिक प्रत्यक्ष** कहते हैं। यह एक प्रकार का **अलौकिक प्रत्यक्ष** है। आगे के संस्मरण, 36 तक, स्वामी जी के यौगिक प्रत्यक्ष के दृष्टांत हैं।

34. आज से लगभग 45 वर्ष पूर्व सन् 1960 ई० की बात है। कराला गांव का एक बुजुर्ग भगत स्वामी जी को हर रोज़ कुटिया में आकर कहता कि स्वामी जी मुझे भी एक दिन आपजी के लिए दूध लाना है। स्वामी जी उसको हर बार टाल देते और कहते, भगत जी रहने दो। इतने दूध की हमें ज़रूरत नहीं है। एक दिन उसने हठ कर ली और कहने लगा, स्वामी जी, मैं आज शाम को तो ज़रूर दूध लाऊँगा। स्वामी जी ने कहा, अरे भाई भगत जी रहने दो। वह घर जाकर अपनी घरवाली से बोला, आज मैंने स्वामी जी के लिए दूध लेकर जाना है। घरवाली ने भगत को मना कर दिया और कहा हमारे पास ज्यादा दूध नहीं है क्योंकि आज तो भैंस ने दूध दिया ही नहीं जो थोड़ा बहुत पड़ा है, वह कल शाम का पड़ा है। इससे, घर में इस बात पर लड़ाई हो गई। वह भगत पड़ोस में से दूध मांगने चला गया। उन्होंने भी बड़ी मुश्किल से दूध दिया। वह भगत दूध लेकर जब कुटिया के पास पहुँचा, तो स्वामी जी उस समय शाम को बाहर

आसन पर बैठे हुए थे और पास में गाँव के कुछ भगत भी बैठे हुए थे। स्वामी जी बाहर कुटिया से दूर भगत को दूध लाते देखकर मुस्कराये। इससे जो भगत, स्वामी जी के पास बैठे थे, वो बोले स्वामी जी, क्या बात है ? स्वामी जी बोले, देखो! वह भगत दूध ला रहा है। उसकी भैंस ने तो दूध दिया ही नहीं और घर में इस बात के लिए लड़ाई भी हुई है। यह पड़ोस से जबरदस्ती हमारे लिए दूध मांग कर ला रहा है। इतने में वह भगत भी दूध लेकर पहुँच गया और स्वामी जी से दूध लेने का आग्रह करने लगा। स्वामी जी स्वाभाविक ही बोले नारायण! हम दूध नहीं लेते, ऐसी क्या ज़रूरत थी जो आप पड़ोस से दूध मांग कर लाये। वह भगत बोला नहीं स्वामी जी, यह दूध तो हमारी भैंस का ही है। स्वामी जी पूछने लगे, सच बोल रहा है। तो वह भगत कहने लगा, नहीं स्वामी जी, सच तो यह है कि हमारी भैंस ने आज दूध दिया ही नहीं। स्वामी जी मुस्कराए और कहने लगे नारायण! हमने तो आपको पहले ही कहा था कि दूध की हमें आवश्यकता नहीं है। हम तो भिक्षु हैं, रास्ता चलते–चलते कई–कई दिन हमें फाका भी करना पड़ता है। हर जगह दूध कहाँ मिलता है? आप आराम से रहा करो, दूध वगैरह के चक्कर में मत पड़ा करो। बस आपका भाव बन गया तो समझो दूध हो गया।

35. श्री जय प्रकाश, गांव मजरी (दिल्ली–81)। दुर्घटना से भक्त का बचाव : एक बार सर्दियों में स्वामी जी कराला कुटी में विराजे हुए थे। भगवान् की कृपा से उन दिनों में बारिश भी अच्छी हो गई थी। सभी किसानों की फसल भी अच्छी हो गई थी। मैं (जय प्रकाश) भी उस समय खेती करता था। सुबह 5 बजे मैं स्वामी जी के लिए दूध लेकर गया तो स्वामी जी बोले नारायण! इतनी सुबह ठण्डी में ऐसे मत आया करो। यह ठीक नहीं है। यह तो ध्यान, भजन करने का समय है। फिर भी भगवान् ने कृपा करी और थोड़ा–सा दूध ले ही लिया। और बोले जाओ! जैसे ही मैं उठने लगा स्वामी जी बोले,

नारायण! बैठो आपको एक मिनट की एक घटना बतलाते हैं। भगवान् ने एक जीवन में काम आने वाली घटना बताई और कहने लगे, अब जाओ। मैं घर की तरफ चल दिया। जब मैं मेन रोड पर पहुँचा तो देखा कि एक खाली ट्रक, पूर्व दिल्ली की तरफ से आ रहा था, और दूसरा ट्रक ईंटों से भरा पश्चिम की तरफ से आ रहा था। पश्चिम वाले ट्रक के अगले पहिये के नट, पूर्व वाले ट्रक के पिछले पहिये के रिम से टकराये और उस भरे हुए ट्रक का स्टेयरिंग हाथ से छूट गया और ट्रक खाई में चला गया। ट्रक के अन्दर ड्राईवर व चार मजदूर बैठे हुए थे। वह सभी बाहर गिर गये और ट्रक क्षतिग्रस्त हो गया। मैं और कई अन्य लोग भागकर वहाँ गये तो देखते हैं कि किसी को कुछ भी खरोंच तक नहीं आई। तब हम घर चले गये। दूसरे-तीसरे दिन फिर मैं भगवान् के दर्शन करने के लिए कुटिया गया। तब भगवान् ने पूछा, हाँ भी नारायण! कल परसों जब तुम सुबह यहाँ से गये थे तब बहुत जोर की आवाज़ आई थी, वह कैसी आवाज थी? तो मैं बोला, कि भगवान्, दो ट्रकों की भिड़न्त हो गई थी। तो भगवान् बोले, किसी को कुछ लगा तो नहीं था और साथ ही थोड़े से मुस्कराये। मैंने कहा, नहीं भगवन्। इतना भगवान् के कहने मात्र से ही मेरी समझ में पूरी कहानी आ गई कि भगवान् अगर मेरे को उस रोज सुबह एक मिनट न बैठा कर वह घटना नहीं सुनाते तो मैं भी दोनों ट्रकों के बीच में आ जाता। यही बात मैंने स्वामी जी को कह दी। तब भगवान् बोले प्रभु सब की रक्षा करते हैं। हमेशा स्वामी जी प्रभु अपने-आप को छुपाते रहते थे। परन्तु थे दयालु, कृपालु और चुपके-चुपके पूर्ण रूप से अपने सेवकों की समय-समय पर रक्षा भी करते थे।

36. अमेरिका द्वारा गैस विसर्जन का प्रत्यक्ष : यह बात इराक, अमेरिका युद्ध के समय की है कि स्वामी जी बाहर बरामदे में कराला गांव की उज्जड़ कुटि में बैठे हुए थे। पास, गांव के कई भक्त

भी स्वामी जी के पास बैठे हुए थे। तो स्वामी जी बोले आज हवा ठीक नहीं है, श्वास भी ठीक से नहीं चल रहा। अमेरिका वालों ने हवा में एशिया महाद्वीप में कुछ ऐसी गैसें छोड़ दी हैं, जिससे सब में सुस्ती, आलस और सांस ठीक नहीं चले और इसका दिमाग पर भी असर पड़ता है। हम सब ने वह बातें बड़ी ध्यान से सुनी और घर आकर सब परिवार वालों को बताईं। इस बात के 15 दिन बाद हिन्दुस्तान के वैज्ञानिकों ने पता लगाया और हिन्दुस्तान टाइम्स अख़बार के मुख्य पृष्ठ पर गैंसों को दर्शाते हुए खबर छपी। देखिए, यह खबर वही थी जो स्वामी जी ने 15 दिन पहले हम लोगों को बताई थी। स्वामी जी कभी–कभी आम चर्चा में इस बात को बतलाया भी करते थे कि हमारे पूर्व के जो ऋषि थे वह ऐसे थे जो अपने तप के प्रभाव से पलक झपकते ही लाखों मील दूर कहीं भी घटित किसी भी प्रकार की घटना को अपने ध्यान में ज्यों का त्यों देख लेते थे। ऐसे थे हमारे ऋषि भगवान् स्वामी श्री दयानन्द 'गिरि' जी महाराज।

37. भक्त को जीवनदान : एक बार हम तीन आदमी, बलराम भगत, मेरा भाई बलवन्त, और मैं, **जय प्रकाश, मजरी** से स्वामी जी के दर्शन करने अम्बाला शहर, राय साहिब की बगीची पहुँचे। अभी हम सभी स्वामी जी के कमरे में जाकर, अन्दर बैठे ही थे कि थोड़ी देर बाद बलराम भगत को पता नहीं क्या हुआ, वहाँ से अकेला कुटिया से बाहर निकला और धड़ाम से बाहर गिर पड़ा। गिरने का कारण या तो उसको कोई चक्कर आ गया या पहले भी उसको ऐसा होता होगा, इसका कुछ भी पता नहीं लगा। हम सब बाहर भागे तो हमने देखा कि उसके प्राण बिलकुल निकल गये और चेहरा पीला पड़ गया और उसका शरीर शक्ति–विहीन हो गया। तभी अन्दर से भगवान् भी बाहर आ गये और उन्होंने बलराम को हाथ लगाया। थोड़ी देर बाद बलराम बगैर किसी दवा, पानी के ठीक होने लगा

और वह ठीक भी हो गया। तभी भगवान् ने कहा, अब यह बिलकु
ठीक है। तुम चाहो तो इसे डॉक्टर से चैक करवा लो। हम उसव
डाक्टर के पास ले गये, वहाँ उसका ई०सी०जी० व अन्य डॉक्ट
चैक–अप पूर्ण रूप से करावाया, सब ठीक निकला। ऐसे भगवान् न
भगत को जीवनदान दिया। ऐसे थे हमारे पूज्य भगवान् और कह
नारायण! सब ठीक करेंगे अपना कभी नाम नहीं लेते थे।

***

38. भगत दुलीचन्द को सान्त्वना और पुत्र का वरदान

11 मार्च 1977 की रात को स्वप्न में मुझे (भगत दुली चन्द को
स्वामी जी ने दर्शन दिये और कहने लगे कि भगत दुलीचन्द, आपके
लड़के नरेश के साथ कोई अनहोनी घटना होने वाली है, आपने
घबराना नहीं और चिन्ता भी नहीं करनी। इतने में मेरी आँख खुल
गई। 12 मार्च 1977 की सुबह मैंने सोच लिया कि आज मैंने दफ्तर
नहीं जाना। परन्तु मेरा सहयोगी मेरे घर आ गया और मुझे न चाह
पर भी जबरदस्ती दफ्तर ले गया। उस समय मैं एम० ई० एस०
दिल्ली कैंट में काम करता था। जब मैं शाम को घर लौटा तो देख
कि मेरे लड़के नरेश ने आत्महत्या कर रखी थी। बहुत घबराय
क्योंकि वह मेरा अकेला ही लड़का था। मेरी उम्र भी उस समय बड़ी
हो गई थी। इस घटना घटने के तीन महीने बाद जून, 1977 में स्वामी
जी फिर कराला गाँव की उज्जड़ कुटि में पधारे। कराला कुटि पहुँचने
पर स्वामी जी को इस घटना का गाँव के भगतों से पता चल गया था
जब मुझे स्वामी जी के कुटिया आने का पता चला तो मैं भी दर्शन
करने के लिए पहुँच गया। उस समय स्वामी जी अकेले थे और कुटी
के ऊपर टहल रहे थे। मैंने ऊपर जाकर दण्डवत प्रणाम किया, तो

मुझे स्वामी जी पूछने लगे, भगत दुलीचन्द क्या हो गया ? तो मैंने

सारी घटना स्वामी जी को सुना दी। स्वामी जी बोले, नारायण! जो चीज भाग्य में नहीं होती वह रुकती नहीं, यह विधि का विधान है। अब जो कुछ भी हो गया सो हो गया चिन्ता मत करना। आगे जो कुछ भी होगा वह ठीक ही होगा। कुछ समय स्वामी जी के पास बैठकर मैं घर वापिस आ गया। स्वामी जी की अपार कृपा से 11 महीने बाद दिनांक 26 फरवरी 1978 को मेरे घर एक होनहार लड़का पैदा हो गया जिसका नाम मैंने स्वामी प्रसाद रखा। यह बात पक्की है कि स्वामी जी जब कभी भी बोलते थे (चाहे स्वाभाविक या किसी प्रयोजन से) उनके बोलने का कुछ न कुछ मतलब होता था। ऐसे थे हमारे करुणामय दयालु, कृपालु भगवान् स्वामी दयानन्द 'गिरि' जी महाराज।

***

प्रोफेसर ज्ञानेश्वर खुराना, सेवानिवृत्त वरिष्ठ प्रोफेसर (इतिहास) कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय सन् 1971 में होशियारपुर में पूज्य स्वामी जी के संपर्क में आए और जब स्वामी जी कुरुक्षेत्र में भी प्रवास करने आने लगे तो प्रोफेसर खुराना उनके सान्निध्य का आध्यात्मिक लाभ उठाते रहे। उनका यह संस्मरण प्रमाण है कि स्वामी जी भक्त के मन की जिज्ञासा को जान जाते थे और अपने प्रवचन में उसका समाधान समझा देते थे।

39. प्रो० ज्ञानेश्वर खुराना को जिज्ञासा समाधान : गवर्नमैण्ट कॉलेज होशियारपुर में सन् 1971 में अध्यापन कार्य करते हुए संतों की कृपा से मुझे परम पूज्य स्वामी जी महाराज जी के श्री चरणों में बैठने का सौभाग्य मिला। कुरुक्षेत्र आने पर भी उनकी अपार कृपा बनी रही। कोई 5 वर्ष पूर्व, एक रविवार शाम अम्बाला दर्शन करने चला तो मन इस बात से अत्यन्त शंकित था कि महाराज जी का

शरीर तो अब सम्भवत: अधिक समय तक नहीं रहेगा और उसके

उपरांत मेरा क्या होगा? कुटिया पहुंचने पर पाया कि पूज्य महारा
जी बाहर विद्यमान थे और बहुत सारे लोग सत्संग के लिये आये हु
थे। महाराज जी ने प्रवचन प्रारंभ किया तो विषय था कि मां गौत
बुद्ध से कहती है, कि सिद्धार्थ तुम तो जा रहे हो और शरीर अब रह
वाला नहीं तो मेरा उद्धार कैसे होगा? गौतम बोले, मां, जाना कहां है
शरीर का न रहना तो मात्र एक व्यवधान का हटना है। इसके उपरां
तो और अधिक निर्बाध रूप से सम्पर्क होगा। सत्संग समाप्त हुआ
मेरी शंका का पूर्ण समाधान हो चुका था। प्रणाम कर गद्‌गद् मन घ
लौट आया।

इसके दो सप्ताह उपरांत पुनः अम्बाला शहर दर्शन कर
गया तो नतमस्तक हो धन्यवाद किया और कहा कि स्वामी जी उ
दिन का तो पूरा सत्संग मेरे ही लिए था। परम पूज्य महाराज जं
मुस्कराए और कहा, अच्छा! तुम कब आये थे ?

पूज्य महाराज जी के रूप में प्रगट दिव्य ज्योति तो सत
विद्यमान है बस! आवश्यकता है तो केवल उससे जुड़ने की।

***

40. स्वामी जी की स्तुति–ध्यान से लाभ : **मुझे मोहन सिंह**
को कुरुक्षेत्र में 1980 से पूज्य स्वामी जी के श्री चरणों में आने क
अवसर मिला। यह घटना 1997 की है। जब भी स्वामी जी कुरुक्षेत्र
में आते थे तो स्वामी जी की असीम कृपा से मुझे उनका भरपू
सान्निध्य मिलता रहा। सन् 1997 में मेरे बेटे राजेश का पंजाब स्टे
इलैक्ट्रीसिटी बोर्ड में एस०डी०ओ० की सिलैक्शन के लिए लिखि
टैस्ट था। सिलैक्शन का आधार इस टैस्ट की मैरिट था। मुझे रा
को एक बजे मेरे बेटे के मित्र ने टेलीफोन किया कि राजेश क
सिलैक्शन हो गया है। अगले दिन सुबह जब बेटा घर पर आया तो
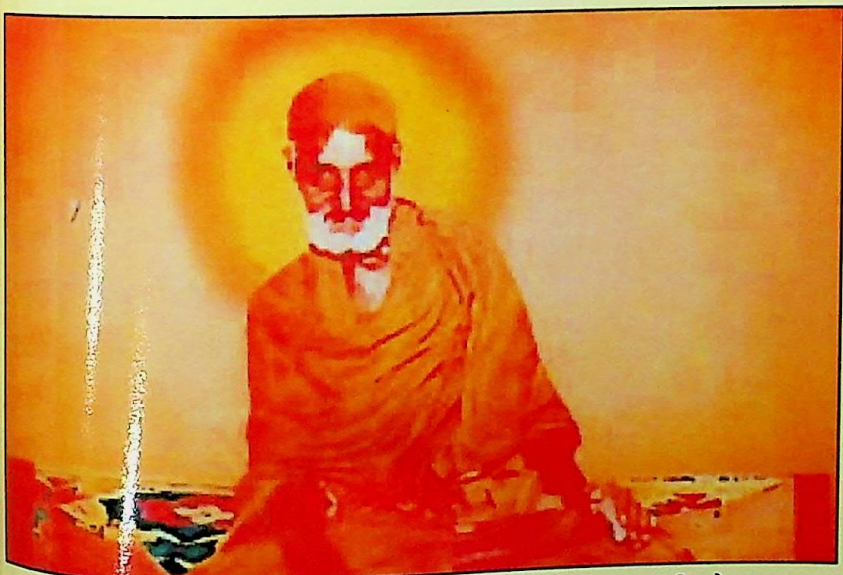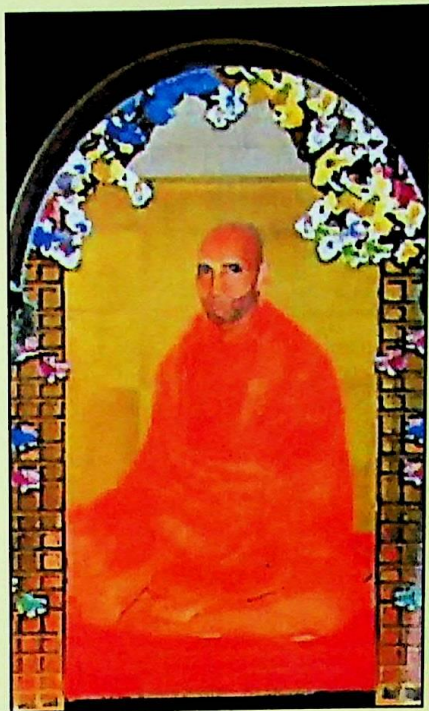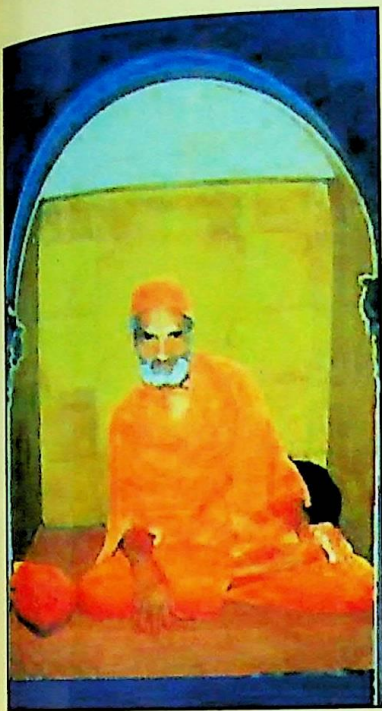
राय साहिब की बगीची, अम्बाला शहर (हरियाणा) में बनी [illegible] कुटि के अन्दर
पद्मासन पर विराजमान स्वामी जी महाराज

मैंने उसे टैस्ट के बारे में पूछा। मेरे लड़के ने कहा पापा कमाल हो गया कि टैस्ट के दौरान मैं अपने आपको बड़ा असमर्थ महसूस कर रहा था। परन्तु एकदम स्वामी जी का चित्र सामने आया और मैंने नतमस्तक होकर प्रणाम किया और पेपर को दोबारा पढ़ा तो सारी गुत्थी सुलझती चली गई और मेरी खुशी का ठिकाना न रहा। यह सब स्वामी जी की असीम कृपा का ही फल है।

***

41. एक गरीब से प्राप्त जूतों का मान : जीवन में कुछ क्षण ऐसे घटित होते हैं जिनकी स्मृतियाँ मानस–पटल पर गहरी अंकित हो जाती हैं। हमें वह दिन कभी नहीं भूलेगा जब कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय के अंग्रेजी विभाग के अध्यक्ष प्रोफेसर डा० बालकृष्ण कालिया ने हमें बुलाया और भक्ति–ज्ञान तथा वैराग्य के पूर्ण योगी, प्रातः स्मरणीय, परम वंदनीय, श्री श्री 1008 स्वामी दयानन्द 'गिरि' जी महाराज के साक्षात्कार का प्रथम सुअवसर प्रदान किया। सचमुच क्या विलक्षण व्यक्तित्व था। तप और त्याग की प्रतिमूर्ति स्वामी जी अम्बाला शहर में प्रायः पधारते थे। मात्र कंबल, चादर, लंगोटी, भिक्षापात्र, पानी का कमण्डल और टूटे–फूटे स्थान में पद्मासन लगा कर हमेशा ध्यान में बैठे रहते थे। स्वामी जी से फर्श पर बैठकर उनके वचनामृत सुनने में दिव्य आनन्द की अनुभुति होती थी। 24 घंटे में केवल एक बार भिक्षा मांग कर आहार करते थे। हमें उनके दर्शनों की प्रबल इच्छा बार–बार उनके श्री चरणों में ले जाती थी और कभी–कभी हम उनके लिए भिक्षा भी ले कर जाते थे।

हमें एक बात बिल्कुल नहीं भूलती कि हमारे सामने एक भगत स्वामी जी के लिए जूते लेकर आया। स्वामी जी ने जूते लेने से

इन्कार कर दिया। यद्यपि स्वामी जी के पहले के कपड़े के जूते बहुत

पुराने हो गये थे। स्वामी जी ने भगत को कहा, यह जूते जो मैं पहन रहा हूँ मुझे एक गरीब मजदूर ने दिये हैं। जब तक यह मरम्मत करके चलेंगे मैं इनको पहनता रहूँगा। इतना स्वामी जी का त्याग का जीवन था कि इसकी मिसाल मिलनी असम्भव है। आजकल के समय में ऐसे ब्रह्मनिष्ठ वीतराग महात्मा का सान्निध्य प्राप्त होना परम सौभाग्य की बात है।

उनके आशिष वचन और उनका सार गर्भित मार्ग दर्शन हमारे लिए सदा ही प्रेरणा स्रोत बना रहेगा। ऐसे विलक्षण ईश्वर स्वरूप सिद्ध महात्मा का पृथ्वी पर अवतरण एक महान् घटना है। उनके महा–प्रयाण का दृश्य भी आंखों में बसा है। हृदय की कोटि–कोटि भावनाओं से भरपूर हम नतमस्तक होकर अपने कोटि–कोटि प्रणाम एवं श्रद्धा सुमन अर्पित करते हैं। **ये विचार पन्नालाल–पुष्पलता प्रोपा०–ओसा, अम्बाला कैंट के हैं।**

***

42. "श्रद्धा सुमन"

श्री सी.एल. पुरी, 38–1 ट्रिब्यून कॉलोनी, अम्बाला छावनी

प्रातः स्मरणीय स्वामी जी के दर्शन करने का अवसर भी एक संयोग ही था। कुछ वर्ष पूर्व श्री जी० सी० गर्ग जी, स्व० डा० राम प्रकाश शर्मा जी को अम्बाला कैंट मिलने आए और उनसे कहा कि उन्हें किसी व्यक्ति जिसे अंग्रेज़ी भाषा का ज्ञान हो उसकी सहायता चाहिये। शर्मा जी ने मुझे बुला कर गर्ग जी से मिलाया। गर्ग जी ने बताया कि स्वामी जी द्वारा अंग्रेज़ी भाषा में लिखित एक पुस्तक छपनी है और उस पुस्तक की छपाई से पहले 'प्रूफ' देखने के लिए किसी की सहायता चाहिये। मन में स्वामी जी के दर्शनों की जिज्ञासा हुई और गर्ग जी और डा० शर्मा जी की कृपा से अनेक बार स्वामी

जी के श्री चरणों में बैठने का सुअवसर प्राप्त हुआ। जब--जब भी मैं स्वामी जी के पास दर्शनार्थ जाता तो कहते "आपने और गर्ग साहिब ने पुस्तक की छपाई में बहुत मेहनत की और अच्छा कार्य किया।" उनके यह बार–बार कहे गये मधुर और आशीष पूर्ण वचन मेरे लिए स्वामी जी की विशेष कृपा और आशीर्वाद के रूप में सदा याद रहेंगे और मैं अपने को स्वामी जी का कृपा और स्नेह पात्र समझता हुआ उनके श्री चरणों की मधुर स्मृति अपने मन में संजोय रखूंगा।

पुस्तक के 'प्रूफ' चैक करने से मेरा ऐसा अनुभव है कि स्वामी जी ने पुस्तक में छपी लघु कविताओं में लगभग सभी महान् सनातन ग्रंथों का सार देते हुये और उन कविताओं की व्याख्या करते हुए पाठकों एवं भक्तों को आध्यात्मिक रहस्यों से अवगत कराया है और सांसारिक जीवन में उन सभी का मार्ग दर्शन किया है।

***

43. प्रारब्ध कर्म सन्तों को भी भोगना : एक समय की बात है दास **(योग राज गर्ग)** स्वामी जी के दर्शनार्थ जगाधरी (हरियाणा), सेवा राम जी की बगीची में गया। स्वामी जी ध्यान मुद्रा में विराजमान थे। दास ने प्रणाम किया तथा आसन लेकर बैठ गया। स्वामी जी से बात करते पता चला कि उन्हें एक या दो दिन पहले पागल कुत्ते ने रात को इतना काट खाया कि टांग का पूरा माँस ही नोच कर ले गया। उसी कुत्ते ने फिर किसी पशु को भी काटा तो वह मर गया। स्वामी जी ने सरसों का तेल और लाल मिर्च लगा कर गेरुए वस्त्र का कपड़ा ही ऊपर बाँध रखा था और शान्त चित्त बैठे हुए बातें कर रहे थे।

दास के मन में विचार आया कि स्वामी जी तो साक्षात् भगवान् हैं फिर इनको इतना बड़ा कष्ट क्यों आया। मेरे से रहा नहीं गया मैंने

भरे हुए मन से स्वामी जी से पूछ ही लिया, कि महाराज जी आपजी को कुत्ते ने इतना भयंकर क्यों काटा ?

स्वामी जी ने कहा–नारायण ! जब तक शरीर है तब तक प्रारब्ध कर्म तो भोगना ही पड़ता है। ऐसा विधि का विधान है और इसमें कोई कुछ भी नहीं कर सकता।

स्वामी जी की वार्ता सुनकर मन को चेतना हुई। स्वामी जी का यह वचन हमेशा याद रहता है कि हमें सम्भल–सम्भल कर कर्म करना चाहिये ताकि अगले जन्म में हमें कर्मों का फल भुगतना न पड़े।

44. भण्डारे में गरीब माई का मान : एक समय की घटना है कि स्वामी जी के दरबार में भक्त लोग शिवरात्रि का भण्डारा कर रहे थे। स्वामी जी आसन पर विराजमान, आये हुए भक्तों को आशीर्वाद स्वरूप सुवचन सुना रहे थे कि स्वामी जी ने देखा कि एक बुढ़िया माई और भण्डारे का आयोजन करने वालों से कुछ कह रही है और वह उसे हाथ से पकड़ कर बाहर निकाल रहे हैं। स्वामी जी ने एक व्यक्ति को कहा कि जो माई जा रही है उसे बुलाकर लाओ। वह माई जब स्वामी जी के पास आई तो वह हाथ–जोड़कर प्रार्थना करने लगी कि स्वामी जी यह मेरे दो रुपए भण्डारे में डलवा दो क्योंकि भण्डारा आयोजन करने वाले नहीं ले रहे हैं। स्वामी जी इतने दयालु व कृपालु थे कि उन्होंने एक भक्त को बुला कर कहा कि इस माई के दो रुपए लेकर उसका नमक लाकर भण्डारे में डाल दो ताकि इसका दिया हुआ सबको प्रसादरूप में मिल जाये। वह माई बहुत ही प्रसन्न हुई।

45. साध्वी के भाव : युग–युगान्तरों से हमारी मातृभूमि भारतवर्ष में समय–समय पर सुदुर्लभ महान् संतों एवं महापुरुषों का

पदार्पण होता रहा है जो अपने तपस्वी जीवन एवं आचरण–अनुभूति पूर्ण ज्ञान से मानव जाति का उद्धार करते आये हैं। ऐसे ही परमपूज्य प्रातः स्मरणीय परमहंस स्वामी श्री दयानन्द 'गिरि' जी महाराज भी थे। जो उनकी वाणी थी वही उनका जीवन भी था। तप, त्याग, ज्ञान, वैराग्य एवं सौम्यता के पूर्ण अवतार थे। कैसा अद्‌भुत था उनका सादगी वाला जीवन, न संग्रह की इच्छा, न कोई रहने के लिये आश्रम और न कोई संगी व साथी, साथ केवल प्रबल पूर्ण आत्मविश्वास। स्वामी जी आम चर्चा किया करते थे कि 'मन मिले तो मेला, नहीं तो भला एकेला'। 'एकान्तवासा, झगड़ा न झाँसा।'

श्री अनन्त प्रेम मन्दिर के सेवकों एवं देवियों पर श्री स्वामी जी की अपार कृपा थी। सभी देवियां स्वामी जी को धर्ममार्ग प्रेरक पथ प्रदर्शक गुरु के तुल्य मानती हैं। श्री स्वामी जी प्रायः यही शिक्षा देते थे कि "दूसरे के गुणों को देखकर उसकी वाह! वाह! करें परन्तु अवगुणों की उपेक्षा ही करें।" जब भी हम दर्शन हेतु किसी सेवक के साथ जाती थीं तो वे यही उपदेश देते थे कि "सारे खोटे कर्म छोड़ना, अच्छे कर्म करना, फिर मन के भावों को भी शुद्ध रखना, दूसरों के सुख में मन मैला नहीं होने देना, दूसरों के दुःख में दयाभाव रखना। अपना वर्ताव सही रखना, और दूसरों का वर्ताव कैसा भी हो सहन कर लेना। अपनी 'मैं' को कभी भी अपने में नहीं आने देना क्योंकि संसार में 'मैं' किसी की भी सदा नहीं चलती। यदि इसी 'मैं' को कोई व्यक्ति त्याग सकता है तो ऐसा व्यक्ति ब्रह्मभाव को प्राप्त होता है।"

उक्त शब्दों के साथ मैं पुनः पूज्य परमहंस स्वामी जी महाराज के श्री चरणों में कोटि–कोटि नमन करती हूँ।

"ईश्वर से गुरु में अधिक धारे भक्ति सुजान,
बिन गुरु भक्ति प्रवीण हूँ, लहे न आत्म ज्ञान।"

शील अध्यक्षा प्रेम मन्दिर,
अम्बाला शहर

46. Leave Attachments : अम्बाला शहर, **डॉ० ओमप्रकाश (होम्यो) :** सन् 1995 में दीपावली के अगले दिन मेरी धर्मपत्नी का स्वर्गवास हो गया था जिससे मैं बहुत ही दु:खी महसूस करता था कुछ दिन बाद मुझे श्री सोमनाथ खुराना ने कहा कि आजकल स्वामी जी अम्बाला शहर आये हुए हैं, आप जाकर दर्शन कर लीजिए दीपावली के लगभग 15 दिन बाद मैं दोपहर को दुकान बन्द करके सीधा स्वामी जी की कुटिया चला गया और बाहर यह सोचकर बैठ गया कि यदि स्वामी जी मुझे स्वयं बुलाएंगे तो ही अन्दर जाऊँगा इतने में स्वामी जी कुटिया से बाहर आये और कहने लगे कि डॉक्टर जी, मैं आपको कितनी देर से बुला रहा हूँ आप अन्दर क्यों नहीं आते। मैं बड़ा हैरान हुआ कि स्वामी जी को यह कैसे पता चला कि मैं डॉक्टर हूँ क्योंकि यह मेरी पहली भेंट थी। मैं अन्दर गया तो स्वामी जी बोले नारायण! अब बताओ क्या बात है? तो मैंने उनसे यह कहा कि स्वामी जी, आप जी ने तो मेरे दिल की पूरी बात पहले ही जान ली है, परन्तु महात्माओं के साथ बहस नहीं करनी चाहिए। फिर मैंने अपने दिल की बात स्वामी जी को कह ही दी। स्वामी जी ने उत्तर में, मेरे को एक ही शब्द में कहा कि "Leave Attachments।" मैं पूज्य स्वामी जी के इन विचारों को सोचता-सोचता अपने घर आ गया और मैंने बहुत ही शान्ति महसूस की। बस! उस दिन के बाद मेरी अनन्त श्रद्धा स्वामी जी के प्रति बन गई और उनके दर्शनार्थ कई अन्य स्थानों, चिन्तपूर्णी (हि०प्र०) व कराला गांव दिल्ली-81 भी गया।

❊❊❊

47. यौगिक प्रत्यक्ष : जब मैं **शशि कोहली**, अम्बाला कैंट एक बार अपने भाई को साथ लेकर अम्बाला शहर की कुटिया स्वामी

जी के दर्शनों के लिए गई तो उस समय स्वामी जी भिक्षा पर गये हुए थे। हमने दो घंटे तक उनका कुटिया के बाहर ही इन्तजार किया। जब स्वामी जी लौटकर आये तो उनके कुटिया में प्रवेश करने के दो मिनट बाद ही हम भी अन्दर चले गये। अन्दर जाते ही हमने स्वामी जी को नमस्कार किया, तो स्वामी जी कहने लगे कि आपने कुछ पूछना है, साथ ही मेरे से स्वामी जी पूछने लगे कि भगत जी कहां हैं, तो मैंने कहा कि स्वामी जी, वह तो घर पर ही हैं और बीमार हैं। स्वामी जी ने तुरन्त जवाब दिया कि मकान बन रहा है, उसकी सोच में होंगे। इस बात को सुनकर मैं हैरान रह गई कि स्वामी जी को कैसे पता चला कि हमारा मकान बन रहा है। हमने तो उनसे इस बारे में कोई बात ही नहीं की थी। उनके आशीर्वाद से आज हमारा मकान उम्मीद से भी ज्यादा अच्छा बना है, इसलिए हमारा तो मानना है कि जो सच्चे दिल से उनका नाम लेते हैं उन पर उनका आशीर्वाद सदा बना रहता है।

इसी प्रकार एक रोज़ जब हम स्वामी जी के दर्शानार्थ अम्बाला शहर की कुटिया में गये और अन्दर जाकर बैठने लगे तो उसी समय उनकी दृष्टि हमारे ऊपर पड़ी तो उन्होंने कहा नारायण! आज तो मौसम बहुत खराब है आप घर वापिस लौट जाओ, हमारा आशीर्वाद तुम्हारे साथ है। हमने कहा कि स्वामी जी मौसम तो बाहर बिल्कुल ठीक है परन्तु स्वामी जी ने अपना कथन फिर दोहराया। हम वापिसी पर सीधे घर जाने की बजाए रास्ते में कुछ समय के लिए कहीं रुक गये। हमें अकस्मात् जब स्वामी जी के वचन 'आप घर वापिस जाओ' याद आये तब हम तुरंत घर की ओर चल पड़े।

घर पहुँचकर हमने देखा कि घर में चोरी हो गई थी और स्वामी जी के वचन अनुसार तुरन्त घर न लौटना हमारी भूल थी।

संभवतया हमारे तुरन्त लौटने से चोरी न होती।

***

अनेक लोगों की तरह धर्म कर्म करते हुए मानसिक शान्ति न मिलने पर धर्म के प्रति **प्रोफेसर टी.आर. कालिया**, गुड़गाँव (हरियाणा) के मन में धर्म के प्रति अनास्था हो गई। स्वामी जी का प्रवचन सुनकर धर्म का सच्चा स्वरूप उन्होंने समझा और उन्हें धर्म का मार्ग मिला। **पढ़िये यह उनका लेख :**

48. प्रोफेसर टी. आर. कालिया को मिला समाधान :

वर्तमान युग के इस दौर में जबकि टी.वी. तथा इलैक्ट्रॉनिक माध्यम से धर्म प्रचार, कर्मकांड और ज्योतिष विद्या एक बहुत बड़े व्यवसाय का रूप धारण कर चुके हैं और अनगिनत लोग कितने ही धर्म आश्रम और संस्थायें चला रहे हैं, ऐसे वातावरण में किसी श्रेष्ठ गुरु की खोज असंभव नहीं तो अति कठिन जरूर है। धन्य हैं वह लोग जो किसी ईश्वर रूपी गुरु के दर्शन कर सकें तथा उनसे कुछ ज्ञान के शब्द पा सकें।

एक सनातन–धर्मी परिवार का सदस्य होते हुए शुरू से ही धर्मस्थानों में जाने, पुस्तकें पढ़ने और साधु संतों के प्रवचन सुनने के बावजूद भी धार्मिक विषयों के ज्ञान में बढ़ोतरी न हो सकी और जिज्ञासा को कोई राह न मिल पाई। विज्ञान का विद्यार्थी और अध्यापक होने के नाते ऐसा लगता था कि यह सब बातें हमारे पूर्वजों ने समाज में अराजकता रोकने और शांति बनाये रखने के लिए बना रखी हैं और वास्तविकता से परे हैं। मनुष्य को सदाचारी जीवन व्यतीत करना चाहिए और दयादृष्टि रखते हुए अपना कर्त्तव्य पूरी निष्ठा से ध्यानपूर्वक करना ही उसका परम धर्म है।
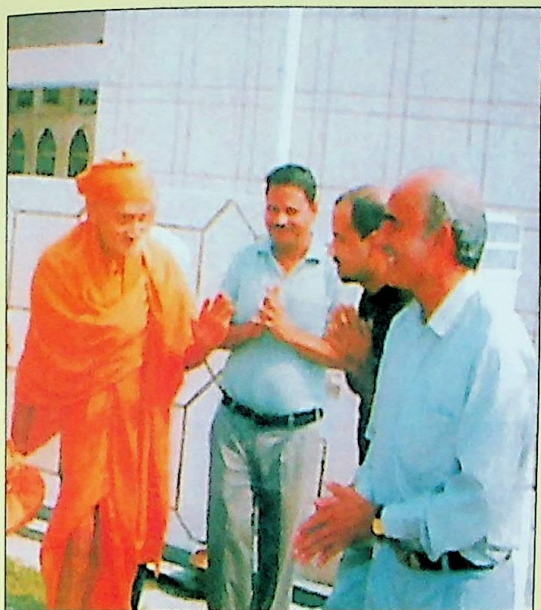
2004, अम्बाला शहर में किसी भक्त के घर दिक्षा लेने के पश्चात बाहर आते हुए स्वामी जी महाराज

04, अम्बाला शहर में किसी भक्त के घर, भिक्षा लेने के पश्चात बाहर आते हुए स्वामी जी महाराज

इसी विचारधारा के अधीन जीवन के चार दशक बीत गये और पांचवे में प्रवेश किया। चिरकाल से पारिवारिक संबंधों में लुप्त होने के कारण मन परेशान रहने लगा। संसार अपनी गति से सुनामी लहरों की तरह तेजी से आगे बढ़ता चला जा रहा था। मन में भांति–भांति के विचार उठने लगे। ऐसा प्रतीत होने लगा कि अपने ही पराये हो रहे हैं। धार्मिक ग्रंथ और प्रवचन अक्षर–समूह लगने लगे जो कुछ समय के लिए तो अपील करते थे लेकिन मन की दिशा बदलने में असफल थे। पूजा–पाठ से मन पहले ही बेगाना था। सन् 1979–80 की बात है परम पूजनीय स्वामी जी उन दिनों चतुर्मास के लिये अम्बाला शहर पधारे हुए थे। एक साथी ने उनके बारे में कुछ प्रशंसा के शब्द कहे लेकिन अपना मन तो पहले ही साधु–सन्यासियों से ऊब चुका था। इसीलिये उनकी बातों का तिरस्कार किया। परंतु जब उन्होंने बताया कि पूज्य स्वामी जी की विशेषता यह है कि वे हर समस्या का समाधान पारम्परिक विचारों से हट कर करते हैं और उनसे कोई भी व्यक्ति निराश होकर नहीं लौटता, तो मैंने भी यह अवसर खोना उचित न समझा और आदरणीय स्वामी जी के विचार सुनने का मन बना लिया।

बस फिर क्या था कि एक दिन स्वामी जी के सायं के सत्संग सभा में भाग लेने कुटिया पहुँचा और जनसमूह में सम्मिलित हो गया। ठीक चार बजे स्वामी जी अपनी कुटिया से बाहर निकले। दुबला, पतला, लम्बा शरीर, भगवे रंग की चादर में लिपटा हुआ, ऐसा प्रतीत हुआ जैसे स्वयं भगवान् बुद्ध आ रहे हों। स्वामी जी के दर्शन पाकर सब उपस्थित सज्जन गद्‌गद् हो उठे। स्वामी जी अपने आसन पर विराजमान हुए और कुछ क्षण के लिए अंतर्मुखी हुए। फिर पूछा कि

"कल का शीर्षक क्या था?" – मन परेशान क्यों होता है? मन की परेशानी के पहले बताये हुए कारणों को दोहराते हुए अब अगले विचार व्यक्त करने आरम्भ किये। उदाहरण वही जो हर व्यक्ति के जीवन की दिनचर्या है। यह व्याख्या करते हुए लगभग 40 मिनट बीत गये और फिर सारे व्याख्यान का सारांश। जब सत्संग समाप्त हुआ तो हर नर–नारी के मुख से 'धन्य हो', 'धन्य हो' के शब्द उमड़ पड़े। स्वामीजी की बातें क्योंकि हर साधारण व्यक्ति के जीवन से मेल खाती थीं इसलिये सब के मन में उतरती गयीं। यद्यपि इन में कोई विशेष दर्शन नहीं था परन्तु यह आत्म–चिन्तन का पथ प्रदर्शक था और मन की शुद्धि के लिए अनिवार्य। स्वामी जी का भाषण इतना रोचक था कि अगले दिन मैंने अपनी अर्द्धांगिनी को भी साथ ले जाने का निश्चय बना लिया। उस दिन की घटना बड़ी आश्चर्यजनक लगी। ऐसा लगा जैसे स्वामी जी केवल हमारे ही प्रश्नों का उत्तर दे रहे हैं लेकिन हमने तो उनको अपने मन की कोई बात बताई ही नहीं थी। जो भाव हमारे मन में कई वर्षों से उपद्रव मचा रहे थे धीरे–धीरे शांत होते दिखाई दिए। इस अद्‌भुत घटना से हम एक–दूसरे का मुंह ताकते रह गये। मन का मैल धुला जा रहा था मानों मन गंगा स्नान कर रहा हो।

सुन रखा था कि बिन गुरु गति नहीं। क्या यही वह गुरु हैं जिनकी तुझे तलाश है? मन ने पूछा! क्या यही वह व्यक्ति हैं तो तुझे सच्ची राह दिखा सकते हैं? खैर, मैंने आगे बढ़ने का निश्चय किया और सभा की समाप्ति पर स्वामीजी की कुटिया में आने पर दो प्रश्न के उत्तर चाहे, "Is God a necessity or reality"और दूसरे "Where is Hell and Heaven" पूज्य स्वामी जी एक दो क्षण के लिए रुके

और कहने लगे "Religion is nothing execept the science of mind।" यद्यपि उनका यह उत्तर मेरे प्रश्नों का सीधा उत्तर नहीं था लेकिन मुझे ऐसा प्रतीत हुआ जैसे मुझे पूर्ण उत्तर मिल गया है और मेरी शंका मिट गई है। समय के अभाव के कारण बातचीत आगे न चल सकी, परंतु स्वामी जी ने फिर कभी विस्तारपूर्ण चर्चा करने का वचन दिया। बस! यहीं से हम स्वामी जी के अनुयायी बन गये। फिर क्या था, स्वामीजी के प्रवचन सुनने की चाह बढ़ती ही गयी। स्वामी जी उन दिनों सायं सत्संग में आध्यात्मिक शब्दावली की व्याख्या किया करते थे और व्याख्या भी जीवन की साधारण घटनाओं को लेकर। कई-कई शब्द तो हर रोज़ चलते थे। इस तरह धार्मिक ग्रंथों के जो शब्द समझ से बाहर प्रतीत होते थे धीरे-धीरे सार्थक लगने लगे।

एक दिन किसी मित्र ने पूछा कि पूज्य स्वामी जी ने आपके दोनों प्रश्नों का कोई सीधा उत्तर तो नहीं दिया फिर भी उनके उत्तर से आपकी तसल्ली कैसे हो गयी और आप उनकी ओर कैसे खिंचे चले आये। इसका उत्तर तो मेरे पास भी नहीं था। हो सकता है, यह उनका व्यक्तिगत प्रभाव हो! मगर अब मैं समझता हूँ कि ब्रह्मनिष्ठ स्वामी जी ने यह जान लिया होगा कि जो व्यक्ति ऐसे मौलिक प्रश्न पूछ रहा है उसको धर्मग्रन्थों के आधार पर कोई उत्तर देना व्यर्थ है। यह चीजें तो दिखाई नहीं जा सकतीं, केवल अनुभव ही की जा सकती हैं और उसके लिए अनुभवी आँख चाहिये। बिजली को दर्शाना तो असंभव है लेकिन बिजली की तरंगों से प्रकाशित होने वाला बल्ब तो देखा जा सकता है। आत्मा-परमात्मा के चक्र को छोड़ मनुष्य अपने मन में उठती लहरों को तो देख सकता है। बस यहीं से आत्मवाद शुरू होता है व आगे बढ़ने की राह मिलती है।

कहते हैं धर्म, आस्था व विश्वास से शुरू होता है और जब आस्था व विश्वास स्थाई हो जाते हैं तो वहाँ तर्क समाप्त हो जाता है लेकिन पूज्य स्वामी जी की यह विशेषता थी कि वह ज्ञान के माध्यम से ही श्रोतागण को श्रद्धा और विश्वास के मार्ग पर लाते थे अन्यथा धर्म, भावकुता या अंधविश्वास का रूप धारण कर लेता है। आत्मज्ञान से ही मनुष्य मानवीय सभ्यता के शिखर पर पहुँच सकता है। ब्रह्मनिष्ठ स्वामीजी ज्ञान का अथाह भंडार थे और उनके ज्ञान की कोई सीमा नहीं थी। किसी विशेष व्यक्ति, स्थान, समाज, संगठन इत्यादि से उनका कोई लगाव नहीं था। पूज्य स्वामी जी के व्यक्तित्व और स्वरूप में, दिव्य ज्योति जनकल्याण के लिए जीवन भर एक जगह से दूसरी जगह भ्रमण करती रही और अनेक नर–नारियों के मन और बुद्धि में ज्ञान का प्रकाश करके ब्रह्मलीन हो गई। पूज्य स्वामी जी द्वारा प्रज्ज्वलित ज्ञान ज्योति सदैव जलती रहेगी और भक्तों का मार्ग दर्शन करती रहेगी।

***

49. एक स्थितप्रज्ञ और एक बुद्ध के दर्शन:

डा. बाँके लाल शर्मा, कुरुक्षेत्र (हरियाणा) दर्शन शास्त्र के प्राध्यापक रहे हैं। उनके मन में यह प्रश्न बार–बार उठता रहा कि श्रीमद् भगवद्गीता में स्थितप्रज्ञ के जो लक्षण बताए हैं उन लक्षणों वाला कोई महात्मा वास्तव में हो भी सकता है। उन्हें स्वामी जी में एक **स्थित प्रज्ञ और एक भगवान् बुद्ध** दिखाई दिये। उन्हें समाधान मिल गया और अध्यात्ममार्ग पर चलने की प्रेरणा भी। **पढ़िये उनका यह संक्षिप्त लेख:**

भारतीय चिन्तन और साधना की परम्परा में सब विद्याओं में अध्यात्मविद्या को सर्वोच्च पद प्राप्त है। प्राचीन ऋषियों की इस विद्या

के अनुसार पूर्ण आध्यात्मिक जीवन जीकर दिखाने वाले वीतराग महात्मा हर काल में होते रहे हैं, लेकिन होते ये विरले ही हैं। इन महात्माओं में भी अध्यात्म विद्या के ऋषितुल्य ज्ञाता तो और भी दुर्लभ होते हैं। इन महात्माओं का जीवन पूर्णतः निरभिमानी, आडम्बरों से विमुक्त, अतिसरल पारदर्शी पवित्र जीवन होता है। ये महात्मा अपने जीवन से तथा अपने वचनों से अध्यात्ममार्गी महात्माओं का पथ प्रदर्शन और उत्साहवर्धन करते रहते हैं तथा जनसाधारण को सच्चे धार्मिक जीवन की शिक्षा देते रहते हैं। अध्यात्मविद्या के आप्तपुरुष इन महात्माओं के आध्यात्मिक जीवन पर प्रवचन प्रामाणिक वचन होते हैं। ऐसे महात्माओं के चरणों में बैठकर एक जिज्ञासु अपनी ज्ञानपिपासा तृप्त कर कृतकृत्य हो सकता है। ब्रह्मलीन स्वामी दयानन्द 'गिरि' जी महाराज एक ऐसे ही विरले आत्मज्ञानी परमयोगी श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ संन्यासी महात्मा थे।

परम श्रद्धेय स्वामी जी के दर्शन करने तथा उनके प्रवचन सुनने का सौभाग्य 1980 में कुरुक्षेत्र में प्राप्त हुआ। उनके जीवन और उनके ज्ञान दोनों का प्रभाव ऐसा पड़ा कि जीवन के प्रति दृष्टि ही बदल गई। श्रीमद्‌भगवद्‌गीता पढ़ते समय यह प्रश्न मन में उठता था कि भगवान् ने स्थितप्रज्ञ के जो लक्षण दूसरे अध्याय में तथा सच्चे भक्त के जो लक्षण बारहवें अध्याय में तथा सच्चे संन्यासी और सच्चे योगी के जो लक्षण यथा–स्थान बताए हैं, उनमें से कुछ लक्षणों वाला कोई मनुष्य यथार्थ में हो भी सकता है। स्वामी जी के जीवन से इस प्रश्न का सकारात्मक उत्तर मिल गया है। स्थितप्रज्ञ के, ज्ञानी भक्त के, संन्यासी तथा योगी के जो–जो भी लक्षण गीता में गिनाए हैं, वे सब लक्षण पूर्णतः स्वामी जी में मूर्तमान थे। जिन्होंने स्वामी जी के

दर्शन किये और जिन्होंने चौकी पर बद्धपद्मासनस्थ स्वामी जी को

भगवान् बुद्ध की तरह प्रवचन करते हुए सुना है, वे सब अनपढ़, पढ़े-लिखे, विद्वान्, संन्यासी, गृहस्थी अपने जीवन में एक नया आलोक और सच्चे पवित्र जीवन जीने के प्रति श्रद्धा अनुभव करते रहे हैं। मैं अकिंचन उन सौभाग्यशालियों में से एक अपने को भी पाता हूँ।

अब स्वामी जी शरीर रूप में हमारे मध्य नहीं हैं। लेकिन उनकी वाणी पुस्तकाकार रूप में हमारे पास है। **"शब्द ही गुरु है"** ऐसा स्वामी जी प्रायः कहा करते थे। इसी भाव से स्वामी जी के प्रकाशित ग्रन्थों का स्वाध्याय करते हुए हम अपने जीवन को उन्नत करने में सहजरूप से आने वाले प्रमाद से बच सकेंगे।

***

प्रोफेसर मोहन लाल, अम्बाला शहर जीवन से निराश होकर जब स्वामी जी की शरण में आए तो उन्हें स्वामी जी ने आश्वस्त किया कि हिम्मत रखो और कहा कि मैं तुम्हें मार्ग दिखाऊँगा।

"क्यों रो रहे हो, किताबें पढ़ो, चलते रहो।"

पढ़िये उनके विचार :

50. एक अद्‌भुत उपकार : मैं विज्ञान का अध्यापक हूँ। मेरी माता नित्य प्रति मन्दिर जाया करती थी। वह बेशक अनपढ़ थी किन्तु भगवान् की परम्परागत भक्ति श्रद्धापूर्वक करती थी। वह बहुत ज्यादा व्रत रखते हुए तरह-तरह से तप-तपस्या में विलीन रहती थी। मेरे पिता श्री धर्म-कार्यों से दूर रहने वाले थे। उनका जीवन मेरी माता जी के जीवन से उलट था। अचानक मुझे मन के प्रतिकूल अवस्थाओं ने घेर लिया। सांसारिक घटनाएँ बहुत ही दुःख दे रही थीं। मन ज्योतिषियों से, मन्दिर-मस्जिद गुरुद्वारों में जा-जा कर थक चुका था। कोई रास्ता दिखाई नहीं दे रहा था। तरह-तरह से मन को बहलाने की कोशिश की लेकिन कहीं भी मन न लगा। सारे सांसारिक

मित्र, बन्धु व रिश्तेदार मेरी सहायता नहीं कर पा रहे थे, क्योंकि मेरे मन की स्थिति ही कुछ ऐसी थी। मनोवैज्ञानिक भी फेल हो गये थे। अचानक मेरे एक अध्यापक ने मुझे स्वामी दयानन्द जी से मिलने की सलाह दी। मैं अपने एक सहयोगी के साथ उन्हें अक्तूबर 1983 में पहली बार मिलने गया। मैं बुरी तरह से रो रहा था और मैंने अपना सिर उनकी गोद में रख दिया। पिता के समान उन्होंने मेरा सिर अपने हाथों में पकड़ लिया और कहा, "आ गये हो दुनिया के दुःखों से डर कर।" मुझे ऐसा लगा जैसे वह मुझे अच्छी तरह जानते हैं और उन्हें मेरे बारे में सब कुछ पता है। मैंने उनसे कहा, **"स्वामी जी, मैं मृत्यु चाहता हूँ, क्या आप मुझे दे सकते हैं?" स्वामी जी ने कहा, "तुम मानसिक मृत्यु चाहते हो, शारीरिक मृत्यु तो सबकी अपने समय पर आ ही जायेगी। मैं तुम्हें मानसिक मृत्यु दे सकता हूँ। देखो! मैं भिखमंगा हूँ, न मेरी माँ, न पिता मेरे पास हैं और न ही कोई संगी व साथी। जंगलों में अकेला रहता हूँ ! क्या मेरे पास कोई सुख नहीं है। तुम क्यों रो रहे हो? जब मैं इस तरह सबके बिना रह सकता हूँ, तुम क्यों नहीं। यत्न करो, मैं तुम्हें रास्ता दिखाऊँगा।"** मुझे इससे अद्‌भुत राहत मिली और मैं उन्हें इस तरह अकेले बैठे हुए देखकर मन ही मन बहुत ही संतोष का अनुभव कर रहा था। उन्होंने मेरे सभी प्रश्नों का उत्तर वैज्ञानिक ढंग से दिया। घण्टों मुझे अपने पास बिठा कर मेरी शंकाओं का निवारण किया। मैं उन्हें अपने धर्म के माता–पिता मानता हूँ। जो उनसे मुझे प्यार मिला मैं उसको शब्दों में नहीं लिख सकता। दिवाली–दशहरे के दिन भी मैं उनके चरणों में बैठा रहता था। मुझे जिस प्रकार के महात्मा की तलाश थी, मुझे मिल गये।

शरीर छोड़ने से दो चार दिन पहले मुझे किसी कारणवश

एस०ए० जैन कॉलेज, अम्बाला शहर की तरफ जाना पड़ा तो मैं स्वामी जी से मिलने कुटिया चला गया। मुझे नहीं पता था कि मेरी यह इस जन्म में स्वामी जी महाराज से अन्तिम मुलाकात थी। जब मैं नमस्कार करके चलने लगा तो स्वामी जी बोले, "देखो! प्रो० मोहन लाल, bulbs are of different shapes and different colours but same electricity is flowing through them."

जिस दिन उन्होंने अपना शरीर छोड़ा, मैं उसी प्रकार रो रहा था जैसे कोई बालक अपने माता-पिता के बिछुड़ने पर रोता है। उस रात्रि को सुबह लगभग 3-4 बजे स्वामी जी ने दर्शन देकर कहा **"क्यों रो रहे हो, सब कुछ तुम्हें बता चुका हूँ, कितावों में भी लिख दिया है, चलते रहो।"**

***

सुख सुविधा सम्पन्न संसार में 94 वर्ष की अवस्था में बिछुड़ने के विचार से भयभीत **पं. मोहन लाल, अम्बाला शहर** को उपदेश :

51. अभी से त्यागो संसार : जिस महापुरुष का मैं संस्मरण लिखने जा रहा हूँ उसको लिखने में मुझे हर्ष के साथ-साथ गर्व भी महसूस हो रहा है। यद्यपि 94 वर्ष की आयु में, मैं अपने को लेखन कार्य में असमर्थ समझता हूँ लेकिन उनके प्रति मेरी अटूट श्रद्धा व समर्पण होने के कारण मुझे संस्मरण लिखने में विशेष आनन्द की अनुभूति भी हो रही है।

आज से लगभग 40 वर्ष पूर्व स्वामी जी जब अम्बाला शहर में लभ्भू राम तालाब के पास आकर एक बरामदे में किसी को बिना बताए ठहरा करते थे तो पहली बार उस समय मुझे उनके दर्शन करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। अभी तक मैंने ऐसे संत जो कि पूर्ण विरक्त, त्यागी, तपस्वी और योग, भक्ति व ज्ञान में पूर्णता तक पहुँचे हुए हों और आत्म स्वरूप की सहज समाधि में निवास करने वाले

रहे हों, के दर्शन नहीं किये। इनके बारे में क्या कहा जाये और क्या न कहा जाये वह कम ही कम है। कभी अपने को फक्कड़, कभी भिखमंगा और कभी-कभी बेहला भी कह देते थे। हमेशा अपने को छुपाते ही रहते थे। जो वह कहते थे वही उनका अपना जीवन भी था। स्वामी जी अकसर दो या तीन वर्ष के बाद ही अम्बाला शहर में विचरण करने आते थे।

कुछ सालों के बाद जब फिर स्वामी जी अम्बाला शहर विचरने आये तो उनको यह पहले ही पता लग गया था कि लभ्भू वाले तालाब के पास की ज़गह पर एक कॉलेज बनाने की योजना बन रही है, इसलिए स्वामी जी उस जगह पर न आकर राय साहिब की बगीची में एक टूटा-फूटा कमरा पड़ा था वहाँ पर ठहर गये। जब मुझे स्वामी जी का अम्बाला में आने का पता चला तो मैं भी स्वामी जी के दर्शनों के लिए उधर जाता रहा। एक दिन मुझे स्वामी जी से एक बात जो मेरे मन में बार-बार खटक रही थी पूछने की इच्छा हुई। वह बात पूछने के लिए मैं राय साहिब की बगीची सुबह 8.30 बजे पहुँच गया और बाहर यह सोचकर बैठ गया कि जब स्वामी जी अकेले होंगे तब अपनी बात कहूँगा। आधे घण्टे बाद स्वामी जी ने मुझे खुद ही अन्दर बुला लिया। स्वामी जी को प्रणाम करके बैठ गया। स्वामी जी के पूछने पर मैंने अपने मन की बात स्वामी जी को सुना दी कि स्वामी जी, भगवान् की कृपा से आज इस समय संसार की सब सुख, सुविधाएं कोठी, दौलत, मान-सम्मान, गाड़ी और औलाद मेरे पास हैं। मेरे मन में अब यह आता है कि ज़ब मेरे पास सब कुछ है तो मुझे अब संसार से जाना चाहिए, पता नहीं यह क्यों आता है ? इसके उत्तर में स्वामी जी ने मुझे कहा कि नारायण! आपके मन में जो यह ख्याल आता है कि अब संसार से जाना चाहिए यह आपके मन में

भय के कारण से है कि यह जो ईश्वर ने मुझे इतनी सम्पन्नता तथा सुख–सुविधाएं दे रखी हैं कि कहीं यह सब चली न जायें और इसके अलावा और कोई बात नहीं है।

इस भय को दूर करने के लिए आगे स्वामी जी ने मुझे कहा नारायण! आप अपने मन में ऐसे विचार किया करो कि यह जो धन, दौलत और सांसारिक पदार्थ जो कुछ भी मुझे मिला है वह यहीं से प्राप्त हुआ है और वह एक दिन यहीं रह जायेगा। यह सब कुछ कल को जाने की बजाये चाहे आज ही चला जाये, मुझे इसके बारे में सोचना तक भी नहीं। यह भाव आप अपने मन में बनाओ। इससे आपका जो जाने का भाव बनता है वह दूर हो जायेगा। स्वामी जी की बात सुन कर मुझे अत्यन्त शान्ति हुई और मन ने यह महसूस किया कि यह बात तो जो स्वामी जी ने कही है बिल्कुल ठीक ही है। ऐसा स्वामी जी का उपदेश सुन कर मेरा जीवन धन्य–धन्य हो गया और उस दिन से मेरे जीवन में बहुत ही ज्यादा परिवर्तन आ गया और अब मैं 94 वर्ष का हो गया हूँ और स्वामी जी के आशीर्वाद और कृपा से आनन्दमय जीवन व्यतीत कर रहा हूँ।

52. बेटी को स्वास्थ्य और भक्ति का आशीर्वाद : एक बार स्वामी जी अम्बाला शहर में एस०ए०जैन कॉलेज रोड पर राय साहिब की बगीची में ठहरे हुए थे। जब मुझे, **मोहन लाल** को इस बात का पता चला तो मैं भी दर्शन करने के लिए चला गया। दर्शन करने के पश्चात् मैंने स्वामी जी से विनम्र प्रार्थना की कि स्वामी जी हमारे घर में भी एक दिन भिक्षा के लिए आने की कृपा करें। स्वामी जी ने हमारी प्रार्थना स्वीकार कर ली और एक दिन आने का निश्चित कर दिया। उसी निश्चित दिन पर स्वामी जी अम्बाला शहर के अरबन एस्टेट सैक्टर–7 में स्थित कोठी में भिक्षा लेने के लिए आ

गये। वह दिन हमारे परिवार के लिए बड़ा ही भाग्यशाली था ऐसा हमारा मानना है। हमारे आग्रह करने पर स्वामी जी कोठी के अन्दर आ गये और आसन पर विराजमान हो गये। जहां पर स्वामी जी विराजमान थे वहीं पर मेरी बेटी कान्ता रानी को उठाकर जो पिछले 35 वर्ष से बैड पर थी, बिल्कुल उठ–बैठ नहीं सकती थी और न ही कुछ खाती–पीती थी, को नीचे ही लिटा दिया। बातों–बातों में हमने बेटी की स्थिति स्वामी जी को सुना दी कि स्वामी जी यह 13 साल की आयु में बिमार हुई थी और अब तक इसकी आयु 48 वर्ष की हो गई है। न तो यह उठ–बैठ सकती है और न ही कुछ खाती–पीती है। सिर्फ हम इसका सिर उठा कर दो चार चम्मच चाय व दूध के मुंह में डाल देते हैं। स्वामी जी ने लेटी हुई बेटी पर दृष्टि डाली पर कुछ नहीं बोले और न ही कुछ कहा। बस! भिक्षा लेकर चल दिये। स्वामी जी के घर से भिक्षा ले जाने के 15 दिन बाद एक बड़ी ही आश्चर्यजनक बात हुई कि बेटी ने कुछ हल्का सा लेना शुरू कर दिया। इस बात के लिए हम बहुत हैरान थे कि यह तो एक चमत्कार ही है। कुछ दिनों के बाद स्वामी जी विचरने के लिए अम्बाला से दिल्ली के पास स्थित कराला गाँव (उज्जड़ कुटि) चले गये।

तीन–चार महीने बाद लाला मंगत राम चुड़ियां वाले जिनका परिवार भी स्वामी जी का भक्त है, स्वामी जी के दर्शनार्थ कराला गाँव गये। स्वामी जी ने स्वाभाविक ही श्री मंगत राम जी से पूछ लिया कि पंडित जी की लड़की का क्या हाल है ? मंगत राम जी ने स्वामी जी को बताया कि स्वामी जी हमने सुना है कि बेटी ने अब कुछ खाना–पीना शुरू कर दिया है और कभी–कभी हल्का–सा रोटी के ऊपर का छिलका उतार कर भी उसे खिला देते हैं। यही बात जो स्वामी जी की मंगत राम के साथ हुई वही बात ज्यों कि त्यों मुझे मंगत राम ने बताई। मंगत राम जी की बात सुनकर मेरा मन भाव से

भर गया और मनोमन स्वामी जी को प्रणाम करने लगा कि स्वामी जी आप धन्य हो जो अपने भक्तों पर सदैव कृपा की दृष्टि बनाए रखते हो।

दो वर्षों बाद जब स्वामी जी दोबारा विचरण करते हुए अम्बाला शहर, शमशान घाट के पास राय साहिब की बगीची में आये तो उस समय तक मेरी लड़की दीवार के साथ पीठ लगाकर बैठने लग गई थी। बैठने के साथ–साथ हल्की सी शरीरिक मालिश तथा थोड़ा–सा उसको चलाना भी शुरू कर दिया था। हमारी विनम्र प्रार्थना करने पर स्वामी जी कृपा करने के लिए भिक्षा के बहाने हमारे घर फिर आये। तो उस समय भी स्वामी जी की दृष्टि बेटी पर पड़ी और उस समय उसकी उम्र 50 वर्ष हो गई थी। उस समय स्वामी जी ने बेटी को ईश्वर भजन करने की प्रेरणा दी और कहा देखो बेटी आप को भगवान् ने कुदरती ही ऐसा बनाकर और आपको गृह–गृहस्थी से बाहर ही रखा, सचमुच भगवान् ने आपके ऊपर तो बहुत ही बड़ी कृपा की है। ऐसा आशीर्वाद स्वामी जी ने बेटी को दिया। आप तो घर में बैठी ही संन्यासिन हो, अब आप तो सांसारिक चक्कर से निकल गई हो क्योंकि आपकी उम्र भी अब बड़ी हो गई है। खूब ध्यान भजन किया करो। बेटी ने स्वामी जी की बात को पूरी श्रद्धा से माना, घर में अलग से पूजा रूम बनाया उसमें स्वामी जी का स्वरूप भी रख लिया और भजन पाठ बड़ी लग्नता से करना शुरू कर दिया। जब भी स्वामी जी 2–वर्ष के बाद अम्बाला शहर में आते तो बेटी खुद भिक्षा तैयार करके पूरी श्रद्धा के साथ माता–पिता को साथ लेकर स्वामी जी को भिक्षा देकर आती और स्वामी जी भी बेटी का भाव व श्रद्धा देखकर बड़े प्रेम से भिक्षा स्वीकार करते थे। स्वामी जी की अपार कृपा व आशीर्वाद से वह आज बिल्कुल ठीक–ठाक है। ध्यान भजन के साथ–साथ घर में आये गये मेहमानों की देखभाल भी करती है

और साथ में अपने माता–पिता की भी खूब सेवा करती है। मेरी बेटी कान्ता रानी स्वामी जी को भगवान् के रूप में देखती है और उनकी कृपा से पूरी तरह संतुष्ट भी है। मेरी बेटी पर स्वामी जी ने बिन मांगे ही कृपा करके बेटी को जीवन दान दिया। जिसके लिए हमारे परिवार का रोम रोम स्वामी जी का ऋणी है।

53. ध्यान–समाधि के लिए उत्साह वर्द्धन : एक बार मैं, **पं. मोहन लाल**, स्वामी जी के दर्शनार्थ राय साहिब की बगीची अम्बाला शहर गया तो उस समय स्वामी जी के पास चण्डीगढ़ से आये किसी सरकारी कॉलेज के प्रिंसिपल बैठे बातचीत कर रहे थे। वह कभी इंगलिश में तो कभी हिन्दी में बात कर रहे थे। उन्होंने स्वामी जी से विनम्र होकर एक प्रश्न पूछा कि स्वामी जी, जब मैं ध्यान समाधि में बैठता हूँ तो कुछ समय बाद समाधि में मुझे कई बार तो रोशनी सी दिखाई देती है और कभी–कभी तीखी चमक सी नज़र आती है। इससे स्वामी जी मुझे विचार आता है कि क्या यह रोशनी व चमक वही है जिसे साक्षात्कार कहते हैं या कोई और स्थिति है। स्वामी जी कृपा करके मुझे यह बताने की कृपा करें कि वह क्या चीज है ? इसके उत्तर में स्वामी जी ने कहा कि नारायण! अपने अभ्यास को जारी रखो और समय आने पर आपको इसका उत्तर भी अन्दर से ही अपने–आप मिलेगा। यह सुन कर वह प्रोफैसर गद् गद् हो गया और स्वामी जी का बड़ी विनम्रता से आभार व्यक्त करने लगा और दण्डवत् प्रणाम् करके स्वामी जी से चण्डीगढ़ जाने की विदाई ली।

***

54. एक बहन को स्वपन्न में स्वामी जी का दर्शन (चण्डीगढ़ से) : पूजनीय अर्चनीय वन्दनीय श्री सत् गुरुदेव जी के चरण–कमलों में अनन्त–अनन्त कोटिशः नमन। उन्हीं के विषय में क्या कहूँ,

क्या लिखूँ, ऐसे महान् योगियों के विषय में मां शारदा की लेखनी भी रुक जाती है, मुझे तो समझ नहीं आती कि कहां से आरम्भ करूँ।

सत्गुरुदेव को मिलने की चाह तो बहुत थी परन्तु कोई पता नहीं मिलता था आखिर प्रभु ने एक दिन सुन ही ली। मेरी प्रथम भेंट 1981 अप्रैल में होशियारपुर की पवित्र कुटि में हुई जब मुझे स्वामी जी के दर्शनों का सौभाग्य प्राप्त हुआ। यह दर्शन करवाने का श्रेय मेरे पूज्य बड़े भाई साहिब श्री बाल मुकुन्द प्रभाकर मुकेरियां निवासी (पंजाब) जी को जाता है। मैं तो स्वामी जी को पूर्ण ब्रह्म ही मानती हूँ। प्रथम भेंट में ही उन्हों ने यह वाक्य कहा कि महात्मा सदा तुम्हारे साथ हैं। धन्य हैं मेरे कृपालु प्रभु, वे तो साक्षात् भगवान् ही हैं।

1983 दिसम्बर में मुझे हार्ट की तकलीफ हुई। मेरे दयामय प्रभु रात्रि को स्वप्न में मेरी कुटिया में पधारे और मेरा भाई श्री राजकुमार प्रभाकर भी उनके साथ में था। मैंने अपने भाई से कहा कि महाराज जी को कैसे पता लगा कि मैं बीमार हूँ? मेरे बेड (बिछावन) के पास खड़े हैं। उन्हें देखकर मेरे हर्ष का कोई पारावार नहीं रहा, मैं धन्य-धन्य हो प्रभु–प्रभु करने लगी। अभी वह दृश्य मेरे सामने है और मेरे पास ही खड़े हैं। मुझसे पूछने लगे कि कुछ दिखता है, मैंने कहा कि मुझे तो कुछ नहीं दिखता। इसके पश्चात् जो दृश्य उन्होंने दिखाया वह वर्णन से परे है। स्वामी जी सबको नारायण ही कहते थे, परन्तु वे तो स्वयं ही साक्षात् नारायण ही थे।

जब भी उनके दर्शनों के लिए किसी को मैं अपने साथ ले जाती तो उनसे स्वामी जी पूछते कि आपने दीक्षा ली है। उनके बताने से पहले ही मैंने स्वामी जी से बीच में कहा कि प्रभो! मैंने तो कोई दीक्षा नहीं ली, स्वामी जी कहने लगे कि मैं तो मंत्र–शंत्र आदि किसी को देता नहीं। मैं यह सुनकर चुप हो गई, परन्तु निराश नहीं हुई। इसे जो

चाहो मंत्र समझो या वाक्य, बस मुझे दीक्षा मिल गई। जो नाम मेरे मन में था, वही उन्हों ने परोक्ष, अपरोक्ष में एक नहीं तीन–तीन बार दोहराया, बस! इससे मैं दीक्षित हो गई। बड़े भाग्य से ऐसे महाप्रभु से मिलना होता है। वे तो अन्तर्यामी हैं, सब जानते हैं। वे नारायण हैं नारायण, व्यास नन्दन शुक देव भगवान् भी हैं। उन्हीं की अपार कृपा बरस रही है। परन्तु इस कृपा को मैं पचा सकूं, यह भी उन्हीं की कृपा से ही होगा।

शिव स्वरूप सद्गुरु भगवान् जी के श्री चरण–कमलों में पुनः कोटिशः नमन नमन नमन।

सतगुरु प्यारे जी रखलो चरणां दे कोल,
चरणां दे कोल, प्रभु मैंनूँ चरणा दे कोल।
मेरा न कोई होर, न कोई होर,
प्यारे जी चरणां दे कोल। रखलो चरणां दे कोल।

❊❊❊

55. श्री बलदेवदत्त कालिया, एडवोकेट होशियारपुर, स्वामी जी के जन्म के कालिया परिवार के निकट के संबंधी हैं। उनकी यादें स्वामी जी के वीतराग स्वरूप पर प्रकाश डालती हैं।

स्वामी जी का वीतराग स्वरूप : यह केवल मेरे लिए ही नहीं परन्तु होशियारपुर के समस्त कालिया परिवार के लिए गौरव की बात है कि पूज्य स्वामी जी कालिया परिवार के एक सदस्य थे। ताया घसीटाराम कालिया जी के घर जन्म लेने वाले सुपुत्र श्री मदनलाल कालिया ने अपनी कठिन तपस्या के माध्यम से संन्यासी–जगत् में स्वामी दयानन्द 'गिरि' के नाम से अपना अद्वितीय स्थान बनाया।

1996 की बात है कि मैं अपने परिवार के सदस्यों के साथ हरिद्वार जा रहा था कि रास्ते में अम्बाला शहर में स्वामी जी के दर्शन

करने का संकल्प था। कुछ मेहनत से कुटिया ढूँढ ही ली गई और स्वामी जी के श्री चरणों में उपस्थित हुए। मैंने प्रसादरूप में कूजा-मिश्री का लिफाफा आगे रखा तो स्वामी जी ने कहा—यह क्या है ? मैंने कहा– प्रसाद है। उन्होंने लिफाफा उठाया और मेरे हाथ में थमा कर बोले-"लो, प्रसाद हो लिया।" फिर स्वामी जी ने पूछा कहां से आ रहे हो? मैंने कहा होशियारपुर से। कहां जा रहे हो?" मैंने कहा हरिद्वार। कहने लगे सफर लम्बा है, चलो-चलो। परन्तु मैं तो गृहस्थी होने के नाते अपने कुल में पैदा हुए एक महान् संत से अपना रिश्ता जोड़ना चाहता था लेकिन स्वामी जी महाराज कोई पल्ला नहीं पकड़ा रहे थे। मैंने बेबस होकर कहा कि "मैं डॉ० शादी राम कालिया जी का लड़का हूँ" तो महाराज जी ने हल्की मुस्कराहट दी और मेरे पिता जी के क्लीनिक के बारे में बताया। मैंने इसी रिश्ते को आगे बढ़ाते हुए कहा, "कैलाश नाथ भनोट मेरे मामा जी के लड़के हैं (स्वामी जी की गृहस्थ की बहन श्रीमती बिमला देवी मेरे मामा जी के लड़के से ब्याही हुई है)"। इस पर स्वामी जी ने थोड़ा मुस्कराते हुए कहा कि आपकी छोटी बहन कृष्णावली (लाडो रानी) कैलाशनाथ जी के साथ मुझ से मिलती रही है। तब स्वामी जी ने मुझे कहा– **"होशियारपुर वालों को कहीं जाने की ज़रूरत नहीं है क्योंकि होशियारपुर में स्वामी कूटस्थानन्द सुक्की चोई वाले संत फक्कड़ विराजमान हैं।"** स्मरण रहे कि पूज्य स्वामी कूटस्थानन्द जी महाराज 1994 में ब्रह्मलीन हो चुके थे। यह वचन सुनकर मेरी आंखों में प्रेम के आँसू आ गये क्योंकि हमारा परिवार पूज्य पिता जी के समय से ही स्वामी कूटस्थानन्द जी से सम्बद्ध था।

1998 में मैं हरिद्वार के कुंभ में परिवार सहित गया था। साधना सदन में महामण्डलेश्वर स्वामी रामानन्द जी महाराज (ओंकारेश्वर)

के दर्शन करने गया। उनके पास एक और संत विराजमान थे। मैंने बताया कि मैं पंजाब से आया हूँ तो महामण्डलेश्वर जी बोले, "स्वामी दयानन्द 'गिरि' जी भी तो पंजाब से हैं। "**वीतराग विरक्त सन्त बहुत कम मिलते हैं।**" उसी आश्रम में स्वामी दयानन्द 'गिरि' जी के शिष्य स्वामी अद्वैतानन्द जी (पंडित किशोरी लाल भल्ला होशियारपुर वाले) मिल गये। वह हमें साधन सदन के महामण्डलेश्वर स्वामी गणेशानन्द जी से परिचित करवाते हुए बोले–"यह बलदेवदत्त कालिया, वकील, परम पूज्य गुरु जी महाराज (स्वामी दयानन्द गिरि जी) की परम्परा से है।" इस पर महामण्डलेश्वर जी हाथ जोड़कर खड़े हो गये और मुझ से बोले, "हमारा अहोभाग्य है कि स्वामी दयानन्द 'गिरि' की परम्परा से कोई वहाँ आया है। आओ मेरे साथ बैठ कर भंडारे का प्रसाद पाओ।" उस दिन साधना–सदन में बहुत बड़ा भंडारा हो रहा था। जिसमें आठ–नौ महामण्डलेश्वर उपस्थित थे। स्वामी जी के बारे में इतने उच्च विचार सुनते हुए मेरी आंखों में प्रेम के आंसू आ गये।

हरि....ॐ....तत्....सत्।

***

प्रो. एस. एन. भारद्वाज, रिटायर्ड प्रिंसीपल होशियारपुर, स्वामी जी के सत्संग से बहुत लाभान्वित अनुभव करते हैं। उनके दो लेखों में आप पढ़ेंगे कि स्वामी जी साधकों को कैसे चेताते हैं और अर्थ सहित मन्त्र जप का परामर्श देते हैं।

56. कुछ कर लो, समय हाथ नहीं आएगा : परशीयन या फारसी में ब्रह्मज्योति (Universal Consciousness) को होश कहते हैं और जो उसका यार या मित्र हो उसको होश–यार कहते हैं। जिस शहर में ऐसे होश–यार बसते हैं उसे होशियारपुर कहते हैं। ऐसे

होशियारपुर तीर्थ स्थान में परम पूज्य श्री श्री 1008 स्वामी दयानन्द 'गिरि' जी महाराज का अवतरण हुआ था।

श्री महाराज जी ने अपने माता–पिता के जोर देने पर उनकी बात मान ली थी कि वह साल में कुछ दिन होशियारपुर ज़रूर आया करेंगे। उनके पिता श्री घसीटा राम कालिया जी ने महाराज जी के लिए चण्डीगढ़ रोड पर अपने फार्म में एक कुटिया बनवा दी और उसका नाम भी 'गिरि' कुटिया रख दिया। वह कुटिया साईं यकूबशाह के मकबरे से थोड़ी दूर अब भी मौजूद है। श्री महाराज जी जब भी होशियारपुर आते थे वे वहाँ पर रुक जाते थे और जिज्ञासु खूब उनके उपदेशों का लाभ उठाते थे।

एक बार स्वामी जी एक मास के लिए 'गिरि' कुटिया चण्डीगढ़ रोड होशियारपुर पधारे हुए थे। मैं भी होशियापुर के सत्संगियों के साथ उनके दर्शनार्थ एक घण्टा जाकर प्रवचन का अमृतपान करने के लिए हर रोज़ जाता रहा और उनके श्री चरणों में बैठने का सौभाग्य प्राप्त करता रहा। सत्संग सुनने के लिए चार संन्यासी भी कुटिया में आ जाया करते थे। महाराज जी उनसे फरमाया करते थे कि "सन्तों समय जल्दी से बीत रहा है, कुछ करलो फिर समय हाथ नहीं आयेगा।" ऐसा न हो कि जिसके लिए आपने घर बार छोड़ा है वह आपका संकल्प पूरा ही न हो। एक दिन महाराज जी ने कहा कि कल हम होशियारपुर से प्रस्थान कर जायेंगे। जब सभी सत्संगी स्वामी जी को प्रणाम करके बाहर निकल रहे थे तो मैं पीछे अकेला ठहर गया और उनके श्री चरणों में नतमस्तक होकर और हाथ जोड़कर यह श्लोक बोला :

कुलम् पवित्रम् जननी कृतार्था
वसुन्धरा पुण्यवती च येन।
अपार संवित सुखसागरेऽस्मिन्
लीनम् परे ब्रह्मणि यस्य चेत:।।

वह कुल पवित्र है, वह माता धन्य है, वह धरती पुण्यशाली है

जहाँ ऐसे ब्रह्मज्ञानी का जन्म होता है जिनका चित्त संसार सागर में डूबने की अपेक्षा निरन्तर ब्रह्म चिंतन में ही लीन रहता है।

उन्होंने मुस्कराकर अपना कर–कमल उठाकर आशीर्वाद दिया और मैंने धन्यवाद करते हुए स्वामी जी से विदा ली।

57. ज्ञान–वैराग्य का आशीर्वाद : श्री कृष्ण लाल शर्मा रिटायर्ड स्टेशन मास्टर, मोहल्ला कृष्ण नगर होशियारपुर वाले एक दिन अपनी धर्म पत्नी श्रीमती गुरप्यारी के साथ हरि बाबा मन्दिर होशियापुर में सत्संग अंमृतपान करने के लिए आए और मैं भी वहाँ पर आया हुआ था। जब वह दोनों सत्संग सुनकर घर को जाने लगे तो कृष्णलाल की धर्म पत्नी ने मुझे देख लिया और उसने कृष्ण लाल जी से कहा, कि यह हैं भारद्वाज जी, जो अक्सर सत्संगों में आते रहते हैं, आपजी इनसे मिल लें। मिलने पर कृष्ण लाल जी ने कहा कि मैं पहली बार आज किसी मन्दिर में सत्संग के लिए आया हूँ। मैं ग्रैजुएट हूँ और सिर्फ इंगलिश और उर्दू जानता हूँ, हिन्दी संस्कृत वगैरह नहीं जानता। इतनी बात करके वह अपने घर चले गये।

कुछ दिनों बाद वह और उनकी धर्म पत्नी फिर मेरे मकान मोहल्ला गढ़ी, बहादुरपुर (होशियारपुर) पर आये और कहने लगे कि हमने सुना है कि अपने कल्याण के वास्ते कोई महात्मा गुरु अवश्य बनाना चाहिए। मैंने कहा कि ठीक है। वहाँ होशियारपुर में श्री स्वामी ओमकारानन्द 'गिरि' जी पधारा करते हैं, बड़े ही विद्वान् हैं, उनसे आप नाम दीक्षा ले सकते हैं। कुछ हफ्तों के बाद श्री स्वामी जी विवेक आश्रम ऋषिकेश, जो मायाकुण्ड एरिया में स्थित है, होशियापुर आ गए। उन्होंने कृपा करके ओ३म् नमो भगवते वासुदेवाय का मन्त्र श्री कृष्ण लाल जी को प्रदान किया और साथ में मन्त्र करने का विधि–विधान भी बता दिया। कुछ सप्ताह बाद कृष्णलाल जी ने मुझे

कहा कि वह दिल्ली जाने वाले हैं, वहाँ पर किसी रिश्तेदार के घर शादी है। मैंने उनको कहा कि वापिस आते समय अम्बाला शहर में एस०ए०जैन कॉलेज के पास राय साहिब की बगीची में एक बहुत ही उच्च कोटि के संन्यासी महात्मा परम पूज्य श्री स्वामी दयानन्द 'गिरि' जी महाराज विचर रहे हैं, उनका पवित्र शरीर होशियापुर शहर का ही है। छोटी उम्र में ही वह तपस्या में लग गये थे। अब ब्रह्मनिष्ठ अवस्था में हैं और साधकों का उपदेश द्वारा कल्याण करते रहते हैं, उनके दर्शन ज़रूर करके आना। दिल्ली से लौटने पर श्री कृष्ण लाल व उनकी धर्म पत्नी ने मुझे बताया कि उनको श्री महाराज जी का अम्बाला शहर में दर्शनों का सौभाग्य प्राप्त हो गया है। श्री महाराज जी ने उससे पूछा था कि क्या साधना करते हो तो कृष्ण लाल ने स्वामी जी महाराज को बताया कि जितना हो सके ओ३म् नमो: भगवते वासुदेवाय का जाप करता रहता हूँ। इससे महाराज जी ने फरमाया कि बहुत अच्छी बात है। इस मन्त्र का अर्थ समझकर जाप किया करो। स्वामी जीं ने बताया कि इसका अर्थ यह है कि **"मैं उस भगवान् वासुदेव को नमस्कार करता हूँ जो सर्वत्र और सब में निवास करते हैं।"**

श्री महाराज जी की कुटि से बाहर निकलते समय सायंकाल हो रहा था तभी गुरुप्यारी ने श्री कृष्णलाल जी से कहा कि सोने के गहनों वाला थैला आपने सम्भाल लिया था, वह कहां है। कृष्ण लाल जी ने कहा कि वह थैला तो मैंने आपको दिया था। दोनों घबरा गये कि वह थैला कहाँ गया? श्री महाराज जी ने उनसे घबराहट का कारण पूछा तो वह बोले कि स्वामी जी हम तो लुट गये क्योंकि जो गहने हमारे थैले में थे वह थैला नहीं मिल रहा। श्री महाराज जी ने आराम से उनसे पूछा कि नारायण! वहाँ आने से पहले आप कहां गये

थे ? जवाब मिला कि हम अपने एक दोस्त रिटायर्ड स्टेशन मास्टर को मिलने उनके घर गये थे। श्री महाराज जी ने ध्यान लगाकर देखा और कहा आपका थैला उसी स्टेशन मास्टर के कमरे में पड़ा है जहाँ आप बैठे हुए थे। बस फिर क्या था कृष्ण लाल जी ने रिक्शा वाले को कहा कि तेज से तेज रिक्शा चलाकर हमें उसी स्टेशन मास्टर के घर ले चलो। वहाँ पहुँचने पर उन्होंने अपने दोस्त से पूछा कि हमारा थैला वहाँ है या नहीं तो उन्होंने कहा कि आपका थैला वहाँ पर ही पड़ा है जिससे वह बहुत खुश हुए और महाराज जी का धन्यवाद करने के लिए फिर कुटिया आये। आते ही महाराज जी ने फरमाया कि आपकी वस्तु आपको मिल गई है, नारायण!

कृष्ण लाल जी ने बाहर निकलते समय दरवाजे पर स्वामी जी का टूटा हुआ जूता देखा और स्वामी जी से निवेदन किया कि स्वामी जी आपजी का जूता टूटा पड़ा है। मैं नया जूता ला देता हूँ। श्री महाराज जी ने फरमाया कि हम इस जूते के नीचे रस्सी बाँधकर काम चला लेते हैं, यही ठीक है आप चक्कर में मत पड़ो। बहुत ही ज्यादा जोर और हठ करने पर कृष्ण लाल जी ने बाजार जाकर एक कपड़े का नया जूता ले आये और महाराज जी को बड़ा विनम्र होकर भावपूर्वक स्वीकार करने का आग्रह किया तो श्री महाराज जी प्रसन्न मुद्रा में उसकी विनम्रता देखकर आशीर्वाद रूप में कहा कि "लो कृष्ण लाल! हमने तुम्हें ज्ञान और वैराग्य दोनों दिये।" होशियारपुर आने पर कृष्ण लाल जी को स्वामी जी के आशीर्वाद से दिनों दिन उनकी अवस्था अधिक ऊँची होती गई और उन्हें साधना में रस आने लगा। ऐसी होती है संत कृपा।

उसके बाद कृष्ण लाल जी ने होशियारपुर में अपने घर की दूसरी मंजिल पर एक अलग कमरे में रहना शुरू कर दिया। सारी

गर्मियों में बिजली का पंखा नहीं चलाया और सारी सर्दी में रजाई नहीं ओढ़ी। इस तितिक्षा से उन्हें बहुत लाभ हुआ। वह अक्सर कहा करते हैं कि श्री स्वामी जी महाराज ने मुझे फरमाया था कि कृष्ण लाल साधना में **जुट जाओ, मनुष्य जीवन में कुछ करना है कुछ पाना है।** श्री कृष्ण लाल जी ने परमपूज्य श्री स्वामी दयानन्द 'गिरि' जी के आदेश को अमली जामा पहनाकर दिखा दिया और कहते भी हैं जो मैंने पाना था वह पा लिया है। और अब वह लगभग 90 वर्ष के हो गये हैं। कभी–कभी श्री कृष्ण लाल जी कुछ दिनों के लिए खाली पड़ी 'गिरि' कुटीर में जाकर तपस्या भी किया करते रहते थे। श्री कृष्ण लाल जी के दर्शन करने के लिए अब भी योरपीयन व अमरीकन जिज्ञासु आते रहते हैं और वह उनकी उच्च अवस्था की प्रशंसा भी खूब करते हैं। कृष्ण लाल जी सब को जो उनसे मिलने आते हैं उनको यही कहते हैं कि **जो कुछ भी मिलना है वह सिर्फ अन्दर से मिलना है जिसके लिए कमाई करनी पड़ेगी।**

❊❊❊

58. बुद्धि योग पर बल : हमेशा की तरह सोमवार, नवम्बर 2004 को सुबह 11.00 बजे मैं, **(ज्ञान चन्द गर्ग)**, स्वामी जी की भिक्षा लेकर अम्बाला शहर में स्थित कुटिया राय साहिब की बगीची में पहुँचा। कुटिया के अन्दर जाकर स्वामी जी को दण्डवत् प्रणाम किया और भिक्षा रखकर बैठ गया। उस समय स्वामी जी पद्मासन पर ध्यान में बैठे हुये थे। इतने में मेरे पड़ोसी प्रीत नगर से आयुर्वैदिक डॉक्टर श्री शर्मा की धर्मपत्नी अपने लड़के के साथ भिक्षा लेकर भी पहुँच गई। श्रीमती शर्मा की स्वामी जी के प्रति बहुत ही श्रद्धा है। उसने स्वामी जी से भिक्षा लेने के लिए प्रार्थना की। स्वामी जी ने श्रीमती शर्मा से पूछा कि सब्जी वगैरह में कोई घी का तड़का वगैरह

तो नहीं लगा रखा। वह बोली, स्वामी जी बिल्कुल थोड़ा सा देसी घी का तड़का सब्जी में लगाया हुआ है। तो स्वामी जी बोले यदि आपने भिक्षा ही लानी थी तो हमारे से पूछ लेना था, हम आपको बता देते कि बिना तड़का के सब्जी व सूखी रोटी हमारे लिए लानी है। चलो, आपकी भिक्षा हो गई जब आपका भाव बन गया। श्रीमती शर्मा काफी मायूस हुईं कि स्वामी जी ने हमारी भिक्षा क्यों नहीं ली। यदि मुझे पता होता तो मैं रोटी व सब्जी में घी इस्तेमाल न करती। इतने में स्वामी जी से प्रार्थना करने लगी "स्वामी जी आजकल कार्तिक का महीना चल रहा है आप कृपा करके हमारे घर दर्शन ज़रूर देने आएं।" बस! उसकी प्रार्थना करने की थी कि स्वामी जी एक दम बोले, " लो गर्ग साहब तो वहाँ बैठे हुए हैं यह तो हमें बुलाते नहीं, यह भी आपके पड़ोसी ही हैं।" स्वामी जी का इतना कहना था कि, मैंने स्वामी जी को उसी समय हाथ जोड़कर विनम्र प्रार्थना की कि स्वामी जी आपजी कब कृपा करके हमारे घर भिक्षा के लिए दर्शन देंगे? स्वामी जी बोले- "जब कहोगे।" मैंने स्वामी जी से विनम्र भाव से प्रार्थना की कि स्वामी जी शुक्रवार को दीवाली का पर्व है। आपजी कृपा करके उसी दिन हमारे घर चरण डालें। स्वामी जी ने तुरन्त हाँ कर दी और साथ ही कहने लगे उसी दिन ही डॉ० शर्मा के घर पर भी चले जायेंगे। बाद में स्वामी जी मेरे को कहने लगे कि नारायण! आप गुरुवार को तो सुबह 9.00 बजे चाय लेकर वहाँ पर आते ही हो तो क्यों न हम उसी दिन भिक्षा के लिए आपके साथ चलें। इसमें क्या फर्क पड़ता है कि वह दिन दीवाली का है या और कोई। मैं स्वामी जी की आज्ञा मान कर गद्‌गद् हो गया कि अब तो भगवान् खुद कृपा करके दास के घर चरण डालना चाहते हैं। स्वामी जी साथ में कहने लगे कि नारायण! जब आप चाय लेकर आओगे तो उस दिन आपको चाय देने के बाद आधा घंटा गुजराती महात्मा के पास बैठ जाना पड़ेगा क्योंकि इतने में हम लघुशंका जाकर जाने के लिए तैयार हो जाएंगे। स्वामी जी की

आज्ञा अनुसार मैं गुरुवार को सुबह 9.00 बजे चाय लेकर कुटिया पहुँच गया और जाकर स्वामी जी को दण्डवत् करके चटाई लेकर बैठ गया। स्वामी जी बोले नारायण! हमें लेने के लिए आ गये हो। मैंने कहा हाँ स्वामी जी। उनकी आज्ञा से स्वामी जी को मैंने चाय दी। स्वामी जी ने चाय लेकर मुझे कहा कि नारायण! आप गुजराती महात्मा के पास बैठ जाओ मुझे तैयार होने में आधा घण्टा लगेगा। मैं गुजराती महात्मा के पास जाकर बैठ गया और साथ में मैंने अपने बेटे सुधीर को टैलीफोन कर दिया कि स्वामी जी की अपार कृपा हो रही है और वह आज ज़रूर हमारे घर आशीर्वाद देने के लिए आयेंगे। आप गाड़ी लेकर तुरन्त आ जाओ। वह गाड़ी लेकर और साथ में कुछ फूल माला लेकर कुटिया पहुँच गया। उसने गाड़ी को कुटिया के गेट के अन्दर लगा दिया और वह भी गुजराती महात्मा के पास अन्दर आ गया। 15 मिनट बाद मैंने गुजराती महात्मा जी से प्रार्थना की कि महात्मा जी मैं जाली से देख तो लूँ कि स्वामी जी आज जायेंगे कि नहीं क्योंकि उन दिनों में स्वामी जी की सेहत कुछ अच्छी नहीं चल रही थी और आम कह देते थे कि नारायण आज हमारी सेहत ठीक नहीं है इसलिए हम नहीं जायेंगे, यहीं पड़ोस से ही भिक्षा मांग लेंगे। मैं ज्यों ही गुजराती महात्मा जी के कमरे से निकलकर स्वामी जी की कुटिया की तरफ देखने लगा तो मैंने देखा कि स्वामी जी अपना खपड़ लेकर कुटिया के बाहर ही जाने के लिए तैयार खड़े हैं। आँखों में आँसू आ गए कि हमारे स्वामी जी धन्य हैं, सेहत ठीक न होते हुए भी आशीर्वाद के लिए घर पधार रहे हैं। मुझे स्वामी जी कहने लगे– "नारायण! चलें और साथ में गुजराती महात्मा को भी ले लो।" सुधीर की गाड़ी में स्वामी जी पीछे विराजमान हो गये और गुजराती महात्मा जी आगे की सीट पर बैठ गये। मैंने अपनी गाड़ी को सुधीर की गाड़ी के आगे लगा लिया। चन्द मिनटों में ही स्वामी जी हमारे घर पहुँच गये। मेरे सारे परिवार के सदस्य जो गेट पर स्वामी जी के आने

का इन्तजार कर रहे थे, सबने दण्डवत् प्रणाम् किया और स्वामी जी बड़े प्रेम से घर के अन्दर आकर आसन पर विराजमान हो गये। स्वामी जी की आज्ञा से हम भी स्वामी जी के सामने बैठ गये। वातावरण बड़ा धार्मिक था। ऐसा लग रहा था कि आज सचमुच दीवाली के एक दिन पहले भगवान् खुद आशीर्वाद देने के लिए आये हैं। स्वामी जी मेरे से कहने लगे नारायण, कुछ पूछना है तो पूछिए। मैंने स्वामी जी से विनम्र प्रार्थना की कि, स्वामी जी आपजी खुद कृपा करके जो भी हमें उपदेश देना है आप ही दे दीजिए। स्वामी जी ने कृपा करके गीता के 18 अध्याय का 57 श्लोक का अंश बोला और साथ में उसका भाव भी समझाया

बुद्धियोगमुपाश्रित्य मच्चित्तः सततं भव।।

श्लोक।।57।।

कहने लगे कि "नारायण! बुद्धि के सांथ जोड़–मेला रखना। हर कार्य में होश व सोधी बनाए रखना। कोई भी ऐसा कार्य नहीं करना कि बाद में पछताना पड़े। यदि बुद्धि के साथ जोड़–मेल व प्रत्येक कार्य में होश व सोधी बनाए रखोगे तो कृष्ण भगवान् सदा आपके साथ रहेंगे, इससे आपकी हर एक जगह रक्षा भी होती रहेगी। यदि बुद्धि के साथ जुड़कर नहीं रहोगे तो फिर आप जानो और आपका काम।" इतना कहकर स्वामी जी ने कहा अच्छा नारायण! अब भिक्षा लाओ। हमने स्वामी जी और गुजराती महात्मा को बड़े प्रेम से भिक्षा दी जो उन्होंने अपने खप्पर में डलवा ली। भिक्षा लेकर स्वामी जी कहने लगे नारायण! बस हो गया, अब चलें। उसी समय मैंने विनम्र प्रार्थना की कि स्वामी जी हमारे पूजा के कमरे में भी चरण डालने की कृपा करें। स्वामी जी मान गये और कहने लगे–"चलो।" मेरे और मेरे लड़के सुधीर के साथ पूजा के कमरे में स्वामी जी व गुजराती महात्मा आ गये। कमरे में आकर स्वामी जी ने सभी भगवानों के चित्रों पर नज़र डाली और

सभी के बारे में बारी–बारी उन भगवान्‌ों के नाम पूछे जिन–जिन भगवान्‌ों के वहाँ चित्र लगे हुए थे। जब मैंने स्वामी जी को उनका चित्र लगा हुआ भी दिखाया तो स्वामी जी मुस्करा पड़े। तत्काल ही मैंने और सुधीर दोनों ने स्वामी जी के श्री चरणों को स्पर्श करते हुए दण्डवत् प्रणाम किया। स्वामी जी ने कृपा करके अपने दोनों चरण हमारे आगे बढ़ा दिये और सहर्ष प्रणाम स्वीकार किया और वापिस आते समय पूछने लगे नारायण! इधर तो भक्तों को भेजने वाली पुस्तकें पड़ी होती थीं वे कहां है? मैंने स्वामी जी को बड़े प्रेम पूर्वक, क्रम–बार पड़ी हुई पुस्तकों को दिखाया। उनको देखकर स्वामी जी अति प्रसन्न हुए। जब स्वामी जी इस पूजा के कमरे से बाहर आकर घर के पिछले दरवाजे से बाहर जाने लगे तो मैंने उन्हें प्रार्थना की कि स्वामी जी आप इधर गैलरी में से आ जाओ आपके जूते भी इधर ही पड़े हुए हैं। एक दम स्वामी जी बोले नारायण! क्या आपने घर की परिक्रमा भी करवानी है? मैंने कहा हां! स्वामी जी, मुस्करा कर कहने लगे– "अच्छा चलो।" उसके बाद सुधीर, गुजराती महात्मा व स्वामी जी को अपनी गाड़ी में बैठाकर डा० शर्मा के घर में चरण डलवाते हुए अपनी दुकान पर चरण डलवाकर कुटिया में श्रद्धा व भावपूर्वक छोड़कर आया। यह स्वामी जी का भिक्षा के लिए किसी घर में आना अन्तिम ही था। इसके बाद वे किसी के घर नहीं गये। मुझे नहीं पता था के मेरे घर इस जन्म में स्थूल रूप में स्वामी जी का आना अन्तिम ही था।

59. सच्चे भिक्षुक का स्वरूप : मुझे ज्ञान चन्द गर्ग को, परम पूज्य स्वामी जी के श्री चरणों में 1975 से लेकर 2004 तक 30 वर्षों से जाने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। स्वामी जी किसी को भी अपने बहुत नजदीक नहीं आने देते थे, सिर्फ धर्म सम्बन्धी चर्चा तक ही

सीमित रखते थे। वे अति सरल स्वभाव तथा एकान्तवासी विरक्त महात्मा थे। उन्होंने अपना पद्मासन साध रखा था और हमेशा पद्मासन पर विराजमान रहते थे। वे सभी को नारायण कहकर पुकारते थे और सभी में नारायण के दर्शन करते थे। स्वामी जी ऐसे संन्यासी महात्मा थे कि उनके सामने निन्दा और स्तुति दोनों ही शाब्दिक खेल होते थे, जिनका कोई अर्थ नहीं होता। वाणी पर स्वामी जी का इतना संयम था कि यदि दो शब्दों में काम चल सकता था तो तीसरा शब्द नहीं बोलते थे। स्वामी जी के पास बहुत संत महात्मा तथा बुद्धिजीवी लोग अपनी धर्म सम्बन्धी शंकाओं का समाधान करने आया करते थे जिनका समाधान स्वामी जी बहुत ही बढ़िया ढंग से करते थे और सभी पूर्ण रूप से सन्तुष्ट होकर जाते थे, ऐसा मैंने स्वयं देखा है। 1992 की घटना है कि मैंने पूज्य स्वामी जी को अपने निवास स्थान प्रीत नगर पर भिक्षा ग्रहण करने के लिए प्रार्थना की जो स्वामी जी ने सहर्ष स्वीकार कर ली। मेरा निवास स्थान अम्बाला शहर की कुटिया से लगभग 5 कि०मी० है। स्वामी जी ने मुझे मिशन अस्पताल के पास खड़ा होने के लिए कह दिया कि हम वहाँ पहुँच जायेंगे, आगे आपके साथ घर चल पड़ेंगे। स्वामी जी हाथ में पानी का कमण्डल व खप्पर लिए हुए मिशन अस्पताल के पास पहुँच गए, जहां मैं खड़ा था। वहाँ से मैं स्वामी जी के साथ घर के लिए चल पड़ा। साथ चलते–चलते मैंने स्वामी जी से जन्म पत्री में मंगलीक के बारे में पूछ लिया कि महाराज जी पंडित लोग शादी वगैरह के मामले में कई बार मंगलीक होने की बात कर देते हैं इसमें कितनी सच्चाई है ? स्वामी जी ने पूछा नारायण! आप यह बात क्यों पूछ रहे हो? क्या आपने कोई शादी वगैरह करनी है। वह तो अन्तर्यामी थे, मैंने उत्तर दिया हाँ महाराज। स्वामी जी ने पूछा क्या कोई परेशानी

आ रही है। मैंने अपने मन की सारी बात घबराते-घबराते कह डाली, क्योंकि स्वामी जी दुनियादारी की बात बहुत कम किया करते थे। मैंने स्वामी जी को बताया कि स्वामी जी मैंने अपनी लड़की के लिये कई योग्य वर देखे हैं, पर हर जगह यह जन्म-पत्री विघ्न डाल देती है। किसी जन्मपत्री में कोई ग्रह नहीं मिलता किसी में कोई। कई ज्योतिषी, मंगलीक वगैरह का चक्र डाल देते हैं, जिससे योग्यवर ढूंढने में परेशानी हो रही है। तो इसके उत्तर में स्वामी जी ने कृपा करके अपने मुखारविन्द से बताया कि नारायण! काशी जी में रहते हुए हमने भी ज्योतिष विद्या की पूर्ण पढ़ाई कर रखी है। आगे स्वामी जी कहने लगे, मेरे मन में एक दिन ऐसा आया कि मैंने ज्योतिष विद्या की पढ़ाई तो पूर्ण रूप से कर रखी है, पर जो मैंने पढ़ रखा है उसकी परीक्षा भी लेनी चाहिए कि वह ठीक भी है या नहीं। इसकी परीक्षा लेने के लिए मैं सीधा होशियारपुर आ गया और सीधे भृगु संहिता वाले ज्योतिषी के घर के दरवाजे पर जाकर 'नारायण हरि' बोल दी। अन्दर से पहले तो कोई बोला नहीं परन्तु दूसरी बार 'नारायण हरि' कहने से घर के अन्दर से आवाज़ आई, बाबा कैसे आये हो ? हमने कहा नारायण! आपसे कुछ प्रश्न पूछने हैं, क्या आप बताओगे ? पहले तो वह चुप हो गये परन्तु बाद में पता नहीं उनके मन में क्या आया-"कहने लगे, महात्मा जी दो प्रश्न आप अपने मन में सोच लो हम उनका उत्तर आप को दे देंगे।" हमने भृगु ज्योतिषी को बोला देखो नारायण! हम हैं भिक्षु, पैसा वगैरह हम अपने पास नहीं रखते। इसलिए दक्षिणा वगैरह हम आपको नहीं दे सकते, बताओ मेरे प्रश्नों का उत्तर दोगे। वह कहने लगे कोई बात नहीं आप दो प्रश्न सोच लो। मैंने दो प्रश्न सोच लिए। उन्होंने एक प्रश्न का उत्तर जो लौकिक (सांसारिक) था, उसका उत्तर तो ज्यों का त्यों दे दिया जो मैंने सोचा

था। परन्तु दूसरा प्रश्न जो लोक से परे (अलौकिक) का था उसका वह उत्तर नहीं दे सके। मैंने उनसे कहा बस! नारायण, हो गया, जो कुछ भी मैं पूछना चाहता था वह पूछ लिया और मेरे प्रश्नों का उत्तर मुझे मिल गया है। तो स्वामी जी ने चलते–चलते मुझे बताया कि नारायण! जो ज्योतिष है वह कुछ सांसारिक प्रश्नों तक ही सीमित है। जिनका उत्तर तो ज्योतिषियों के पास है बता देंगे कि यह आपका प्रश्न है। पर, भविष्य के बारे में वे बिल्कुल नहीं बता सकते कि इसका आगे क्या होने वाला है? यूँ तो ज्यातिषी कह देंगे कि आप इतना पाठ–पूजा या जाप करवा लो, आपका काम बन जायेगा। यह सब मन की संतुष्टि के लिए तो ठीक है। परन्तु यह कोई भी ज्योतिषी नहीं बता सकता कि फलां तारीख और फलां दिन क्या होने वाला है? जो कुछ होना या नहीं होना है वह तो विधि के विधान अनुसार ही होना है। ऐसे ही मैंने पहले कुछ दिन इसी उपलक्ष्य में अपनी शंका के समाधान के लिए स्वामी जी से रामायण की निम्न चौपाई के बारे में पूछा था कि स्वामी जी क्या विधि का विधान यही है?

"होई है सोइ जो राम रचि राखा,
को करि तरक बढ़ावहिं साखा।"

तो स्वामी जी बोले कि नारायण! यह तो ठीक ही है इसमें आपको क्या शंका है। बस! स्वामी जी की कृपा से मेरे मन की सभी शंकाएं खत्म हो गईं।

इसके बाद स्वामी जी मेरे निवास स्थान पर पहुँच गये और कमरे में आसन पर विराजमान हो गये। वहाँ पर दर्शन करने के लिए कुछ बुद्धिजीवी लोग भी बैठे हुए थे। स्वामी जी महाराज ने उन लोगों से पूछा कि नारायण! कुछ पूछना है तो पूछिए। उनमें से एक पॉलिटैक्निक के प्रिंसिपल भी थे, उन्होंने पूछा कि स्वामी जी हमारे

घरों की जो स्त्रियां हैं उनका ज्यादा समय रसोई में ही निकलता है। कई बार दरवाजे पर मांगने वाला आ जाता है, उसे देखते ही रसोई में से बिना सोचे समझे मांगने वाले को वह कह देती हैं कि चल बाबा चल, आगे चल, कई बार तो कुछ ऊँचा-नीचा भी बोल देती हैं। इस बात का स्वामी जी हमें कैसे पता चले कि किसको क्या देना है और किसको क्या नहीं देना। इस बात को सुनकर स्वामी जी बोले-"देखो नारायण! आपको क्या देना है या क्या नहीं देना यह तो आपका अपना काम है हम इसमें दखल नहीं देते।" एक बात तो जरूर है के यदि आपके दरवाजे पर कोई मांगने वाला खाने के समय भिक्षा मांगने आता है और आकर किसी भी नाम से जैसे नारायण हरि, हरि ओम्, राम-राम, श्याम-श्याम आदि किसी भी नाम से आवाज़ लगाता है, आवाज़ लगाने से यदि घर के अन्दर से कोई आवाज आती है तो वह रुकेगा, नहीं तो वह दूसरी आवाज उसी नाम से लगाएगा, यदि फिर भी घर से कोई आवाज़ नहीं आती तो वह तीसरी आवाज़ लगाकर वह आगे चल देगा। ऐसे ही दूसरे घर जाकर आवाज़ लगाएगा। यदि वहाँ से आवाज़ आती है कि बाबा ठहरो, तो वह ठहर जायेगा। जो कुछ भी भिक्षा देने के लिए अन्दर से कोई आया है उसको लेने के लिए वह अपना खप्पर या बर्तन आगे कर देगा। उसकी निगाह सिर्फ खप्पर तक होगी वह न तो यह देखगा कि यह भिक्षा बासी है यह ताजी, न वह ध्यान करेगा कि भिक्षा स्त्री दे रही है या पुरुष, बस! उसकी निगाह तो खप्पर में डलती हुई भिक्षा तक ही सीमित है। और एक बात और है, कि भिक्षा लेते समय वह उसके घर की तरफ नहीं देखेगा और न ही वह किसी किस्म का उसको आशीर्वाद देगा। बस भिक्षा लेकर आगे चल देगा। चलते समय वह पीछे मुड़कर भी नहीं देखेगा। बस समझ लेना कि आपके घर पर जो भी खाने के

समय भिक्षा के लिए कोई आया था वह भगवान् का पूर्ण भक्त ही था। ऐसे महात्मा सिर्फ दिन में एक बार खाने के समय पाँच घरों से भिक्षा लेने के लिए ही आते हैं और समय नहीं आते।

❊❊❊

60. मैत्री, करुणा आदि गुणों का सात्विक प्रभाव : मुझे **(सुरजीत नागपाल)** वर्ष 1972 में प्रथम बार अम्बाला शहर के लभ्भू वाले तालाब निकट जैन कॉलिज में जहाँ परम पूजनीय श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ वीतराग श्री स्वामी जी चौमासा काट रहे थे और सांयः 4.00 से 5.00 बजे तक आध्यात्मिक सत्संग करते थे, के श्री चरणों में जाने का सुअवसर मिला। श्री स्वामी जी के मुखारविंद से सत्संग सुनकर मेरे मन में खुशी की लहर जाग गई और लगभग तीन मास श्री स्वामी जी के दर्शन व सत्संग सुनने का लाभ लेता रहा। वर्ष 1974 में पुनः श्री स्वामी जी उक्त स्थान पर पधारे और सांयः 4.00 से 5.00 बजे तक आध्यात्मिक सत्संग सुनने का सुअवसर मिला। इसी वर्ष मेरी पदोन्नति लिपिक से सहायक के पद पर हुई थी और सेवक की नियुक्ति मन्त्रीकार अनुभाग हरियाणा चण्डीगढ़ में हो गई तो सेवक को अपने मुख्यालय तथा मित्रों से पता चला कि जो अधिकारी सर्विस इन्जीनियर वहाँ कार्यरत है उसका व्यवहार अपने अधीनस्थ कर्मचारियों के साथ ठीक नहीं रहता और उनसे दुर्व्यवहार करता है। इस संदर्भ में मन्त्रीकार अनुभाग में अपनी ड्यूटी ग्रहण करने से पूर्व परम पूजनीय श्री स्वामी जी को सत्संग के पश्चात् अकेले में मिला और संक्षेप रूप में सारी बात सुनाई, तो श्री स्वामी जी इस तुच्छ–सेवक की प्रार्थना सुनकर कहने लगे, 'नारायण' कल सांयः अपने साथ कापी तथा पेन/कलम लेकर आना तो आप को दस बलों के बारे में लिखवाएंगे, उनका समय–समय पर अपने जीवन में ढालने का प्रयत्न करना तो आपके अधिकारी का व्यवहार स्वतः आपके प्रति

विनम्र हो जाएगा। श्री स्वामी जी की आज्ञा का पालन करते हुए अगले दिन सत्संग के पश्चात् श्री स्वामी जी के श्री चरणों में प्रणाम करता हुआ पुनः प्रार्थना की तो श्री स्वामी जी ने सहर्ष दस बल सेवक को लिखवाए जिसका ब्यौरा इस प्रकार है :

(1) मैत्री (2) करुणा (3) मुदिता (4) उपेक्षा (5) क्षमा (6) शील (7) दान (8) वीर्य, (9) ध्यान–समाधि एवं (10) प्रज्ञा। साथ में आदेश दिया कि अपनी ड्यूटी ग्रहण करने के पश्चात् समय–समय पर इन्हें अपने ज़ीवन में ढालने का प्रयत्न करना। श्री स्वामी जी की आज्ञा का पालन करते हुए दिनांक 1.3.1974 को मैं अपना कार्यभार सम्भालने हेतु मन्त्रीकार अनुभाग में सम्बन्धित अधिकारी को अपनी आगमन रिपोर्ट प्रस्तुत की, तो उसने पहले दिन ही श्री स्वामी जी के आशीर्वाद से अपना व्यवहार कुछ नर्म रखा और कई प्रकार की हिदायतें कार्य करने बारे में दी। श्री स्वामी जी द्वारा दिखाये गये मार्ग पर चलने का प्रयत्न किया। लगभग दो–तीन महीने में ही श्री स्वामी जी की अपार कृपा से चमत्कारी असर देखने में मिला और सम्बन्धित अधिकारी मेरे कार्य से प्रसन्न हुआ और जब कभी भी परिवहन आयुक्त हरियाणा या सिविल सचिवालय में सरकारी कार्य हेतु वे जाते तो इस सेवक को भी अपने साथ ले जाते। यह सब श्री स्वामी जी के आशीर्वाद तथा उनके द्वारा बताए गए दस बलों की करामात है। इसलिये यह सत्य है कि सन्त और भगवान् में कोई अन्तर नहीं है।

***

61. भक्त का हृदयआघात से बचाव : एक बार जब मैं, **आर. के. गुप्ता, अम्बाला शहर**, स्वामी जी के दर्शन करने के लिए अम्बाला शहर की कुटिया में गया तो स्वामी जी ने मेरा चेहरा देखते ही कहा, कि नारायण! क्या बात है तुम्हारा चेहरा ठीक नहीं लगता।

मैंने कहा कि स्वामी जी, मैं तो ठीक हूँ, उन्होंने कहा कि अभी चले जाओ और डॉक्टर से चैक-अप कराओ। मैं वहाँ से उठ कर सीधा सिविल हस्पताल में Dr. Gehlotra, Dy. C.M.O. के पास चला गया और जाँच के पश्चात् उन्होंने कहा कि तुरन्त किसी Heart Specailist को दिखाओ।

मैं Dr. (Major) G. Kumar, S.M.O. Heart Specialist के पास चला गया। वहीं पर मदन सिंह, सरपंच ग्राम घेल के बैठे हुए थे। उन्होंने मुझे देखते ही कहा कि आप तो अभी ठीक थे, इतनी जल्दी क्या हो गया? मैंने उन्हें उपरोक्त वर्णित घटना बताई। डॉ० कुमार ने मेरा X-Ray, ECG आदि चैक-अप के पश्चात् कहा कि आपको Severe Heart Attack होने वाला था आप Border Line पर हो, आप किसी शक्ति के कारण अब तक बचे रहे। मैंने गुरुदेव का मन ही मन में कोटि-कोटि धन्यवाद किया। डॉ० कुमार ने मेरे को एक टीका लगाया और दवाई भी दी और कुछ दवाइयां बाहर से लेने के लिए लिख दीं और टी०एम०टी टैस्ट करवाने को कहा।

अगले दिन प्रातः मैं, मेरी पत्नी और बड़ा बेटा, मेरे छोटे भाई के साथ PGI पहुँच गये। डॉ० बाली ने अपने Junior Dr. अनुराग को भी वहीं पर बुला लिया। मेरे तमाम टैस्ट आदि करने के पश्चात् डॉक्टर ने कहा कि 1.3 लाख रूपया जमा करवाकर दाखिल हो जाओ, क्योंकि आपकी एंजोग्राफी व By Pass Surgery होगी। मैं इतनी राशि जमा कराने में असमर्थ था और केवल दवाइयां लिखवाकर वहाँ से चला आया, साथ ही अपने विभाग में एक आवेदन जहाँ से सेवानिवृत्त हुआ था, उपरोक्त राशि की स्वीकृति हेतु दे आया। जनवरी, 2003 में मेरी राशि विभाग द्वारा स्वीकृत भी कर दी गई।

हम सभी P.G.I. से सीधे महाराज जी के पास वापिस आकर

विनम्र हो जाएगा। श्री स्वामी जी की आज्ञा का पालन करते हुए अगले दिन सत्संग के पश्चात् श्री स्वामी जी के श्री चरणों में प्रणाम करता हुआ पुनः प्रार्थना की तो श्री स्वामी जी ने सहर्ष दस बल सेवक को लिखवाए जिसका ब्यौरा इस प्रकार है :

(1) मैत्री (2) करुणा (3) मुदिता (4) उपेक्षा (5) क्षमा (6) शील (7) दान (8) वीर्य, (9) ध्यान–समाधि एवं (10) प्रज्ञा। साथ में आदेश दिया कि अपनी ड्यूटी ग्रहण करने के पश्चात् समय–समय पर इन्हें अपने ज़ीवन में ढालने का प्रयत्न करना। श्री स्वामी जी की आज्ञा का पालन करते हुए दिनांक 1.3.1974 को मैं अपना कार्यभार सम्भालने हेतु मन्त्रीकार अनुभाग में सम्बन्धित अधिकारी को अपनी आगमन रिपोर्ट प्रस्तुत की, तो उसने पहले दिन ही श्री स्वामी जी के आशीर्वाद से अपना व्यवहार कुछ नर्म रखा और कई प्रकार की हिदायतें कार्य करने बारे में दी। श्री स्वामी जी द्वारा दिखाये गये मार्ग पर चलने का प्रयत्न किया। लगभग दो–तीन महीने में ही श्री स्वामी जी की अपार कृपा से चमत्कारी असर देखने में मिला और सम्बन्धित अधिकारी मेरे कार्य से प्रसन्न हुआ और जब कभी भी परिवहन आयुक्त हरियाणा या सिविल सचिवालय में सरकारी कार्य हेतु वे जाते तो इस सेवक को भी अपने साथ ले जाते। यह सब श्री स्वामी जी के आशीर्वाद तथा उनके द्वारा बताए गए दस बलों की करामात है। इसलिये यह सत्य है कि सन्त और भगवान् में कोई अन्तर नहीं है।

***

61. भक्त का हृदयआघात से बचाव : एक बार जब मैं, **आर. के. गुप्ता, अम्बाला शहर,** स्वामी जी के दर्शन करने के लिए अम्बाला शहर की कुटिया में गया तो स्वामी जी ने मेरा चेहरा देखते ही कहा, कि नारायण! क्या बात है तुम्हारा चेहरा ठीक नहीं लगता।

मैंने कहा कि स्वामी जी, मैं तो ठीक हूँ, उन्होंने कहा कि अभी चले जाओ और डॉक्टर से चैक–अप कराओ। मैं वहाँ से उठ कर सीधा सिविल हस्पताल में Dr. Gehlotra, Dy. C.M.O. के पास चला गया और जाँच के पश्चात् उन्होंने कहा कि तुरन्त किसी Heart Specailist को दिखाओ।

मैं Dr. (Major) G. Kumar, S.M.O. Heart Specialist के पास चला गया। वहीं पर मदन सिंह, सरपंच ग्राम घेल के बैठे हुए थे। उन्होंने मुझे देखते ही कहा कि आप तो अभी ठीक थे, इतनी जल्दी क्या हो गया? मैंने उन्हें उपरोक्त वर्णित घटना बताई। डॉ० कुमार ने मेरा X-Ray, ECG आदि चैक–अप के पश्चात् कहा कि आपको Severe Heart Attack होने वाला था आप Border Line पर हो, आप किसी शक्ति के कारण अब तक बचे रहे। मैंने गुरुदेव का मन ही मन में कोटि–कोटि धन्यवाद किया। डॉ० कुमार ने मेरे को एक टीका लगाया और दवाई भी दी और कुछ दवाइयां बाहर से लेने के लिए लिख दीं और टी०एम०टी टैस्ट करवाने को कहा।

अगले दिन प्रातः मैं, मेरी पत्नी और बड़ा बेटा, मेरे छोटे भाई के साथ PGI पहुँच गये। डॉ० बाली ने अपने Junior Dr. अनुराग को भी वहीं पर बुला लिया। मेरे तमाम टैस्ट आदि करने के पश्चात् डॉक्टर ने कहा कि 1.3 लाख रूपया जमा करवाकर दाखिल हो जाओ, क्योंकि आपकी एंजोग्राफी व By Pass Surgery होगी। मैं इतनी राशि जमा कराने में असमर्थ था और केवल दवाइयां लिखवाकर वहाँ से चला आया, साथ ही अपने विभाग में एक आवेदन जहाँ से सेवानिवृत्त हुआ था, उपरोक्त राशि की स्वीकृति हेतु दे आया। जनवरी, 2003 में मेरी राशि विभाग द्वारा स्वीकृत भी कर दी गई।

हम सभी P.G.I. से सीधे महाराज जी के पास वापिस आकर

नमन करके बैठ गये और तमाम राम कहानी स्वामी जी को सुना दी। महाराज जी मुस्कराये और अपनी गद्दी के नीचे से हल्दी की एक गठी मेरी पत्नी को देते हुए कहने लगे, कि इसे तोड़ कर तवे पर भून लेना और रात्रि में सोते समय एक चुटकी मुँह में रात्रि के समय डालने के लिए इन्हें दे दिया करें। कोई ऑपरेशन आदि न करवाना, केवल दवाई का सेवन करते रहें। हम महाराज जी को नमन करके वापिस आ गए और जो राशि विभाग द्वारा स्वीकृत की गई थी वह भी विभाग को वापिस जमा करा दी।

महाराज जी की कृपा से अब मैं पूर्णतः स्वस्थ हूँ और किसी किस्म का कष्ट नहीं है परन्तु दवाई का सेवन कर रहा हूँ। जब यह घटना याद आती है तो आंखों में आँसू छलक पड़ते हैं कि हमने महाराज जी को उनके जीवन-काल में नहीं पहचाना, वह तो पूर्ण ब्रह्म थे।

***

62. प्रारब्ध–भोग : अंगुली माल का दृष्टान्त : एक समय **मैंने (योगराज गर्ग ने)** अपने मन की जिज्ञासा स्वामी जी से कही: स्वामी जी कभी–कभी न चाहने पर भी शोक, दुःख या हानि हो जाती है, ऐसा क्यों होता है ?

स्वामी जी ने कहा, नारायण ! हर मनुष्य को जब तक तन में प्राण है, प्रारब्ध का भोग भोगना पड़ता है। उन्होंने एक घटना महात्मा बुद्ध की सुनाई और कहा—एक लड़का गुरु आश्रम में पढ़ने के लिए गया। वह लड़का हर काम में और पढ़ने में बहुत निपुण था और गुरु जी उससे बहुत प्यार करते थे। साथ वाले बच्चे उससे इर्ष्या करने लगे। उस लड़के को नीचा दिखाने के लिए उन्होंने गुरु जी से कहा, कि इस लड़के का गुरु पत्नी से गलत सम्बन्ध है, यह बात वे लड़के

नित्य प्रति कहने लगे। रोज़–रोज़ उनकी बात सुनकर गुरु जी उस लड़के की गल्ती पकड़ने की ताक में रहे। एक दिन वह जंगल से लकड़ियों का गठड़ लेकर आया, गुरु पत्नी गठड़ को सिर से उतारने लगी, तो अचानक लड़के का हाथ गुरु पत्नी के हाथ से स्पर्श कर गया, बस गुरु जी को मौका मिल गया, उसे डांट–फटकार कर आश्रम से निकाल दिया। अपने घर गया तो मां–बाप ने भी आचरण गलत समझकर घर से निकाल दिया। लड़का बहुत अच्छा था, परन्तु किसी ने भी उसकी बात सुनने की कोशिश नहीं की।

वह लड़का भूखा–प्यासा जंगल में जाकर पशुओं को मारकर खाने लगा, धीरे–धीरे जो भी व्यक्ति जंगल में जाता उसको लूटकर मार देता, और उसकी अंगुलि काटकर माला बनाकर गले में डाल लेता। इस प्रकार उसने 999 आदमी मार कर 999 अंगुलियों का हार गले में डाल लिया और सोचता कि एक आदमी और मारने से एक हजार की माला बन जायेगी। नगर के सभी लोग दुःखी हो गये और उन्होंने राजा निषाद से उसकी शिकायत की।

राजा निषाद ने सोचा कि मैं स्वयं सेना लेकर जाऊंगा, चारों तरफ से घेर कर उसे मार दूँगा। इतने में एक दिन ऐसी घटना घटी कि महात्मा बुद्ध उसी रास्ते से जा रहे थे, लोगों ने उन्हें जाने से मना किया और अंगुलिमाल की सारी बात बताई। महात्मा बुद्ध ने कहा, अगर ऐसी ही बात है तो मैं उसके पास अवश्य जाऊँगा। महात्मा बुद्ध वहाँ गए, अंगुलिमाल ने उन्हें देखकर शेर की तरह दहाड़ते हुए कहा, रुक जाओ। महात्मा बुद्ध चुपचाप चले जा रहे थे बिल्कुल भी डरे नहीं। अंगुलिमाल हैरान था कि यह कैसा इंसान है जो घबराया नहीं। उसने महात्मा बुद्ध से कहा कि आप वहाँ से चले जाओ नहीं तो मैं आपको मार दूँगा। महात्मा बुद्ध ने कहा, पहले तुम एक काम करो

फिर मैं चला जाऊँगा। वह बोला बताओ क्या काम है, "उन्होंने कहा कि सामने के पेड़ से एक पत्ता तोड़ कर लाओ, वह ले आया। महात्मा बुद्ध बोले अब इस पत्ते को उसके साथ जोड़ दो, वह बोला यह कैसे हो सकता है, महात्मा बुद्ध बोले कि अगर तुम तोड़े को जोड़ नहीं सकते, तो तुम्हें तोड़ने का भी क्या अधिकार है।" इस बात से उसकी आंख खुल गई और वह महात्मा बुद्ध के चरणों में गिर पड़ा। वह उसे अपने आश्रम में ले आये, वहाँ आश्रम का काम बहुत अच्छी तरह करने लगा, पूजा पाठ करते-करते वह साधु बन गया। महात्मा बुद्ध ने उसका नाम अहिंसक रखा।

एक दिन राजा निषाद सेना सहित अंगुलिमाल को मारने के लिए जा रहे थे और रास्ते में महात्मा बुद्ध का आश्रम आ गया। राजा उनको मिलने के लिए गया और अंगुलिमाल को मारने की बात सुनाई। महात्मा बुद्ध ने कहा कि यदि अंगुलिमाल अब पूर्णतः अहिंसक बन गया हो तो आप क्या करोगे? तब राजा ने कहा कि मैं उसके चरण पकड़ लूँगा, तब महात्मा बुद्ध ने इशारा किया और कहा सामने देखो। जो महात्मा पौधों को पानी दे रहा है वह अंगुलिमाल है। महात्मा बुद्ध ने अहिंसक को बुलाया और राजा से मिलाया, राजा बहुत प्रसन्न हुआ।

स्वामी जी ने घटना सुनाते हुए कहा कि पिछले प्रारब्ध के कारण मनुष्य को दुःख-सुख भोगने पड़ते हैं। सन्तों -ऋषियों का सान्निध्य मनुष्य को दानव से मानव बना देता है।

कभी-कभी प्रारब्ध का भोग भोगने के लिए मनुष्य को गलत वातावरण मिल जाता है, किन्तु समय आने पर ठीक वातावरण मिलने से एक अच्छा इन्सान बन जाता है।

***

63. स्वामी जी का आशीर्वादः दूध की कभी कमी नहीं: जब

श्री स्वामी जी हमारे मूसा गांव जिला मानसा (पंजाब) के पास कुटिया में आते थे तो मैं **हरदेव सिंह उर्फ मिट्ठू सिंह, गाँव मूसा, जिला मानसा, पंजाब**, हर रोज़ सुबह स्वामी जी के लिए गाय का दूध ले जाता था। स्वामी जी हर रोज़ दूध लाने के लिए मुझे मना करते थे कि हमने दूध पीकर क्या करना है, आप बच्चों को पिलाया करो, क्योंकि उन्होंने तो पढ़ना–लिखना और काम करना होता है। परन्तु मैं स्वामी जी के न चाहने पर भी दूध हमेशा ले जाता ही रहा। जब भी मैं स्वामी जी के पास जाता तो हमेशा वह पद्मासन पर बैठे दिखाई दिये। जब मेरा गाय का दूध ले जाना नहीं रुका तो मेरी श्रद्धा को देखकर आखिर में स्वामी जी ने अपनी मौज में ही एक दिन यह वचन किया कि मिठ्ठू सिंह आपने हमें गऊ का दूध बहुत दिनों तक खूब पिलाया है, तो इसलिए आपके घर में भी कभी गऊ के दूध की कमी नहीं रहेगी। उसका परिणाम है कि उस दिन से मेरे घर में कभी गाय के दूध की आज तक कमी नहीं रही, ऐसी उनकी कृपा रही। हम अपनी मर्जी से तो बेशक गाय के सूने से पाँच या दस दिन पहले गाय का दूध दोहना छोड़ दें।

एक और स्वामी जी ने मेरे परिवार पर कृपा करके एक दिन मुझे यह कह दिया कि मिठ्ठू सिंह आपने कभी भी शराब वगैरह का सेवन नहीं करना। स्वामी जी ने जब से यह वचन मुझे कहे हैं तब से मैंने शराब, मीट व अण्डा किसी का सेवन नहीं किया। तब से हमारा सारा परिवार शान्ति व अमन से उनकी कृपा से रह रहा है। कई बार स्वामी जी कृपा करके दास के घर भिक्षा लेने के लिए भी आ जाया करते थे। ऐसे विरक्त संत आज तक हमने नहीं देखे जिसके हमने दर्शन किये हों।

***

64. कुटिसर गुरुद्वारा : अगस्त 1979 की बात है कुटिया से

स्वामी जी बिना बताए अपना आसन उठाकर सुबह 6 बजे चले गये, फिर उसके बाद स्वामी जी कभी भी कुटिया में नहीं आये। जब स्वामी जी कुटिया से निकले थे तब उस समय बहुत लोग वहाँ भण्डारे के लिए बैठे भी हुए थे परन्तु किसी को भी उनके जाने का पता नहीं लगा, ऐसा उनका चमत्कार था। उसका केवल एक ही कारण था कि कुछ गाँव के लोग अपनी मर्जी से टीले के ऊपर जहाँ पर स्वामी जी की कुटिया थी वहाँ पर वर्षा होने के लिए चावलों का भण्डारा करने जा रहे थे, जो स्वामी जी नहीं चाहते थे। भण्डारे में बहुत हल्ला-गुल्ला होता है और गाँव की सभी औरतें वगैरह भी वहाँ आ जायेंगी। वह चाहते थे कि यदि आपने भण्डारा वगैरह करना ही है तो गाँव में ही करें परन्तु गांव के कुछ लोग नहीं माने। इसलिए उन्होंने वहाँ लोगों को कहा नारायण! आप भण्डारा वगैरह करो और हम तो चले। और आखिर यह कहकर स्वामी जी अगस्त 1979 को चले ही गये और जाते समय यह कह गए कि आपके इस टिल्ले पर बहुत लोग इकट्ठे हुआ करेंगे तथा खूब भण्डारे भी होंगे लेकिन आगे से कोई भी फक्कड़ महात्मा वहाँ नहीं आयेगा। और वैसा ही हुआ कि स्वामी जी के कुटिया छोड़ने के बाद कभी भी वहाँ संन्यासी महात्मा आकर नहीं टिका। अब वहाँ पर खूब मेले व भण्डारे होते रहते हैं, जिसे गांव वाले स्वामी जी का ही आशीर्वाद मानते हैं। अब वहाँ पर गांव वालों ने गुरुद्वारा बना दिया है जिसका नाम कुटिसर गुरुद्वारा रखा है।

मूसा गाँव की कुटिया छोड़ने के बाद स्वामी जी चार-पांच दिन मानसा के पास नग्गल व दलेल सिंह वाला गाँवों में विचरे और उसके बाद दिल्ली की तरफ चले गये। स्वामी जी को मनाने के लिए गाँव वाले लोग इन गाँवों में गये और उनसे क्षमा माँग कर प्रार्थना करने लगे कि स्वामी जी आप वापिस हमारे ही गाँव चलो, परन्तु

स्वामी जी ने वापिस आने से मना कर दिया और कहने लगे कि जब एक बार हम अपना आसन उठा लेते हैं तो फिर दोबारा वहाँ पर आसन नहीं लगाते। सचमुच स्वामी जी के प्रति मूसा के सभी लोगों की पूरी श्रद्धा थी और स्वामी जी को हम भगवान् ही मानते थे और मानते भी रहेंगे चाहे वह हमारे पास हैं या नहीं।

***

65. पं. संतराम, गाँव धलवाड़ी जिला, ऊना (हि०प्र०) का मार्ग दर्शन : स्वामी जी का 1981–82 में गाँव धलवाड़ी आना भी एक बड़ी ही विचित्र घटना है। स्वामी जी पैदल भ्रमण करते–करते माँ चिन्तपुर्णी के पास धलवाड़ी गांव (हि०प्र०) में पहुँच गये। वहाँ पहुँचकर स्वामी जी ने मेरे (पं० सन्तराम के), बड़े भाई पं० श्री हंस राज जो अपनी करियाणा की दुकान पर बैठे हुए थे, उनसे पूछा कि नारायण! हमने भोजन करना है, कहीं कोई पास में पानी वगैरह है। तो मेरे बड़े भाई ने स्वामी जी को बोला यदि आपको पानी ही चाहिए तो हम आपजी को दे देते हैं। स्वामी जी बोले नारायण! हमें तो आप कोई ऐसी खुली जगह बताओ जहाँ खुला पानी हो। भाई साहिब बोले स्वामी जी है तो ज़रूर, पर कुछ दूरी पर बड़ी गहरी खड्ड में है, थोड़ा जाना मुश्किल पड़ेगा। वहीं पर पानी की बावड़ी (चश्मा) है साथ में मन्दिर व कुटिया भी है, वहीं पर आपको खूब पानी मिल जायेगा। पं० हंसराज जी से रास्ता पूछकर स्वामी जी खड्ड के नीचे उतर गये और बावड़ी के पास पहुँच गए। बावड़ी के पास पहुँचकर देखा कि उसके साथ एक टूटा–फूटा कमरा भी है जो कि पेड़ों के पत्तों तथा झाड़–फूस वगैरह से भरा पड़ा था। स्वामी जी ने अपना आसन बावड़ी के पास रख दिया और पहले टूटे–फूटे कमरे को तथा पानी की बावड़ी के पास की जगह को अच्छी तरह साफ किया और फिर

शरीर को अच्छी तरह से साफ करके, कमरे के अन्दर नीचे आसन लगाकर भिक्षा ग्रहण की। मेरे बड़े भाई हर रोज़ बावड़ी के पास शिवालय में धूप बत्ती करने जाया करते थे तो उन्होंने देखा कि जिस महात्मा ने मेरे से पानी मिलने की जगह पूछी थी वह तो यहीं विराजमान हैं। स्वामी जी का इस जगह पर दो–तीन दिन ही ठहरने का विचार था उसके बाद उन्होंने चौमासा बिताने के लिए कहीं और जाना था। परन्तु स्वामी जी ने खड्ड में शान्त, खूब एकान्त, और शुद्ध वातावरण देखकर चौमासा काटने का विचार वहीं का बना लिया। कोई भी गांव का प्राणी स्वामी जी के ध्यान में किसी भी किस्म का विघ्न डालने नहीं आता था। स्वामी जी का वहाँ पर इतना मन लगा कि स्वामी जी ने उसी जगह पर दस महीने बिताए। स्वामी जी के बारे में किसी भी गांव वालों को किसी किस्म की भी जानकारी नहीं थी कि यह महात्मा कौन है और कहां से आया है ? लोग तो बस यही समझते थे कि कोई महात्मा वहाँ रह रहा है और वह किसी से भी कोई बोल–चाल नहीं रखता हमेशा कुटिया के अन्दर ही बैठा रहता है, कुटिया से बाहर भी कम ही आता है। स्वामी जी के दर्शन करने के लिए भी कोई नहीं जाता था। स्वामी जी दिन में एक बार नजदीक में किसी गाँव से भिक्षा लेने के लिए बहुत दूर–दूर तक पहाड़ियों को पार करके जाया करते थे। बाकी समय अपने ध्यान–भजन व समाधि में ही पद्मासन पर कमरे में बैठे रहते थे।

चौमासा बीतने पर मैंने अपने खेत से मक्की काट ली थी और खेत में आगे कुछ बोने के लिए उसमें हल चला रहा था। मेरा खेत उस बावड़ी और कुटिया के साथ ही लगता था जहाँ स्वामी जी विराजमान थे। मैंने एक दिन स्वामी जी को खेत में बिखरे हुए मक्की के पत्तों को उठाते हुए देखा। मैंने हिम्मत करके स्वामी जी से पूछ ही
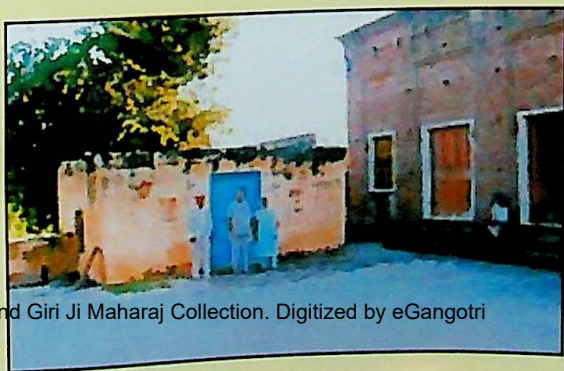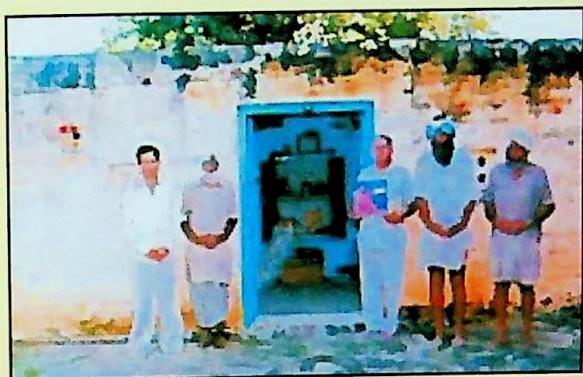
मूसा गांव, जिला मानसा (पंजाब)
में स्थित टिल्ले पर बनी
स्वामी जी की विरक्त कुटिया के
अन्दर और बाहर के दृश्य

लिया कि स्वामी जी इन पत्तों का आप क्या करेंगे ? स्वामी जी कहने लगे नारायण! सर्दी आ गई है इनको हम अपने नीचे बिछायेंगे। मेरे मन में आया कि स्वामी जी को ठण्ड लग रही होगी तो मैंने घर जाकर घर में बनाई हुई दो मीटर लम्बी और 1.25 मीटर चौड़ी पराली को स्वामी जी को नीचे रखने के लिए कुटिया में जाकर दे दी जो स्वामी जी ने सहर्ष स्वीकार कर ली। कोई ज्यादा स्वामी जी ने बातचीत नहीं की, केवल नाम वगैरह ही पूछा और कहा कि नारायण! ठीक हो, कुछ भजन पाठ भी करते हो। बस! उस दिन से ही स्वामी जी के पास मेरा धीरे–धीरे आना–जाना शुरू हो गया और मेरे ऊपर स्वामी जी की कृपा होनी शुरू हो गयी। धीरे–धीरे और गाँव के लोग भी स्वामी जी को उनका रहने–सहने के ढंग देखकर दूर से प्रणाम करने लग गये। स्वामी जी हमारे धलवाड़ी गाँव में एक–दो साल के बाद दर्शन देने के लिए अवश्य आते थे। जब भी स्वामी जी का कुटिया में आगमन का गाँव वालों को पता चलता था तो उनकी खुशी का कोई ठिकाना ही नहीं रहता था जैसे उनके लिए तो उनके भगवान् ही आ गये हैं, ऐसी गांव वालों की स्वामी जी के प्रति आस्था बन गई थी।

सारा गाँव स्वामी जी को भगवान् के रूप में देखने लगा। मेरे ऊपर तो स्वामी जी की अपार कृपा थी।

एक बार मैं स्वामी जी के दर्शन करने के लिए कुटिया में गया तो स्वामी जी ने वचन किये कि पं० संतराम मैंने आपके अन्दर को खूब टटोल लिया है, तेरे दिल में जो बात होती है वह तू अपने अन्दर नहीं रख सकता, बाहर फैंक देता है। जब भी मैं स्वामी जी के दर्शन करने के लिए घर पर जाने को तैयार होता, तभी स्वामी जी को पता लग जाता था कि संत राम पंडित दर्शन करने के लिए आ रहा है। यह मैंने स्वयं अनुभव किया है। रास्ते में यदि कोई भी स्वामी जी के पास न

जाने के लिए रोकता था तो मुझे स्वामी जी कुटिया में जाते ही बता देते थे कि तुम्हें फलाँ आदमी रोक रहा था परन्तु तू इतना पक्का है कि रुका नहीं। तेरा सच्चा प्यार हमारे साथ है, इस प्यार के वास्ते तेरे को हम कुटिया में बार–बार आने के लिए नहीं रोकते। एक बार स्वामी जी ने मुझे यह भी कहा था कि संत राम अपने घर की जमीन पर जो कुछ भी आप बोएगें या लगाएंगे वह फल भी ज़रूर देगा और तुम्हारा यश भी होगा।

मेरी आयु अब 93 वर्ष की हो गई है परन्तु इस कलिकाल में तो पूज्य स्वामी जी जैसे पूर्ण विरक्त, तपस्वी योगी व ज्ञानी संन्यासी महात्मा के कहीं पर भी मेरे को तो दर्शन करने को नहीं मिले। मेरा रोम–रोम स्वामी जी का ऋणी है जिन्होंने मुझ जैसे अनपढ़ ब्राह्मण को जीवन में चलने का रास्ता बताया। मेरा स्वामी जी के श्री चरणों में कोटि–कोटि नमन।

***

66. भक्त ज्ञान चन्द गर्ग : एक कीड़े से भी सीख: 81–82 वर्ष की आयु के बाद स्वामी जी पैदल भ्रमण करने में असमर्थ हो गये थे। जब भी स्वामी जी की कहीं किसी अन्य स्थान पर विचरने की इच्छा होती थी तो उस स्थान के भक्तजन स्वामी जी को उनकी सेहत देखकर आग्रह करते थे कि स्वामी जी यदि आपने कहीं विचरने जाना है तो हम गाड़ी वगैरह का इन्तजाम कर देते हैं, पैदल नहीं जाना। बहुत आग्रह करने पर स्वामी जी मान जाते थे और जिन भक्तजनों के पास गाड़ी होती थी, प्रेमपूर्वक स्वामी जी को वह भक्तजन उस स्थान पर छोड़ आते थे, जहाँ पर भी उन्होंने कुछ दिन के विचरण के लिए जाना होता था। स्वामी जी अपने जीवन के आखिरी दिनों में केवल, गाँव कराला की उज्जड़ कुटि (दिल्ली–81),

राय साहिब की बगीची अम्बाला शहर, लाला सेवा राम का बाग जगाधरी व नम्बरदार की बगीची यमुनानगर (हरियाणा) व माँ चिन्तपूर्णी के पास धलवाड़ी गाँव (हि०प्र०) में ही समय–समय पर विचरण करते रहे। मुझे (ज्ञान चन्द गर्ग) सुरजीत नागपाल तथा अश्विनी कुमार को भी कई बार स्वामी जी के साथ गाड़ी पर इन स्थानों पर जाने का खूब सौभाग्य प्राप्त हुआ। रास्ते में गाड़ी में जाते समय जब कभी भी स्वामी जी प्रसन्नचित्त होते थे तो हमें साधना में प्रेरित करने के लिए अपने जीवन की घटनाओं से अवगत करवा देते थे।

ऐसे ही स्वामी जी ने हमें बताया कि एक बार हम कश्मीर में पैदल भ्रमण कर रहे थे तो अचानक मौसम खराब हो गया। बर्फ पड़नी शुरू हो गई। इतनी बर्फ पड़ी के सभी रास्ते बंद हो गये। रास्ते में एक टूटा–फूटा कमरा पड़ा था, हम उसमें चले गये और वहीं आसन लगा लिया। उस समय वहाँ इतनी ठंड पड़ने लगी कि ऐसा लग रहा था कि अब यह जीवन पता नहीं रहेगा या नहीं रहेगा। इतने में हमने उस कमरे में एक बहुत ही छोटे कीड़े को चलते हुए देखा। बस! फिर क्या था, मैंने सोचा कि यदि यह कीड़ा ऐसी हालतों में जी सकता है तो मैं क्यों नहीं? ऐसा सोचकर स्वामी जी ने हमें बताया कि उन्होंने भी अपने शरीर को इस प्रकार हरकत में रखा कि जितनी गर्मी शरीर को जीने के लिए चाहिए थी वह मिल जाए। इस तरीके से हमने कुछ दिन वहाँ पर काटे जब मौसम कुछ ठीक हो गया तो वहाँ से हम चल पड़े।

67. क्षान्ति का उदाहरण : यह घटना हिमाचल प्रदेश सोलन के पास की है जो स्वामी जी ने कृपा करके अपने भक्तों को इस प्रकार सुनाई: हम अपनी मौज में कभी अपने पावों की धड़कन की आवाज़ सुनते हुए कभी मन्द–मन्द वायु की मीठी–मीठी ध्वनि और पक्षियों की मधुर–मधुर चहचहाट सुनते हुए सोलन के पास सड़क

पर विचरण करते जा रहे थे कि पीछे से चार पाँच लड़के बहुत अनाप–शनाप बोलते हुए हमारे पीछे लग गए। कोई बोले ठग है ठग, कोई बोले इतनी देह वाला है कमा के नहीं खा सकता। ऐसे ही कुछ दूर तक बोलते रहे। परन्तु हम अपने आराम से चलते रहे और उनकी तरफ हमने ध्यान ही नहीं दिया कि क्या बोल रहे हैं। कुछ दूर जाने के बाद वह आपस में बातें करने लगे कि बाबा बोला है इसलिए जवाब नहीं दे रहा। दूसरा लड़का हमारे आगे आकर हमें पूछता है कि बाबा तू बोला हैं। तो हमने कहा कि नारायण! हम बोले तो नहीं हैं। हमने आपको इतनी गाली–गलौज की है तो आपने इसका उत्तर क्यों नहीं दिया। स्वामी जी बोले कि नारायण! जवाब क्या देते ? जवाब तो हम आपको तब देते यदि आपने जवाब देने वाली कोई बात हमसे पूछी होती। बस! आप बोले जा रहे थे जो आप बोल रहे थे वह एक कान में पड़ रहा था और दूसरे कान से निकल रहा था। परन्तु हमने तो उस पर कुछ ध्यान ही नहीं दिया। फिर वह सभी आपस में बातें करने लगे कि बाबा हमें कोई शाप वैगरह न दे दे, डरने लगे। डरते–डरते सभी पाँवों में पड़ गये कहने लगे स्वामी जी क्षमा करना हमसे भूल हो गई है। स्वामी जी बोले नारायण! क्षमा किस बात की, क्षमा की कोई बात ही नहीं है। आपने कहीं मेरे को कोई पत्थर मारा है या आपने हमारे जाने का कोई रास्ता रोका है, आप आराम से रहो, हम तो रमते राम हैं, राह चलते–चलते कई बार हमारे साथ इससे भी ज्यादा उग्र घटनाएं घट जाती हैं, आपने तो हमें कुछ भी नहीं कहा। देखो! भगवान् की कैसी सहनशीलता और कैसा उनका उपेक्षा का भाव है जो भगवानों में ही देखने में मिलता है। उसके पश्चात् वह हाथ जोड़कर स्वामी जी को कहने लगे कि गुरु जी! आज आप वहां हमारे गाँव में ही रुको। गाँव में मन्दिर है वहां हम आपकी चाय, पानी

दूध व रोटी की भी सेवा करेंगे। देखो वह पहले क्या–क्या कह रहे थे बाद में कितने विनम्र हो गये कि बाद में खूब सेवा करने के लिए भी तैयार हो गये। यह तो सब भगवान् की ही लीला है जो वह खुद ही जानता है। बस! हम आगे ही चल पड़े रुके नहीं।

68. किसी स्थान से लगाव नहीं : श्रद्धेय स्वामी जी सर्दी के दिनों में राय साहिब की बगीची अम्बाला शहर में रुके हुए थे तो आधी रात को कुछ लोग जिन्होंने शराब पी रखी थी कुटिया के दरवाजे को जोर से खटखटाने लगे। अन्दर से स्वामी जी बोले नारायण! कौन हैं आप? वह बोले, दरवाजा खोलो हमने भी अन्दर आना है। स्वामी जी ने दरवाजा खोल दिया और वह भी अन्दर आ गये। अन्दर आकर बोले बाबा हमें भी बहुत सर्दी लग रही है हम भी आपके साथ ही रहेंगे। स्वामी जी बोले नारायण! हम तो एकांत वासी और रमते राम हैं, हम किसी के साथ नहीं ठहरते। यदि आपने यहाँ पर ठहरना है तो ठहरिए मैं तो सामने, लालों की समाधिएं बनी हुई हैं वहाँ पर जाकर रुक जाऊँगा। कुछ घण्टों की तो बात है सुबह हो जाएगी तब हम वहाँ से चले जायेंगे। जब स्वामी जी इतना कहकर आसन से उठने लगे तो उनमें से एक बोला अरे क्या कर रहे हो, बाबा को ही वहाँ ही पड़े रहने दो आओ हम वहाँ से चलें। इतना कहकर पता नहीं उनके मन में क्या आया वे सभी वहाँ से चले गये और हम अपने आसन पर आराम से बैठे रहे। ऐसे होते हैं विरक्त तपस्वी, वैरागी महात्मा जो दूसरों के लिए अपना सुख त्याग करने को तैयार हो जाते हैं।

69. तपस्वी स्वरूप : चौथी घटना स्वामी जी ने हमें खुद कृपा करके अम्बाला शहर की कुटिया में सर्दियों में सुनाई थी और इसी घटना का जिक्र धलवाड़ी गाँव में स्वामी जी के भक्त श्री प्रकाश चन्द

नहीं करनी। इतना सुनते ही वह सब लोग वहाँ से चले गये, उनमें से एक आदमी चावल, दाल, नमक व हल्दी लेकर कुछ समय बाद ही आ गया और विनम्रता पूर्वक देकर चला गया। स्वामी जी ने डिब्बे में कच्चे चावल उसमें नमक, हल्दी व पानी डालकर धूने पर बनाकर ग्रहण किये। इतने में उस आदमी ने पास में पहाड़ के सब गांवों में फैला दिया कि एक बाबा फक्कड़ हैं, जो मन्दिर परिसर में बरामदे में टिका हुआ है ओढ़ने के लिए भी उनके पास बहुत कम वस्त्र हैं, एक समय भिक्षा करते हैं सिर्फ कच्चे चावल, दाल, नमक व हल्दी ही लेते हैं और कुछ नहीं लेते। इतने से ही वहाँ के गांवों में हल्ला पड़ गया। हर रोज़ कई लोग यही सब चीजें लेकर आने लग गये। स्वामी जी ने अपने तरीके से उनको रोका। इस दौरान ही उस समय के राजा की धर्म–पत्नी को भी किसी ने बता दिया कि कोई बाबा आपके मन्दिर के बरामदे में विचर रहा है। खाता–पीता कुछ नहीं और अपने ध्यान भजन में मस्त रहता है। जिस मन्दिर में स्वामी जी विचरण कर रहे थे वह मन्दिर उस समय के राजा का था जो अभी गद्दी पर ही बैठा हुआ था। वह मन्दिर राजा के महल के पीछे थोड़ी ही दूर ऊँची पहाड़ी पर स्थित था। एक दिन रानी ने नौकर के हाथ सुबह लस्सी का गड़वा और साथ में मक्खन देकर भेज दिया और वह आकर कहने लगा कि बाबा जी, हमारी रानी साहिबां ने आपके लिए यह लस्सी व मक्खन भेजा है आपजी ग्रहण करें। स्वामी जी बोले नारायण! इसकी तो हमें ज़रुरत नहीं है न ही हम लस्सी वगैरह ज्यादा पीते हैं। वह हाथ जोड़कर प्रार्थना करने लगा स्वामी जी आप इसे ज़रूर लें यदि आपने नहीं ली तो मैं क्या जवाब दूँगा, रानी साहिबां हमें दण्ड देगी कि पिलाकर क्यों नहीं आया। स्वामी जी नौकर की भावना को देखकर उससे लस्सी व मक्खन जितना चाहिए था ले लिया और

मूसा गांव, जिला मानसा (पंजाब) में स्थित टिल्ले पर बनी स्वामी जी की विरक्त कुटिया के अन्दर और बाहर के दृश्य
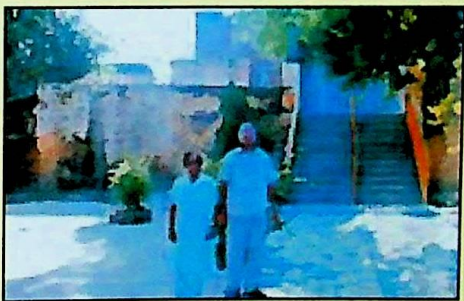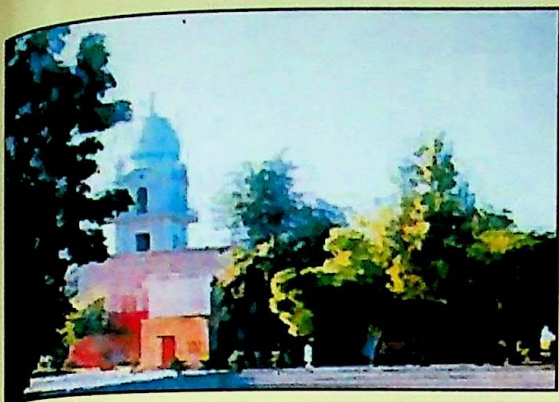
ग्रहण भी कर लिया। बाकी उसको यह कहकर भेज दिया के आगे मत लाना। परन्तु वह रानी नहीं मानी भेजती ही रही और साथ में रानी ने राजा को भी बता दिया कि कोई फक्कड़ महात्मा हमारे मन्दिर में टिका है, एक ही समय भिक्षा करता है और बाकी अपनी मौज में, ध्यान–भजन में रहता है। एक दो दिन तो राजा भी वहाँ आता रहा और देखकर चला जाता। एक दिन वह अपने आप ही स्वामी जी के पास आ गया और नमस्कार करके बैठ गया। फिर हर रोज़ आने लगा। घंटों बैठा रहता, इंगलिश व हिंदी में बातें करता रहता और साथ में अपने साथ दो सिगार भी लाता, उसमें सोने की भस्म का सुलफा डालकर आग से सुलगा कर एक स्वामी जी को देता और एक आप रखता। कभी–कभी कस्तूरी की चिलम भी बना कर लाता। स्वामी जी ने बताया कि वे कुछ समय नागा महात्मा के साथ भी रहे थे, तो उनके साथ रहने के कारण सुल्फा वगैरह का भी इस्तेमाल कर लेते थे, नहीं तो उनके साथ कोई रह नहीं सकता था। राजा के साथ धर्म की चर्चा बहुत होती रही जिससे धर्म के प्रति राजा की बहुत दिलचस्पी बढ़ गई और उसने अपने राजपाठ का ध्यान करना भी छोड़ रखा था तो स्वामी जी ने ज्यादा वहाँ रहना ठीक न समझा और आखिरकार कुछ मौसम ठीक होने पर वे किसी को बताए बिना ही वहाँ से निकल आये।

***

70. श्री सुरजीत नागपाल, अम्बाला शहर : दिवंगत संन्यासी महात्माओं की चार प्रकार की समाधियाँ : दिनांक 15 नवम्बर 2004 को कार्तिक पूर्णिमा वाले दिन श्री स्वामी गीतानन्द 'भिक्षु' जी महाराज इस पांच तत्व वाले शरीर को छोड़कर ब्रह्मलीन हो गए। इसकी

सूचना श्री गीता कुटीर तपोवन आश्रम हरिद्वार से दूरभाष पर प्रेम

मन्दिर अम्बाला शहर में प्राप्त हुई तो श्री 1008 श्री शील जी महाराज का शरीर अस्वस्थ होने के कारण सुश्री सहजोबाई, सुश्री साधना जी, नीलम देवी जी तथा यह शरीर (सुरजीत नागपाल) महाराज श्री की आज्ञा के अनुसार श्री गीता कुटीर हरिद्वार में अन्तिम दर्शनार्थ एवं श्रद्धाजंलि देने के लिये गये। उस समय उन के पार्थिव शरीर को श्रद्धालुओं व जनता के दर्शनों के लिये गीता कुटीर के हाल कमरे में रखा हुआ था। श्रद्धा सुमन भेंट करने के पश्चात् विधिवत मन्त्रों के उच्चारण द्वारा श्री गीता कुटीर में स्वामी गीता नन्द 'भिक्षुः' जी महाराज को भू–समाधि दे दी गई।

हरिद्वार से हम श्री अनन्त प्रेम मन्दिर अम्बाला शहर में शाम को पहुंच गए और प्रतिदिन की भान्ति उसी शाम को मैं श्री स्वामी दयानन्द 'गिरि' जी महाराज के श्री चरणों में दर्शनार्थ पहुँच गया तथा प्रणाम करके श्रीचरणों में बैठ गया। श्री स्वामी जी ने पूछा स्वामी गीता नन्द जी, जो स्वामी जी महाराज के पहले से ही परिचित थे को जल–समाधि दी गई है या भू–समाधि। श्री चरणों में दोनों हाथ जोड़कर विन्रम भाव से कहा कि श्री गीता नन्द महाराज जी को भू–समाधि दी गई है।

कार्तिक महीने के दिनांक 17 नवम्बर 2004 दिन मंगलवार को जब श्री चरणों का तुच्छ सेवक (सुरजीत नागपाल) शाम को प्रसाद के रूप में चाय लेकर गया तो चाय ग्रहण करने के पश्चात् श्री स्वामी जी कहने लगे कि यह शरीर अब शिथिल हो गया है इसलिये हमने धर्मराज को कह दिया है कि "जहाँपनाह हम तैयार बैठे हैं और अपनी जांघों पर थपथपा कर बड़े प्रसन्नचित से कहा आप जब ले जाना चाहें हम चलने के लिए तैयार हैं।" उस समय श्री चरणों में मेरे

अलावा श्री गुजराती महात्मा जी तथा अश्विनी कुमार कक्कड़ जी भी बैठे हुए थे। इसके पश्चात् स्वामी जी ने हम से पूछा कि नारायण! आपको पता है कि महात्माओं का शरीर शान्त होने के पश्चात् सबसे उत्तम समाधि कौन सी होती है? हमने बड़े विनम्र भाव से दोनों हाथ जोड़कर प्रार्थना की कि भगवन्! आप स्वयं ही इस पर प्रकाश डालने की कृपा करें। श्री स्वामी जी ने बताया कि संतों की चार प्रकार की समाधियाँ होती हैं। पहली जल–समाधि, दूसरी भू–समाधि, तीसरी चलते–फिरते महात्माओं के लिये और चौथी पहाड़ों में विचरते साधुओं को समाधि देना।

श्री स्वामी जी ने अपने मुखारविन्द से अपने आप बताया कि सबसे उत्तम तो विरक्त महात्माओं के लिए जल–समाधि होती है जिसका कारण है कि मनुष्य का शरीर भी जल में रहने वाले जीव–जन्तुओं के काम आ जाता है।

दूसरी भू–समाधि होती है जिसमें कि महात्माओं के अपने स्थान में जमीन से नीचे छः फुट नीचे गहरा गड्ढ़ा खोदा जाता है, वहाँ पर लैवल करके फर्श लगा दिया जाता है उसके ऊपर महात्मा का शरीर पद्मासन लगाकर अपनी श्रद्धा के अनुसार पालकी में बैठाकर रख दिया जाता है। फिर उस गड्ढ़े को नमक व चिकनी मिट्टी से भर दिया जाता है। उसके ऊपर जमीन पर तीन फुट ऊँचा चबूतरा बना दिया जाता है जिसके ऊपर महात्मा की ऊँची मूर्ति बनवाकर स्थापित कर दी जाती है।

जो साधु, महात्मा चलते–चलते किसी भी स्थान पर अपना शरीर छोड़ देते हैं तो उनके शरीर को किसी भी खेत, जमीन पर आस पास से लकड़ियाँ इकट्ठी करके अग्नि में जला देते हैं। जो साधु, सन्यासी पहाड़ों में घूमते हैं यदि उनका शरीर वहाँ पर शान्त हो

जाए तो उनके शरीर को पहाड़ों की गुफाओं में बन्द करके उसमें नमक, मिट्टी व पत्थर आदि भर दिया जाता है।

क्योंकि समय काफी अधिक हो गया था तो श्री स्वामी जी ने कहा कि अब आप अपने घरों को जाओ। आज्ञा का पालन करते हुए यह शरीर (सुरजीत नागपाल) तथा अश्विनी कुमार कक्कड़ दोनों श्री चरणों में नमस्कार करके चल पड़े। श्री स्वामी जी हमारे साथ कुटिया की सीढ़ियों तक हमें छोड़ने आए और अपने जीवन को साधना के आधार पर उच्च बनाने की शिक्षा देते रहे कि जीवन में जो भी कार्य करो उसमें **"एक काम एक ध्यान"** के सूत्र को रखकर स्मृतिपूर्वक चलेंगे तो आप से गलतियां कम होंगी। इसके अतिरिक्त साधना करने के लिये दूसरा सूत्र **"एकान्तवासा, न झगड़ा न झांसा"** जब भी समय मिले तो अकेले बैठने का अभ्यास करने का प्रयत्न करना तथा सब के सुख में सुखी रहने, दूसरे के दुःख में दयावान होकर उसमें गुणों को पहचानना व वाह वाह करना और अवगुण किसी भी दूसरे के नहीं देखने तथा राग–द्वेष आदि बन्धनों से टलने का अभ्यास करने से तो तुम्हारा जीवन सफल हो जाएगा। यह शिक्षा देने के पश्चात् श्री स्वामी जी ने कहा, "घर जाओ देरी हो रही है, कल बुधवार को प्रेम मन्दिर की देवियों की चाय की बारी है उन्हें कहना कि आराम से आएं जल्दी करने की आवश्यकता नहीं है।" इतने पर हम दोनों ने श्री चरणों में प्रणाम किया और अपने घरों को चले गये।

***

यह लेख एक उच्च कोटि के साधक, स्वामी वासुदेवानन्द सरस्वती द्वारा लिखित है और यह स्वामी जी के ज्ञान और उनकी साधनापरक शिक्षाओं पर प्रकाश डालता है।

ॐ

महाराज श्री का कृपा प्रसाद

71. साधना ही साधक का गुरु : आज से लगभग 10 वर्ष पूर्व मुझे, स्वामी वासुदेवा नन्द सरस्वती को, पूज्य श्री महाराज जी के आध्यात्मिक प्रवचन संग्रह पुस्तक के दो भाग पढ़ने को प्राप्त हुए। उन पुस्तकों को पढ़कर मेरे मन में महाराज श्री के दर्शन करने की तीव्र उत्कण्ठा उत्पन्न हुई। सन् 2002 के दिसम्बर महीने में मुझे महाराज श्री के कृपा पात्र श्रीमान् ज्ञान चन्द जी गर्ग की मार्फत अम्बाला शहर की कुटिया (एस० ए० जैन कॉलेज के पास) में महाराज श्री के दर्शन करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। महाराज श्री के दर्शन मात्र से मुझे बड़ा आनन्द हुआ, और साथ–साथ मुझे बोध भी हुआ कि एक ज्ञान–निष्ठ और विरक्त सन्त की जीवन शैली कैसी होती है ? आध्यात्मिक प्रवचन संग्रह पुस्तकों में जैसे मैंने पढ़ा था उसी प्रकार की वास्तविकता मुझे महाराज श्री के जीवन में देखने को मिली। उसके बाद मुझे जब–जब भी स्वामी जी महाराज के दर्शन करने का सुअवसर प्राप्त हुआ मैं महाराज श्री से सदुपदेश प्राप्त करता रहा जो मेरे जीवन का महत्वपूर्ण अंश बना।

महाराज जी का एक प्रमुख उपदेश यह भी था कि '**अल्पेच्छुबनो**' अर्थात् कम इच्छा वाले बनो। जीवन में बाहर की वस्तुओं की इच्छा बहुत कम होनी चाहिए। लोगों से मिलने के बारे में महाराज श्री बहुत ही सावधान रहते थे तथा कहा भी करते थे कि लोगों से मिलने में सावधानी रखनी चाहिए, अर्थात् कम से कम मिलें क्योंकि ज्यादा मिलना–जुलना साधक के लिए ठीक नहीं हैं।

एक बार मेरे पूछने पर कि क्या यह देवी–देवता सब सत्य हैं। तब महाराज श्री ने कहा — "हाँ ! सब सत्य हैं। यह सब समष्टि अधिष्ठात्री चेतन रूपा हैं।" महाराज श्री जब भी प्रश्न का जवाब देते

थे या कोई भी अध्यात्मपरक बात करते थे तो अधिकार पूर्वक करते थे जिसे सुनकर यह अनुभव होता था कि महाराज श्री जो भी कहते थे या बोलते थे, वे अपने जीवन के अनुभवों के आधार पर ही कहते थे जिनका उन्होंने पहले ही साक्षात्कार कर रखा था। महाराज श्री के वार्तालाप में गम्भीरता होते हुए भी सहजता थी।

मीरांबाई को भगवान् का साक्षात् दर्शन हुआ। क्या यह संभव है? इस प्रकार प्रश्न पूछने पर महाराज श्री ने सहज भाव से कहा–"हाँ! यह सम्भव है। साधक का मन जब पूर्णरूप से राग–द्वेष से मुक्त हो जाता है, तब उसके जो भी संकल्प हों वह सत्य हो जाते हैं।" मैंने पुनः पूछा क्या भगवान् के साथ बात करना संभव है– महाराज श्री ने कहा–"बिल्कुल सम्भव है, परन्तु यह और विद्या है।"

महाराज श्री का कहना यह था कि साधक जब दृढ़ता के साथ साधना में लग जाता है, तब साधक को अपने अन्दर से परम सत्य का अनुभव होता है। परम सत्य के पूर्व अनेक अध्यात्म से सम्बन्ध रखने वाले रहस्यों का ज्ञान उसे अनुभव में आता है। इसके प्रभाव से साधक आगे–आगे उत्साह के साथ साधना में अग्रसर होता है। **साधना ही साधक का गुरु है।** जैसे धन से धन बढ़ता है, विद्या से विद्या बढ़ती है वैसे ही साधना से साधक आगे–आगे बढ़ता है। परन्तु आज का साधक–समुदाय ग्रन्थों के पठन–पाठन में तत्पर होने पर भी ग्रन्थों के द्वारा प्रतिपादित साधन मार्गों पर अपने को चलाने में प्रमाद कर बैठता है जिसका परिणाम साधक बहुत कुछ जानते हुए भी उस परमशान्ति से बहुत दूर रह जाता है। उसके जीवन में राग–द्वेष तथा तत् सम्बन्धी दुर्गुण आकर अशान्ति पैदा कर देते हैं।

साधना का मार्ग हमारे पूर्वज ऋषियों नें अन्वेषण किया है और उस पथ पर चलकर दिखाया है। कोई भी व्यक्ति हिम्मत करके उस

साधना के मार्ग पर चलकर मनुष्य जीवन की सर्वश्रेष्ठ उपलब्धि, आत्मशान्ति को प्राप्त कर सकता है। यह मार्ग किसी एक के द्वारा नहीं बनाया गया है। ऐसा स्वामी जी महाराज ने बताने की कृपा की।

महाराज श्री आत्म–प्रशंसा से बहुत दूर रहते थे। वे कभी अपने किसी अनुभव को, अपना अनुभव न कहकर, "किसी महात्मा ने" इस सर्वनाम के बहाने बात कह देते थे। यह बड़ा ही अलौकिक गुण महाराज श्री में विराजमान था। मैं जब भी महाराज श्री के पास दर्शन हेतु जाता था तब महाराज श्री पद्मासन पर ही बैठे मिलते थे। महाराज श्री जी के मुखमण्डल पर एक सहज प्रसन्नता झलकती थी। महाराज श्री कोई भी साधना सम्बन्धी बात पूछने पर बड़े ही साफ–साफ और शंका को दूर करने वाला जवाब देते थे। महाराज श्री के सान्निध्य मात्र से मन उल्लास से भर जाता था।

एक बार महाराज श्री तेजली गांव (युमना नगर) की कुटिया में विराज रहे थे। मैं थोड़ी ही दूरी पर भगवान् आश्रम जगाधरी में ठहरा हुआ था। एक दिन मैं महाराज श्री के दर्शन हेतु असमय ही चला गया। वह समय महाराज श्री के विश्राम का था। महाराज श्री ने कहा कि आप असमय पर कैसे आ गये ? मैं प्रणाम करते हुए लौटने लगा तो महाराज श्री ने कहा–'नारायण! बैठो, कोई बात नहीं।' मैं संकोच पूर्वक श्री चरणों में बैठ गया। महाराज श्री ने उस दिन खुद कृपा करके अपनी तरफ से साधनापरक बहुत बातें बताई जो जीवन में बहुत महत्त्व रखती हैं।

मैंने उस दिन अपनी शंका को दूर करने के लिए महाराज श्री से चमत्कारों के बारे में पूछा कि क्या यह चमत्कार सब सत्य हैं? तो उत्तर में महाराज श्री ने कहा–'हाँ नारायण! यह सब सत्य हैं।' पुनः महाराज श्री ने भगवान् बुद्ध के जीवन की एक घटना बताई। एक

बार भगवान् बुद्ध के शिष्यों को किसी दूसरे महात्मा के शिष्यों ने उल्हाना दिया कि तुम्हारे गुरु जी के पास कोई चमत्कार नहीं है। बार–बार कहने पर भगवान् बुद्ध ने कहा कि अमुक दिन, अमुक जगह पर अमुक पेड़ के नीचे मैं चमत्कार दिखाऊँगा। वह एक आम का पेड़ था। परीक्षा लेने वालों ने उस आम के पेड़ को जड़ सहित उखाड़ दिया। निश्चित समय पर भगवान् बुद्ध अपने शिष्यों के साथ तथा अन्य सभी लोग भी यथा समय वहाँ पहुँच गए। भगवान् बुद्ध ने देखा कि वहाँ आम का पेड़ तो है नहीं। उन्होंने अपने शिष्य से एक आम की गुठली मंगवाई तथा उसे जमीन में गाड़ दिया। जैसे ही भगवान् बुद्ध ने हाथ से इशारा किया तो आम की गुठली से अंकुर फूटा और देखते–देखते ही विशाल आम का वृक्ष बन गया। सभी ने देखा, पेड़ के नीचे एक सोने का सिंहासन रखा हुआ है। सिंहासन के ऊपर बुद्ध बैठ गये। सिंहासन के एक तरफ से जल की धारा तथा दूसरी तरफ से आग की लपट निकली। फिर जल की धारा और आग की लपट साथ–साथ निकलीं। इसके बाद सबने देखा कि वहाँ पर न तो कोई पेड़ है और न कोई सिंहासन और न ही भगवान् बुद्ध अर्थात् वहाँ कोई भी नहीं है, इस चमत्कार से सब लोग चकित हो गये। पुनः महाराज श्री ने इस सम्बन्ध में अनेक बातें संक्षेप में बतायीं।

महाराज श्री कभी भी चमत्कार का समर्थन नहीं करते थे। परन्तु इसकी संभावना से इन्कार भी नहीं करते थे। जरूरत से ज्यादा किसी दूसरे से मिलने की भी कोशिश न करे। साधना में लगे रहने के लिए प्रोत्साहित करते थे। कहा करते थे कि नारायण! बहुत बातों में क्या रखा है, बस थोड़ी सी ही बात है, उसको ही जीवन में लाओ। महाराज श्री का सम्पूर्ण जीवन अपरिग्रहमय था। भिक्षा के

परमहंस स्वामी दयानन्द 'गिरि' जी महाराज युवावस्था में, कुटी-होलम्बी खुर्द, दिल्ली में विराजमान

अतिरिक्त कुछ ग्रहण नहीं करते थे। अपना आश्रम आदि कुछ नहीं बनाया था, सिर्फ विरक्त कुटिया में ही रहा करते थे। साथ में कोई नहीं जायेगा, केवल अपनी साधना ही साथ देगी, यह महाराज श्री बार–बार अपने साधकों को कहते थे।

मैंने अपने जीवनकाल में भारत भ्रमण करके जिन इनें–गिनें पूर्ण महापुरुषों के दर्शन किये उनमें महाराज श्री अन्यतम हैं। यह बात पूर्णत: सत्य है कि महाराज श्री के बारे में मेरा कुछ कहना सूर्य को दीपक दिखाने जैसा ही है। मैं केवल अपने ही हृदय के भाव ही प्रकट कर रहा हूँ। मुझे यह खेद होता है कि महाराज श्री जब इस धरातल पर रहे तो मैं उनके दर्शन व सत्संग का अधिक लाभ नहीं उठा सका। महाराज श्री जी के श्री चरणो में, शत् शत् नमन।

***

72. डा० सुरेन्द्र गुप्त, महेश नगर, अम्बाला छावनी ने स्वामी जी के प्रकाशित प्रवचनों की प्रूफरीडिंग का काम बड़ी श्रद्धा से किया है। यह कार्य करते हुए उन्हें इन प्रवचनों के अध्यात्मजीवनपरक ज्ञान को ग्रहण करने का अवसर प्राप्त हुआ है। स्वामी जी के प्रति उनका यह भावपूर्ण लेख है।

प्रवचनों का महत्त्व : मुझे सुरेन्द्र गुप्त को पूज्य स्वामी जी के दर्शन करने का एक ही बार सौभाग्य प्राप्त हुआ। इसके लिये मैं अम्बाला छावनी के प्रसिद्ध उद्योगपति (ओसा) एवं समाजसेवी लाला पन्ना लाल जी के प्रति आभार प्रकट करता हूँ, जिन्होंने अपने साथ ले जाकर मुझे ब्रह्मनिष्ठ श्रोत्रिय तपोनिष्ठ पूज्य स्वामी जी से मिलवाया।

उस समय वे पद्मासन में एक आले के भीतर (जो उनका बैठने का स्थान था)। बैठे थे। आने वाला कोई भी व्यक्ति जो उनके दर्शन पहलीं बार कर रहा हो, तो उनके सौम्य रूप तथा उनके चेहरे पर

देदीप्यमान तेज़ से आकर्षित हुए बिना नहीं रह सकता था। हम ग्यारह बजे के लगभग अम्बाला शहर स्थित (राय साहिब की बगीची) उनकी कुटिया में पहुँचे थे। कुछ देर हम सभी (लाला पन्ना लाल जी, माता श्रीमती पुष्पलता एवं श्री आर.एस. गोयल) वहीं उनके श्री चरणों में बैठे रहे। कोई खास किसी विषय पर बात तो नहीं हुई किन्तु कुछ–न कुछ चर्चा अवश्य चलती रही। उसके उपरान्त पूज्य माता जी (धर्मपत्नी लाला पन्ना लाल जी) जो अपने साथ भोजन लाई थीं, उन्होंने पूज्य स्वामी जी को उसमें से भिक्षा दे दी। यह पहली बार था जब मैंने देखा कि पद्मासन में बैठे–बैठे ही स्वामी जी ने माता जी से जितनी भिक्षा चाहिए थी उतनी ही अपने खप्पर में डलवा ली। सायं समय वह कुछ भी नहीं लेते थे। सचमुच कहीं लाखों सन्तों में से एक मिलते हैं ऐसे महान् सन्त! मुझे आदरणीय लाला जी ने पूज्य स्वामी जी के विषय में पहले से ही बता रखा था कि स्वामी जी कहीं भी एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाते हैं तो पैदल ही यात्रा करते हैं। सचमुच कहां मिलते हैं ऐसे तपोनिष्ठ संन्यासी, नहीं तो आज–कल के संन्यासी किसी राजे–महाराजे से कम सुख–सुविधाएं नहीं भोगते। मैंने देखा था जिस कमरे में पूज्य स्वामी जी ठहरे हुए थे उसमें पंखा तक भी नहीं लगा था, वैसे पंखा लगवाना किसी भी भक्त के लिये कोई कठिन कार्य नहीं था।

उसके बाद हम उठकर बाहर आ गये और बाहर, एक जगह छांव में बैठ कर सभी ने भोजन किया। कुछ देर विश्राम कर हम चले आये।

बस! इतना ही मेरा उनके साथ मिलन हुआ था। वह स्मृतियां अभी भी मेरे हृदय–पटल पर अंकित हैं। अब मुझे बहुत पछतावा हो रहा है कि मैं और अधिक ऐसे महापुरुष का पावन सान्निध्य क्यों

प्राप्त नहीं कर सका।

कितने ही वर्षों बाद जब कि स्वामी जी ब्रह्मलीन हो चुके हैं, उनके अमृत वचनों को संशोधित रूप में निकालने का संकल्प उनके ही परम भक्त प्रो० ज्ञान चन्द जी गर्ग ने लिया जो पहले से ही अम्बाला के प्रतिष्ठित पत्रकार एवं वरिष्ठ नागरिक श्री सी. एल पुरी जी से परिचित थे। उन्होंने पूज्य स्वामी जी के इन प्रवचनों को जो दो भागों में संकलित हैं, उनके प्रूफ रीडिंग के लिये मेरे नाम का प्रस्ताव कर दिया। अतः प्रो. ज्ञानचन्द गर्ग जी ने मुझे पूज्य स्वामी जी के आशीर्वाद से यह पुण्य एवं सेवा कार्य करने का सुअवसर प्रदान किया। सचमुच यह अवसर पाकर मैं धन्य हो गया।

मैंने जब इन प्रवचनों की टाइपिंग अशुद्धियाँ निकालने के लिए एक–एक लाइन पढ़नी आरम्भ की, तो मुझे लगा कि यदि पूज्य स्वामी जी की मुझ पर कृपा नहीं होती तो शायद मेरे जीवन में बहुत कुछ छूट जाता। यद्यपि इन प्रवचनों के दोनों भाग मेरे पास उपलब्ध थे (जिस रोज कुटिया में हम उनके दर्शनों के लिये गये थे उस समय उन्होंने मुझे दिये थे), परन्तु कितने वर्ष बीत जाने पर भी मैं उन्हें पढ़ नहीं पाया था। अब जब अशुद्धियाँ देखते–देखते बार–बार पढ़नी पड़ी तो आनन्द की अनुभूति होती चली गई।

ये प्रवचन आज के इस आपाधापी के युग में; आज के इस अर्थ प्रधान युग में व्यक्ति को सद्भावना से रहने के लिये उसके बीच में अमृतवाणी का संचार करते हैं और उसके जीवन को परिवार में रहते हुए, समाज में रहते हुए सुखमय बनाने की मूल्यवान् दृष्टि प्रदान करते हैं। आज का इन्सान कितनी ही भयानक व्याधियों से ग्रस्त है, इसके मूल में चिन्ता ही है जो इन्सान को रोग–ग्रस्त बनाती है। स्वामी जी के इन प्रवचनों में बार–बार दोहराया है कि यदि व्यक्ति

अपने नित्यप्रति के कर्मों का लेखा–जोखा करे, अपने भीतर को पढ़े तथा अपने को लड़ाई–झगड़े, वैर–वैमनस्य तथा बुरी संगति से बचाये तो यही सच्चे जीवन को जीने का मूल मन्त्र प्रमाणित हो सकते हैं। यदि आपने अपने को सही कर्मों से जोड़ लिया तो यही कर्मयोग है, यही धर्मयोग है अथवा ब्रह्मयोग हैं। मानव का चिन्तन शुद्ध सोने कीं तरह एक दम खरा होना चाहिये। यदि चिन्तन ठीक हो गया तो कर्म ठीक होने लगेंगे, जब कर्म ठीक करने की आदत पड़ गई तो वह धर्म के मार्ग पर चल पड़ेगा। जब उसका व्यक्तिगत जीवन सुधर गया तो समाज भी स्वतः ही सुधर जायेगा, जब समाज सुधर जायेगा तो राष्ट्र सुधर जायेगा। पूज्य स्वामी जी बार–बार कहते हैं व्यक्ति अपने तृष्णाओं पर रोक लगाये। जितने की ज़रूरत है, उतना ही कमाये, अपने मन को काबू में रखे। अपने को चेताये, अपने को जगाये, अपने को पहचाने। जब इन्सान को यह प्रतीति हो जायेगी कि मेरे भीतर, मेरी आत्मा में पवित्र ज्योति बैठी है, वही आनन्द रूप है और यही ज्योति दूसरों के भीतर भी आनन्द रूप में विद्यमान है; तो सब कुछ ठीक हो जायेगा। क्रोध–हिंसा, वैमनस्य त्याग करके, मिथ्या बातों को छोड़ करके, दूसरे में भी उसी नारायण रूप के दर्शन करो जो आपमें विद्यमान है। जिस दिन भी आपकी अन्दर की दृष्टि खुलेगी आपको यह सब दिखने लगेगा, आपके भीतर दया भाव जागेगा। इन प्रवचनों को बार–बार पढ़ने से ज़ीवन को सकारात्मक रूप से सुखपूर्वक जीने की भाव–भूमि तैयार होती है। इतना ही नहीं ये जीवन जीने के नियम व अधिनियमों के शास्त्र हैं। यह प्रवचन मनुष्य को सत्कर्म करने की प्रेरणा देते हैं और उसके लिए मुक्ति के द्वार खोलते हैं। यह भी निश्चित ही है कि यदि इन पर चला जाये तो मनुष्य के लोक–परलोक दोनों ही सुधर जायेंगे। पूज्य स्वामी जी ने

इन प्रवचनों में मानव–जीवन, उसके आचरण को शुद्ध बनाने के लिए कर्मयोग, भक्ति व ध्यानयोग ही नहीं, ज्ञानयोग पर भी विस्तार से ज्ञान–गंगा प्रवाहित की है।

ये प्रवचन जीवन की रामायण हैं, जीवन–जीने की कला का शास्त्र–युक्त दर्शन हैं। इन प्रवचनों में कहीं भी पूज्य स्वामी जी ने किसी धर्म–विशेष की या किसी सम्प्रदाय विशेष की या किसी देवी-देवता की, किसी समाज की, किसी राष्ट्र की बात नहीं की है। वे तो बस व्यक्ति की बात करते हैं, उसके आचरण को सुधारने की बात करते हैं। जीवन का पुराण हैं ये प्रवचन। व्यक्ति के बीच में जो उसकी 'मैं' विद्यमान है, वही सारे फसाद की जड़ है। यह 'मैं' उसे नीच कार्य करने के लिये उकसाती है। यही 'मैं' ही उसे घर–परिवार, समाज के बीच कितने ही घिनौने कार्य करने की प्रेरणा देती है और उसकी आत्मा के उत्थान में अवरोध ही अवरोध पैदा करती है। ये प्रवचन बताते हैं कि हम एक समय में जो कार्य कर रहे हैं, अपना ध्यान पूरी तरह से उसी पर केन्द्रित करें। इससे आपका मन इधर–उधर नहीं भटकेगा। जिस दिन आपके मन की भटकन रुक गई उसी दिन आप अपने भीतर देखने शुरू हो जायेंगे, अन्दर की तरफ मुड़ने लगेंगे। वास्तव में ये प्रवचन बहुत ही सरल–साधारण भाषा में शास्त्र–युक्त उदाहरणों से आम आदमी के लिये ही आचार–संहिता की रूप–रेखा तैयार करते हैं और उसे झकझोरते हुए पवित्र जीवन जीने की कला सिखाते हैं। जिसने भी इन प्रवचनों को बार–बार पढ़ते हुए अपने जीवन में आत्मसात् कर लिया समझो उसका उद्धार हो गया, उसके भगवत् प्राप्ति के द्वार खुल गये। अतः इन प्रवचनों को बार–बार पढ़ना, उसमें डुबकी लगाना बिल्कुल ऐसा

है जैसे कोई साधक बार–बार गंगा–स्नान करके पुण्य अर्जित करता है।

मैं ऐसे महान् ऋषि के श्री चरणों में बार–बार नमन करता हूँ।

***

73. स्वामी जी के अनेक भक्त वे भी हैं जिन्हें स्वामी जी के दर्शन करने का अवसर नहीं मिला लेकिन जिन्होंने स्वामी जी के ग्रन्थों का स्वाध्याय किया और अपनी कल्पना में स्वामी जी का स्वरूप बनाया। आगे कुछ लेख स्वामी जी की पुस्तकों के महत्त्व के बारें में हैं।

A.P.J Abdul Kalam

Rashtrapati Bhawan
New Delhi - 110004
January 16, 2004

Dear Shri Garg,

Thank you for your letter sending therewith the book "Verses of the Divine Spiritual Life." I have gone through the book particularly I liked the chapter on 'Consciousness'. My greetings and best wishes to you.

Sd/-

A.P.J. Abdul Kalam

74. "Om Namo Narayanaya"

Indeed the book "Verses of the Divine Spiritual Life" by Paramhansa Veetraga Shree Swami Dayanand Giriji Maharaj is ocean of spiritual knowledge. Shree Swamiji has poured his heart in this book. He has not left a single stone unturned in analysing the Secrets of Vedant. The comprehensive explanation of each Verse provides most useful guidance to the aspirants and illuminates the path of realisation.

I offer my prostration in lotus feet of Swamiji and

earnestly thank you for your benevolence for making us fortunate to enjoy Divine Nectar.

With regards !

In service of Gurudev,
Dr. H.G. Tanna

***

75. Swamiji's Significance :

Dr. *Uma Sangameswaran* (Vill. Tatamangalam, Kerala State)

After sending me the final draft for proof correction, Sri. G.C. Garg requested me to write about the impressions and experiences I had while translating and editing the *Spiritual Discourses* of Reverend Swami Dayanand Giri Maharaj. Hence this article. At the outset, I wish to place on record my sincere appreciation for Sri Garg for his unflinching faith in Swamiji. Garg Bhai's sense of commitment, service-mindedness and conscientiousness are indeed commendable. I appreciate the painstaking efforts of Prof. Mahajan in translating many of the *Discourses*. I am profoundly impressed by the loyalty and large-heartedness of the several devotees of Swamiji living in Ambala, Delhi and other places for their generous contributions in this venture. By distributing such valuable books of Swamiji free of cost to everyone who wishes to study them, Garg Bhai and the various devotees are rendering the greatest service to the Guru, namely, the dissemination of his teachings all over the world.

I consider it my good fortune that I have been able to participate in this noble venture as translator cum editor. Unfortunately, I never had an opportunity to meet or even see Swamiji. But he is a living Guru in my heart

through his writings. The *guru-sishya* bond is extremely subtle and sublime. It inheres of the unconditional love of a tender hearted mother, the strict disciplining of a morally upright father and, above all, the bountiful grace of the Divine. I am immensely struck by the clarity of thought, deep penetrating insight and lucid, crystal clear style that characterise all Swamiji's utterances. Swami Chinmayananda writes : "Real service to the Teacher is to try to understand his words, his ideas, to reflect upon them and strive our best to live upon them." I consider it a token of Divine Grace and Swamiji's *ashirwad* (blessings) that I have been able to render, in a humble way, such an act of service. This noble task has benefited me very much. It is helping me to fathom the great mind of Swamiji's, especially his thorough grasp of the most subtle metaphysical truths, the child like simplicity of his character and above all, his earnest desire to guide humanity toward God realisation.

Swamiji is a prolific writer. His discourses are characterised by repetition and emphasis of certain truths. His cardinal teachings are based on the Upanishads, and the Gita in particular. He distils the quintessence of *Sanatana dharma* in his discourses. The gist of all his utterances is that the goal of human birth is ultimate liberation from the endless clutches of material existence. Swamiji can be aptly described as a spiritual psychologist like Sri Aurobindo, Yogananda Paramahamsa, Jiddu Krishnamurthy etc. He is more interested in the internal transformation, rather than in mechanical religious rituals. He does not prescribe dogmatic theories, difficult postures or mysterious formulas. He talks and writes in a manner
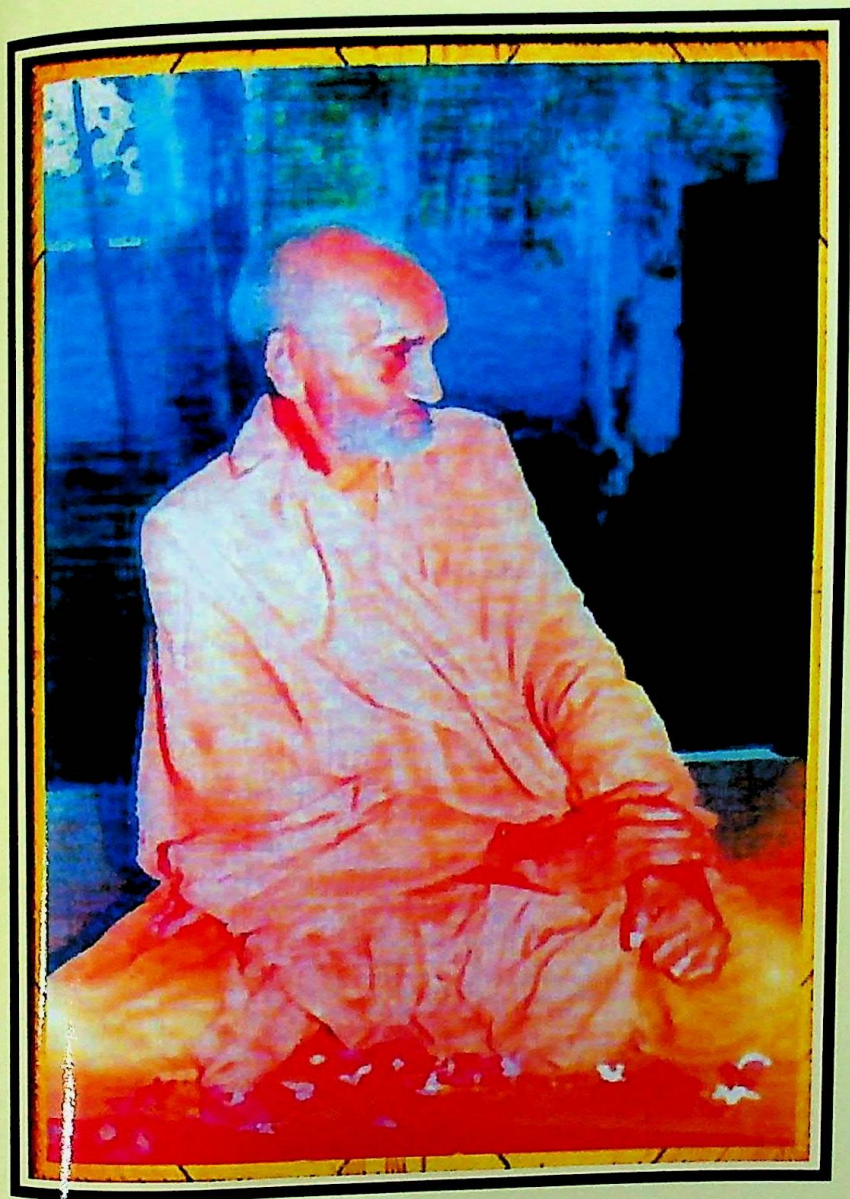
रमहंस स्वामी दयानन्द 'गिरि' जी महाराज वृद्धावस्था में, व्यास (गुरू) पूर्णिमा के दिन विराजमा

that may be understood even by a very ordinary, or uneducated person. It is like the mind speaking to the mind, or the soul addressing the soul.

Though he elaborates on *Karmayoga*, *Bhaktiyoga* and *Gnanayoga*, Swamiji shows a preference for the last one. He advocates meditation as a means to attain emancipation from temporal existence. In fact, the numbered paragraphs of his discourses serve as effective passages for Guided Meditation. It is to illustrate that constant practice is a pre-requisite for steady meditation. Swamiji cautions the *sadhak* to eliminate the various spiritual fetters like anger, lust, greed etc. through cool reflection upon their ill effects on the mind. In other words, he advises man to reject all kinds of negativities. The slow cleansing of the mind can thus be achieved. It is a pre-requisite for effective meditation. Sri Aurobindo also emphasises the need for continual rejection of all one's negative aspects.

In order to develop concentration, Swamiji advises us to do, with full consciousness, every act, even if it is a most insignificant one such as brushing one's teeth. This point is stressed repeatedly by Sri Aurobindo and his spiritual collaborator, the Mother. Similarly, Swamiji advises people to eliminate all kinds of waste-thoughts from the mind through cool reasoning and constant practice. What he calls thoughtless awareness corresponds to what Jiddu Krishnamurthy terms "choiceless awareness". He is down-to-earth and practical when he thus instructs people, especially when he encourages them to put up with the pain and discomfort of sitting for meditation, by reflecting that this pain is nothing

compared to the pain of disease and so on. Swamiji teaches us to convert the darkness of loneliness into the enlightenment and luminosity of solitude through effective meditation. All this is *Rajayoga*.

A noteworthy fact about Swamiji's discourses is that they do not contain anything 'new'. This is to say, Swamiji is only presenting before us the age-old wisdom of our ancient seers and sages. Hence there is a clear tone of authenticity and truth in all his utterances. Sri Aurobindo likewise admitted that his Integral Yoga was not radically new. In fact, like Sri Aurobindo, Swamiji too has succeeded in amalgamating the various principles and thoughts that he actually experienced. This is indeed a valid point, for today we have many so called god-men, god-women and 'gurus', each of whom claims to teach something new, something unique. Swamiji has gone beyond all such theorisings and poses, and is thoroughly simple and unassuming. Hence his greatness and significance.

Perhaps the most outstanding feature of Swamiji's utterances is that they are transparent, uncomplicated and therefore intelligible. His technique of conscious breathing is a wonderful contribution to the present generation, which is chafing under stress and tension. Accordingly, while breathing, one has to be conscious of every part of the body for a short while in turn, followed by the conscious awareness of the mind. Two things that struck me about this are:

(i) Swamiji's technique of conscious breathing or *pranayama* is basic, risk-free and easy to follow.

(ii) It is taught to humanity absolutely free.

We realise the full significance of Swamiji's contribution only when we consider how many meditation courses and camps and workshops and what not mushroom in all parts of the world every day where the founder proposes to teach something 'new' and charges heavy fees too. To adapt a quotation from Tagores' *Gitanjali*: Swamiji's discourses and teachings lead us into a "heaven of freedom" "where knowledge is free!" Those who wish to benefit and evolve are free to avail themselves of Swamiji's simple but effective teachings.

One can experience the Guru's grace or blessings intuitively. Through the months of concentrated efforts to study and translate these discourses I have been able to experience Swamiji as a living presence. He graces me through *adesh* or silence, voiceless instructions and replies to my doubts and questions. Once, I felt Swamiji was exhorting me to execute the task of editing and correction with the attitude of doing *tapas* - austerity - just as Dhruva did, or Prahlad did! In fact, I have gone about the work of translating the *Spiritual Discourses* as an act of austerity, as a humble act of consecration to the Divine. Even the choicest blessings of the world are reduced to nothing before the infinite grace of the Guru, for it is the Guru or preceptor who leads us toward God-realisation. I conclude by expressing my staunch belief that one needs Guru's *ashirwad* to be called to execute such a task successfully. I pray for Divine blessings for all. May Swamiji continue to shower his *ashirwad* on all of us and lead us on the path of Truth and Dharma, so that we may

evolve from self-consciousness to cosmic consciousness and ultimately attain the bliss of God-realisation.

□□□

***

76. Girija Sastry, R.R. Nagar, Bangalore :

Revered Swami Dayanand 'Giri' Ji Maharaj has delievered spiritual lectures which are the essence of Vedas and Sastras. He has said that, in case the mind having forgotten the outside world seeks on inner happiness and succeeds in getting it, it will then continue to stick to that, enjoying the inner 'Bliss'. Just as we sleep of cooly while sleeping alone, we can attain 'Bliss', only in solitude. That itself is the state of oneness with the divine.

Sitting in solitude, we should picturise the clear Sachidananda Roopa of Anandamaya Chetana, which is itself Bhagawan and keep on meditating till we attain Ananda. We cannot understand the reality till we attain Ananda. Once it is attained, we are no longer slaves of anything, we need not be scared of anything and nothing else remains to be done also.

Swamiji has given lots of examples and methods for us to achieve the ultimate goal. We are indeed very grateful to Swamiji for all the troubles he has taken to make us real devotees of Lord and thereby attain peace through meditation, which ultimately mingles us with the Lord Supreme. We should be grateful to revered Swamij Ji.

***

77. डॉ० बी० के० त्रिवेदी, वैज्ञानिक, नई दिल्ली को स्वामी जी के ग्रन्थों के स्वाध्याय से बहुत लाभ हुआ है। वे इस संबंध में लिखते हैं:

स्वामी जी के ग्रन्थों का महत्त्व : ये पुस्तकें स्वयंप्रकाश साहित्य हैं, अपने–आप में अपना Comment हैं। सूरज को कोई मिट्टी का दिया जलाकर नहीं देखता, परखता। हाँ, दिये से सूरज की पूजा अवश्य की जाती है। इसी प्रकार मैं भी अपनी भावनायें अवश्य व्यक्त करूंगा।

इन ग्रन्थों में सर्वोच्च पद पर प्रतिष्ठित होने के लिये, अनावश्यक वाद–विवादों के जंगल से बचाते हुए, साधक की क्षमतानुसार थोड़ी–थोड़ी दूरियों वाले अनेक पड़ावों से युक्त, एक विलक्षण, सीधे ध्यानमार्ग का सूक्ष्म, विशद और स्पष्ट वर्णन किया गया है। ऐसा सटीक मार्ग दर्शन भारतीय आध्यात्मिक साधना पद्धतियों में पारंगत और योगविद्या में निष्णात केवल ऐसे योगी की प्रज्ञा द्वारा ही सम्भव है जो इस मार्ग तथा आसपास के प्रान्तर में चिरकाल तक विहार कर चुका हो।

मुझे इन पुस्तकों से अपनी सामर्थ्य के अनुसार बहुत ही लाभ हुआ है और मैं जानता हूँ कि आगे भी साधना में एक हितैषी मार्गदर्शक के रूप में काम आती रहेंगी। ये पुस्तकें स्वामी जी का आशीर्वाद, वरदान् और उनका स्वयं का शब्दमय रूप ही हैं।

***

78. स्वामी जी के ग्रन्थों के बारे में, श्री राधे श्याम खेमका (संपादक 'कल्याण') के विचार : तप, त्याग, वैराग्य एवं ज्ञान की प्रतिमूर्ति स्वामी श्री दयानन्द 'गिरि' जी महाराज गत 23 नवम्बर 2004 को कार्तिक शुक्ल पक्ष की देवोत्थान एकादशी के दिन ब्रह्ममुहूर्त प्रातः 4.00 बजे इस नश्वर शरीर का परित्याग कर ब्रह्मलीन हो गये।

श्री स्वामी जी महाराज की सनातन धर्म के सिद्धान्तों में पूर्ण आस्था थी। वे सम्पूर्ण जीवों का आत्यन्तिक–कल्याण अर्थात् जन्म–मरण के बन्धन से उन्हें मुक्त कराना चाहते थे। इसीलिये उन्होंने गूढ़ विचारों से युक्त सत्साहित्य सृजन किया तथा अपने सदुपदेशों–प्रवचनों द्वारा जीवनपर्यन्त भक्तों का मार्ग दर्शन किया। वर्तमान समय में त्याग, वैराग्य से समन्वित, सनातन धर्म के सिद्धान्तों पर आसीन संत–महात्माओं तथा आध्यात्मिक पुरुषों के चले जाने पर उनके अभाव की पूर्ति नहीं होती। अतः भक्तजनों को उनके सत्साहित्य तथा सदुपदेशों से लाभ उठाना चाहिये।

***

79. पं. लक्ष्मी कान्त द्विवेदी, इलाहाबाद के विचार :

ॐ श्री सद्गुरु चरण कमलेभ्यो नमः ॐ

आपके सौजन्य से मुझ जैसे अज्ञानान्धकार में भटकते हुये जीव को परम पूज्यपाद प्रातः स्मरणीय ब्रह्मनिष्ठ श्रोत्रिय वीतराग स्वामी दयानन्द 'गिरि' जी द्वारा प्रणीत अनमोल आध्यात्मिक ग्रन्थों के स्वाध्याय का शुभ अवसर प्राप्त हुआ। जिसके लिये मैं सतत आभारी हूँ।

ये ग्रन्थ महाराज जी के आशीर्वादात्मक एवं स्वयं प्रकाश आध्यात्मिक साधना पद्धति हैं। इन ग्रन्थों के बारे में अपनी राय व्यक्त करना सूर्य को दीपक दिखलाने की धृष्टता करना जैसा ही है क्योंकि दीपक से तो केवल आरती और पूजन ही किया जा सकता है। ऐसा अनुभव सिद्ध मार्गदर्शन तो पूज्यचरण महाराज जी जैसे ईश्वर स्वरूप सिद्ध महापुरुष एवं सिद्ध महायोगी की ब्रह्मवर्चस् प्रज्ञा

द्वारा ही सम्भव है। इन ग्रन्थ रत्नों में वेद शास्त्र उपनिषदों का सार, सरल भाषा में उद्धृत किया गया है।

ये ग्रन्थ मेरे जैसे सामान्य साधक के लिये अमृतमय पाथेय एवं पूज्य प्रकाश मञ्जूषा हैं।

***

80. स्वामी ब्रह्मानन्द सरस्वती, मुनि की रेती, ऋषिकेश के विचार :

ॐ परमात्मने नमः

परमादरणीय परमपूज्य परमश्रद्धेय श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ परमहंस ब्रह्मलीन श्री 108 स्वामी दयानन्द 'गिरि' जी महाराज एक विरक्त–शिरोमणि विलक्षण सन्त रत्न थे। उन्होंने अपने जीवन में कभी संग्रह–परिग्रह को स्थान नहीं दिया। कोई मठ–मन्दिर अथवा आश्रम भी नहीं बनवाया। छोटी कुटिया आदि में निवास करते हुए एकान्त में अपने ब्रह्मात्म–स्वरूप में ही लीन रहे। वेदान्त–सिद्धान्त को उन्होंने अनुभवरूप से आत्मसात् कर लिया था। उन्होंने विशेषरूप से अपने अनुभव को ही प्रवचन का विषय बनाया। मात्र शास्त्रों के माध्यम से ही नहीं बोलते थे। बोलने का विषय उनका अपना अनुभव ही था। श्रुति–वाक्यों को उन्होंने क्रियात्मकरूप से अपने जीवन में उतारा था। सज्जन–भक्तों एवं सत्संगी–जनों ने मात्र उनके सत्संग से ही लाभ नहीं लिया, बल्कि वे उनके फक्कड़ी एवं विरक्त–जीवन से अधिक प्रभावित हुए। जैसा वे कहते थे, वह सब उनके जीवन में पहले से ही क्रियान्वित था। ऐसे जीवनमुक्त विरक्त सन्त विरले ही होते हैं। जिन्होंने भी उनकी सन्निधि का सेवन किया वे अवश्य धन्य हैं। उनकी सेवा, पूजन स्पर्शन एवं प्रवचनों का लाभ जिन्होंने लिया; उनका तो कहना ही क्या है, वे तो अवश्य ही मुक्ति के पात्र हो गये।

वे साधना पर अधिक जोर देते थे। वे कहते थे जो साधन–परिपक्व है उसे साध्य–वस्तु की स्वतः ही प्राप्ति हो जाती है। हमें वहाँ एक सन्त स्वामी ज्ञानानन्द जी महाराज होशियारपुर वालों ने ही स्वामी दयानन्द जी महाराज का लगभग पैंतीस वर्ष पहले परिचय दिया था। हम लगभग 42 वर्ष से वहाँ ऋषिकेश में हैं। अब तक हमने ऐसे कुछ ही सन्तों की सन्निधि का सेवन किया है जो अपने आत्म–स्वरूप की सहज–समाधि में ही निवास करने वाले रहे हैं।

हमने श्री गर्ग जी द्वारा प्रेषित प्रवचन ग्रन्थों का अवलोकन किया। इसमें हमें स्वामी दयानन्द जी महाराज की निष्ठा का परिचय प्राप्त हुआ। वे अवश्य ही एक अद्वितीय, विरक्त एवं निष्ठावान सन्त थे। जो लोग इस साहित्य को पढ़े हैं, पढ़ रहे हैं या जिज्ञासा से पढ़ेंगे, वे अवश्य ही मुक्तिपद के अधिकारी होंगे।

हम ऐसे ब्रह्मनिष्ठ सन्त के विषय में क्या अधिक प्रकट करें? वे तो अपनी स्वरूप–महिमा में विराजमान थे। सन्तों की महिमा वे अपने आचरणों से प्रकट करते थे। जिज्ञासुओं को ऐसे ही सन्तों की खोज रहती है। सन्तों की महिमा कौन जान सकता है और कौन उसे प्रकट कर सकता है? वे तो एक आदर्श सन्त थे। हम अपने स्वरूप से उन्हें अनेक नमन करते हैं। शेष सब भगवत्कृपा है।

***

81. "मैं नहीं तो क्या हुआ, पुस्तकें तो हैं न" :

एक साधक श्री श्याम सुन्दर गिरनारा, नाथ द्वारा, राजसमंद राजस्थान ने स्वामी जी की पुस्तकों के स्वाध्याय का प्रभाव इस प्रकार लिखा है। कल स्वामी जी की पुस्तक पढ़ कर सिरहाने रखी थी तो रात्रि को स्वप्न में गीता जी का एक श्लोक सुनायी दिया–
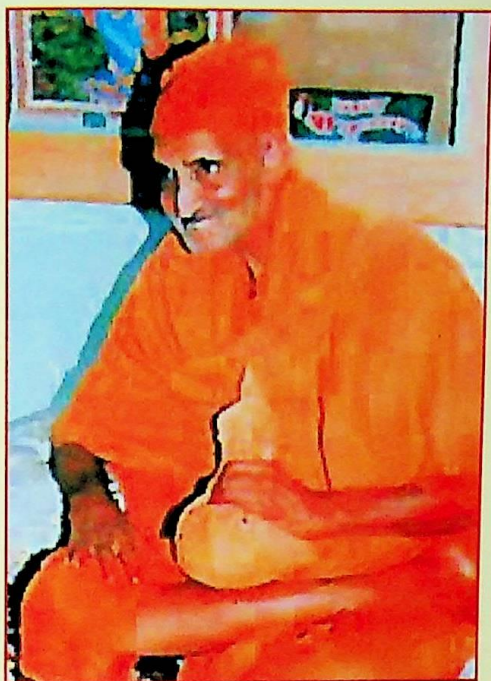
होशयारपुर मे किसी भक्त के घर भिक्षा लेते हुए स्वामी जी महाराज
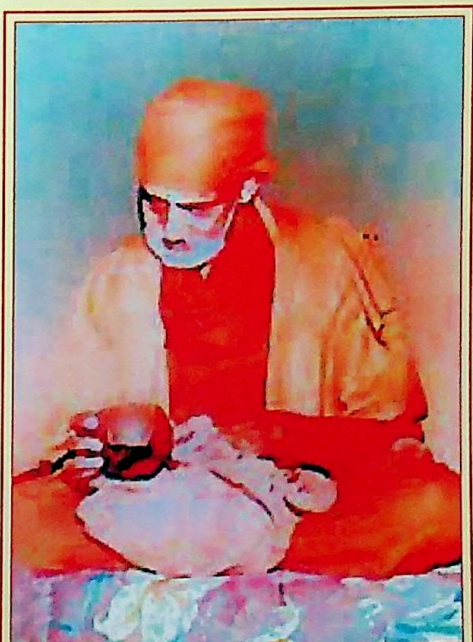
होशयारपुर मे किसी भक्त के घर भिक्षा लेते हुए स्वामी जी महाराज

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्।।

"हे पार्थ! जब जब धर्म घटता और बढ़ता पाप ही।
तब तब प्रकट मैं रूप अपना, नित्य करता आप ही।।
सज्जन जनों का त्राण करने दुष्ट–जन–संहार–हित।
युग–युग प्रकट होता स्वयं मैं, धर्म के उद्धार हित।।"

अतः स्वामी जी द्वारा धरा धाम छोड़ने का अर्थ यह नहीं कि जीवों का उद्धार कार्य रुक गया। प्रसंग में भी है कि स्वामी जी ने कहा, "मैं नहीं हूँ तो क्या हुआ, पुस्तकें तो हैं न?" जैसे मैंने कभी स्वामी जी के दर्शन नहीं किये परन्तु उनकी पुस्तकें तो जबर्दस्त प्रेरणा का स्रोत बन ही रही हैं। जब ईश्वरीय शक्ति जन कल्याण हेतु प्रकटी हो तो उसका कार्य इतनी आसानी से थोड़े ही समाप्त हो सकता है! गीता प्रेस गोरखपुर की पुस्तकें आज भी बड़ी मात्रा में जनहित का कार्य साध ही रही हैं। स्वामी जी की पुस्तकें पढ़कर लगता है कि हर व्यक्ति के पास ये पुस्तकें होनी चाहियें। बहुत सारे लोगों को उनके बारे में पता ही नहीं, मुझे भी पता नहीं था जब तक कि उनके शिष्य महात्मा नहीं मिले। परन्तु फिर विचार आता है कि ये पुस्तकें भी उनके पास ही पहुंचेगी जिनका हित प्रभु ने विचारा होगा। खासतौर पर साधकों के लिये तो ये अत्यंत उपयोगी हैं। मैं स्वयं साधक हूँ, वर्षों से साधना कर रहा हूँ। अनेक आत्म–साक्षात्कारी संतो को पढ़ा है, समझा है परन्तु दयानन्द जी के प्रवचन तो अनूठे ही हैं – एकदम निराले। कोई नास्तिक पढ़े तो उसे भी लगे कि सचमुच चारों ओर बिखरी मन की शक्ति को इकट्ठा करके स्वयं को बंधन–मुक्ति में कैसे लगाना है। सत्य के उपासक महात्मा की सत्य अनुभूति का प्रभाव असरहीन नहीं हो सकता। भले ही ये पुस्तकें मुझे विलंब से मिली हों, फिर भी ये मेरी साधना की गति बढ़ाने में प्रबल

सहायक होंगी। ये ऐसा ही है जैसे बैलगाड़ी में सफर करने वाले को अचानक रॉकेट में बैठा दिया जाय। अतः आपसे प्रार्थना है कि यदि स्वामी जी की और भी पुस्तकें हों तो कृपया अवश्य भिजवाना। ईश्वर कृपा सहित।

***

82. आध्यात्मिकता के सफर में स्वामी जी की पुस्तकें पाथेय :

श्री सुरेन्द्र यादव, हरियाणा संवाद, चण्डीगढ़ के विचार :

श्री स्वामी दयानन्द 'गिरि' जी का नाम जहन में आते ही आध्यात्मिकता की तलाश में भटकता हुआ मन एकाग्र हो जाता है और अज्ञात के प्रति सारे संदेह विलुप्त हो जाते हैं। दुःखों और अनिश्चितता से भरे हुए संसार के दावानल में धधक कर जलते हृदय को उस विराट के दर्शन होते हैं और परमशांति का अनुभव होता है। भौतिक रूप में स्वामी जी आज हमारे बीच में नहीं हैं परन्तु प्रवचनों के द्वारा उनकी उपस्थिति शाश्वत् है एवं उनका आशीर्वाद इस नश्वर जगत् के क्लान्तों को मुक्ति प्रदान करता है। उनकी इस अहैतुकी कृपा को उनके अनुयायियों ने पहले टेप रिकार्ड कर बाद में लिपिबद्ध कर लिया था। अंततः चंडीगढ़ पी०जी०आई० के मनोविज्ञान विभाग के डा. ए.सी.मौद्गिल द्वारा अंग्रेजी भाषा में अनुवादित **"ए क्लेक्शन आफ स्पिरिचुअल डिस्कोर्स"** पुस्तक बनकर तैयार हुई।

प्रवचनों का यह संग्रह इन्द्रिय तृप्ति की लालसा में थक कर चूर हुए प्राणी को ऐसी शरण प्रदान करता है जहाँ उसे इस डाह में और नहीं झुलसना होता। वह विस्तार से समझाते हैं कि कैसे परमानंद को पाया जा सकता है जिससे मस्तिष्क सांसारिक उलझनों से स्वतंत्र हो जाता है। किस प्रकार इंद्रियों पर काबू कर लालसा, क्रोध, काम, विषय और वासना से मुक्त हो स्वतंत्रता का जीवन

जिया जा सकता है। वैराग्य के बारे में बताते हुए स्वामी जी इस अस्थाई और अल्पकालीन, रुग्ण सांसारिक ज्ञान की तुच्छता के बारे में चेताते हैं।

स्वामी जी बताते हैं कि किस प्रकार हम पांच ईश्वरीय गुणों को विकसित कर सकते हैं और अज्ञान के अंधकार से दूर अलौकिक प्रकाश से देदीप्यमान धाम की प्राप्ति कर सकते हैं।

स्वामी जी के अम्बाला, कराला गांव एवं माजरी, नई दिल्ली के भक्तों ने इस पुस्तक का प्रकाशन किया है। 394 पृष्ठों के इस अंग्रेजी अनुवाद में मौद्गिल जी ने स्वामी जी की आध्यात्मिक गहराई को आत्मसात् किया है। कहा जा सकता है कि इस अद्भुत पुस्तक को पढ़ने के बाद जीवन में बदलाव निश्चित है।

***

83. स्वामी जी : अंतरंग मार्ग प्रदर्शक :

डॉ. बृजेन्द्र नारायण माथुर, भूतपूर्व प्राध्यापक राजस्थान कृषि विश्वविद्यालय जयपुर ने स्वामी जी के दर्शन नहीं किये लेकिन उन्हें स्वामी जी की पुस्तकें पढ़ने पर ऐसा अनुभव हुआ कि स्वामी जी उनके हृदय में विराजमान हैं और उनका मार्गदर्शन कर रहे हैं। उन्होंने अपनी अनुभूति इस प्रकार लिखी है:

अनेक अन्य साधकों की भांति जो अपनी अंतरयात्रा पर हैं, मैं भी एक पथिक हूँ। एक ही मार्ग पर चलने वाले सहयात्रियों में सौहार्द तथा सहयोग अपेक्षित है, इसी भावना से प्रेरित होकर मैं अपनी अनुभूति लिपिबद्ध करने का प्रयास कर रहा हूँ। सबसे पहले मैं यह स्पष्ट करुँगा कि भौतिक रूप से मैं स्वामीजी के दर्शन एवं सान्निध्य से वंचित रहा। परन्तु स्वामीजी ने मुझे चमत्कारिक रूप से अपने चरणों में खींचकर आश्रय दिया और उसके माध्यम बने एक

साधु प्रवृत्ति के सत्पुरुष श्री ज्ञानचन्द जी गर्ग और मैं स्वामीजी की छत्रछाया में आ गया। उस अंबर में मुझे अनेक दिव्यात्माओं, प्रो० महाजन जी, डॉ० श्रीमती उमा संगामेसवरन जी (केरला प्रान्त), श्रीमती गिरिजा शास्त्री जी (कर्नाटका प्रान्त), डॉ० मोद्गिल जी, श्री बलवन्त जी, श्री बालकृष्ण जी तथा डॉ० बांकेलाल शर्मा जी आदि का उनके द्वारा अनुवादित स्वामी जी के प्रवचनों के रूप में साथ पाकर मैं धन्य हुआ। यह सभी पुण्यात्माएं जिन्हें स्वामी जी के प्रवचन, दर्शन, वार्तालाप, सामीप्य का उनके जीवनकाल में अनेक अवसर प्राप्त हैं, मेरे सहयात्री हैं, यह विचार मुझे सन्तोष तथा स्फूर्ति से ओत–प्रोत कर देता है। इस अकिंचन को स्वामीजी ने ऐसा सुअवसर प्रदान किया, यह उनकी अनंत कृपा का द्योतक है। संत व ईश्वर एक दूसरे के पर्यायवाची शब्द हैं, यह ध्रुव सत्य है।

स्वामीजी के उपदेश जिनमें सभी धर्मशास्त्रों का निचोड़ है, सारगर्भित होते हुए भी बहुत ही सरल व व्यावहारिक हैं, इनकी भाषा भी आसान तथा घरेलु आत्मीयता से परिपूर्ण है। उसमें निहित अनुभूत निर्देश सभी उम्र के व्यक्तियों चाहे वह किसी भी जाति, धर्म, रंग व देश के हों, सुगम हैं। सबसे बड़ी विशेषता है कि स्वामी जी हमें अपनी वर्तमान परिस्थिति में प्रभु प्राप्ति या आत्मदर्शन की ओर अग्रसर करते हैं। उनके अनुभव सिद्ध बताये मार्ग में शुभ कर्मों को करते रहना और सतत् प्रयत्नों द्वारा अशुभ कर्मों को छोड़ते जाना तथा मन को सदा पवित्र रखने के लिए अपने विचारों को सदा जगाते रहना या प्रदीप्त करते रहना ही धर्म है। यही उनकी आध्यात्मिक जीवन पालन की अमूल्य शिक्षा है। स्वधर्म निभाते हुए साधक दुनिया में तो रहे, पर दुनिया का न बने। स्वामीजी ने अपने आचार व व्यवहार से अपने भक्तों व प्रशंसकों के सामने आदर्श जीवन का उदाहरण प्रस्तुत

किया जो सर्वथा अनुकरणीय है। सम्पन्न परिवार में जन्म लेकर, फकीराना जीवन जिया, सदैव आत्मानुभव में लीन रहे तथा भक्तों व साधकों को भी प्रेरित करते रहे। किसी भी रूप में उन्होंने द्रव्य संग्रह या साम्राज्य स्थापन आदि नहीं किया। ऐसे उच्च कोटि के साधु के सामान्य स्तर वाला परन्तु असाधारण साधनामय जीवन वृतान्त पढ़कर एक साधक अवश्य प्रभावित होगा उनके द्वारा रचित प्रवचनों तथा छन्दों को तथा उनके भक्तों के अनुभवों को व उनके जीवन चरित को एकाग्रता से पढ़ने, मनन करने तथा यथा सम्भव जीवन में उतारने वाला अपने मानव जीवन को धन्य करेगा।

सन्तों की संगति दानव को मानव बना देती है और स्वामी जी जैसे देव पुरुष जो सशरीरी जीवन में अपने सच्चिदानन्द–स्वरूप में सदा स्थित रहे हैं उनका यह स्वरूप उनके विदेही होने पर भी भक्तों का सतत् मार्गदर्शन करता रहता है। इसलिए कोई इस बात से निराश न हो कि वह स्वामी जी के शरीरीरूप में दर्शन न कर सका। यदि एक साधक–भक्त स्वामी जी का चित्र सामने रख कर श्रद्धापूर्वक उनके प्रवचनों का पठन–पाठन करेगा तो उसे ऐसा अनुभव होगा कि वह स्वामी जी से साक्षात् रूप में वह प्रवचन सुन रहा है और उसकी आध्यात्मिक साधना का मार्ग प्रशस्त होता जाएगा। जो स्वामी जी के मार्गदर्शन (स्वामी जी के ग्रन्थों में विवेचित) में साधनारत रहेगा उसका "मैं" भाव धीरे–धीरे विलुप्त होता जाएगा जिससे उसके व्यवहार में मृदुता आएगी और उसका जीवन सरल सादगी का जीवन बनने लगेगा जिसका सत् प्रभाव उसके निकट के लोगों पर भी पड़ेगा।

स्वामी जी के निर्देशों के अनुसार साधना करने वाले भक्त को स्वामी जी का मार्ग दर्शन और आशीर्वाद सदा प्राप्त है। लेकिन

साधनापथ पर तपस्वी बनकर चलना तो स्वयं साधक ने ही है। इस भक्त को अपना आध्यात्मिक जीवन संभालने की प्रेरणा स्वामी जी से प्राप्त हो रही है। वह उनके प्रति कृतज्ञ है। उनकी वन्दना करता है।

***

श्री सद्गुरवे नमः

84. पिपासा तृप्ति :

***दिव्य चेतन शास्त्री*, अम्बाला छावनी, (हरियाणा)**

एक साधक गुरुमुख होकर अन्तर्मुखी वृत्ति अपनाकर विवेकशील, वैरागी, मोक्षत्व प्राप्त, ब्रह्माकार वृत्ति को प्राप्त ब्रह्मनिष्ठ महापुरुष का संसर्ग प्राप्त करे या उनके अनुभूत प्रवचनों को पढ़कर आध्यात्मिक मार्ग का अनुसरण करे। इस प्रयास से दो चमत्कारिक परिवर्तन प्रत्येक आस्थावान् व्यक्ति के जीवन में आएंगे। पहला, सांसारिक कष्टों से निवृत्ति तथा दूसरा अपने स्वरूप 'मैं' का ज्ञान अर्थात् "मैं कौन हूँ" का उत्तर प्राप्त होगा।

यही परिवर्तन मेरे जीवन में वीतराग, ब्रह्मनिष्ठ पूज्यपाद स्वामी श्री दयानन्द 'गिरि' जी महाराज के आध्यात्मिक ग्रन्थों को पढ़ने के उपरान्त आया, पूर्व में अनेक महापुरुषों द्वारा रचित आध्यात्मिक दर्शन ग्रन्थों का अध्ययन करने का अवसर मिला लेकिन पाण्डित्यपूर्ण उस शैली को ग्रहण करने में मेरी मंदबुद्धि असफल रही। चिन्तन, मनन में बार-बार अवरोध पैदा हुए, परन्तु बलवती जिज्ञासा व प्रारब्ध ने मेरा साथ दिया, सौभाग्यवश परम श्रद्धेय ब्रह्मनिष्ठ स्वामी दयानन्द 'गिरि' जी महाराज द्वारा प्रणीत अध्यात्म दर्शन-अध्ययन का परम कल्याणकारी अवसर प्राप्त हुआ।

यद्यपि मैं महाराज श्री के पावन भौतिक दर्शनों से वंचित रहा परन्तु दार्शनिक स्वरूप का साक्षात्कार करने में सफल रहा। मुझ

जैसे जड़मति एवं पतित जीव के लिए यह संयोग घटजल का सरोवरजल से संयोग से कम नहीं। धन्य है सतत् चिन्तनीय, वन्दनीय, सतत अनुकरणीय वीतरागी महापुरुष जिनके प्रताप से भारत की धर्मभूमि सदा से वन्दनीय रही है।

ज्यों–ज्यों स्वामी जी महाराज द्वारा प्रणीत ग्रन्थों का अध्ययन करता हूँ तब मुझे प्रतीत होता है कि जैसे स्वामी जी स्वयं मेरे अन्तर में व्याप्त होकर मुझे परोक्षरूप में अध्यात्म मार्ग का अनुगमन करवा रहे हों। बलवती जिज्ञासा व प्रारब्ध ने मिलकर जिस अलौकिक वीतराग महापुरुष स्वामी जी महाराज के दर्शन को अध्ययन करने का मौका दिया यह मेरे जीवन का सबसे मूल्यवान् क्षण है ऐसा कल्याणकारी क्षण अति दुर्लभ है। मेरी कामना है कि यह सुअवसर प्रत्येक भारतीय को प्राप्त हो।

वैसे तो स्वामी जी महाराज के आध्यात्मिक दर्शन ग्रन्थों का स्वाध्याय प्रत्येक व्यक्ति के लिए आवश्यक है क्योंकि मानव जीवन, भोग योनि नहीं अपितु कर्मयोनि है, आज का कर्म, कल का प्रारब्ध है। अतः लौकिक जीवन को परमार्थ एवं कल्याण मार्ग की ओर ले जाने के लिए प्रत्येक भारतीय का प्रथम कर्तव्य है कि जीवन के मूल उद्देश्य को समझते हुए सांसारिक दुःखों एवं त्रिविध आपदाओं से बचने के लिए इन कल्याणकारी, चमत्कारी ग्रन्थामृत रूपी रसायन से दुःखों का निदान करें व जीवन को सफल बनाएं। अन्त में सद्गुरु चरणों में नमन करता हुआ श्लोक के माध्यम से भाव पुष्प व श्रद्धा अर्पित करता हूँ।

"अज्ञानतिमिरान्धस्य, ज्ञानाञ्जनशलाकया।
चक्षुरुन्मीलितं येन, तस्मै श्री गुरवे नमः।।"

***

भाग–III

स्वामी दयानन्द 'गिरि' जी महाराज के आध्यात्मिक ग्रन्थ

इस भाग में स्वामी जी के प्रकाशित आध्यात्मिक ग्रन्थों का संक्षिप्त परिचय तीन अनुच्छेदों में प्रस्तुत है। पहले अनुच्छेद में स्वामी जी के ग्रन्थों का परिचय, अध्यात्मविद्या में इनका महत्त्व और इन ग्रन्थों की विषय–वस्तु का विवेचन प्रस्तुत है।

अनुच्छेद–2 में "आध्यात्मिक जीवन पद्यावली" के कुछ पद्य प्रस्तुत किये गए हैं। अनुच्छेद–3 में आध्यात्मिक प्रवचनों के कुछ अंश, प्रस्तुत किये गए हैं।

इस भाग में पाठकों को अध्यात्मविद्या के कुछ ज्ञान–बिन्दु मिलेंगे, जिनसे अध्यात्म–ज्ञान की उनकी प्यास तृप्त तो नहीं होगी, बल्कि और बढ़ेगी। अध्यात्म–ज्ञान की इच्छा की तृप्ति तो स्वामी जी के ग्रन्थों के स्वाध्याय से ही हो सकेगी।
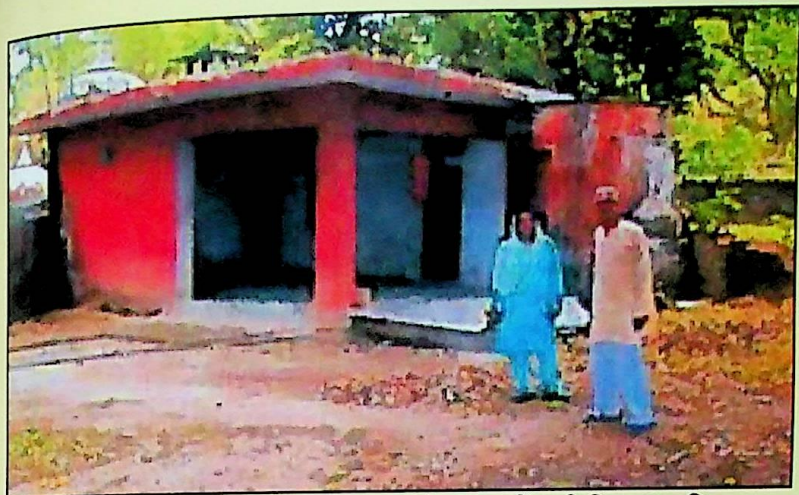
धलवाड़ी गांव (चिंतपूर्णी, हि०प्र०) की खड्ड में बनी विरक्त कुटिया

धलवाड़ी गांव की विरक्त कुटिया के बाहर बना हुआ धूना

धलवाड़ी गांव (हिमाचल प्रदेश) में खड्ड में बनी कुटिया का प्रवेश द्वार

अनुच्छेद–I

स्वामी दयानन्द 'गिरि' जी महाराज
के ग्रन्थों का

संक्षिप्त परिचय

भारतीय चिन्तन और साधना परम्परा में सब विद्याओं में *अध्यात्मविद्या* को सर्वोच्च पद प्राप्त है। संसार की सब विद्याओं को अपरा विद्या तथा अध्यात्मविद्या को पराविद्या कहा गया है। **"सा विद्या या विमुक्तये"** के अनुसार तो आध्यात्मिक विद्या ही विद्या है। अध्यात्मविद्या अर्थात् आध्यात्मिक जीवन की विद्या का एक ज्ञानपक्ष है और दूसरा साधनापक्ष है। यह विद्या अपने मूलरूप में तो सत्य का साक्षात्कार कर चुके प्राचीन ऋषियों की ही देन है। आदिकाल से ही इस विद्या को अपने आध्यात्मिक जीवन में जी कर दिखाने वाले वीतराग महात्मा हरकाल में होते रहे हैं, लेकिन होते ये विरले ही हैं। इन महात्माओं में भी अध्यात्मविद्या के ऋषितुल्य ज्ञाता तो और भी दुर्लभ होते हैं। इन महात्माओं का जीवन पूर्णतः निरभिमानी आडम्बर और चमत्कारों से विमुक्त पारदर्शी पवित्र निःसंग जीवन होता है। ऐसे वीतराग तत्त्वदर्शी सिद्धमहात्मा अध्यात्ममार्ग पर चलने के इच्छुक महात्माओं को तथा जन साधारण को अपना जीवन उन्नत करने के लिए अपने जीवन से तथा अपने प्रवचनों से सदा उत्साहित और प्रेरित करते रहते हैं। ये महात्मा अध्यात्म विद्या के आप्त पुरुष हैं; उनके आध्यात्मिक जीवन पर प्रवचन प्रामणिक वचन हैं। ऐसे महात्माओं के चरणों में बैठकर एक जिज्ञासु अपनी ज्ञान–पिपासा तृप्तकर कृतकृत्य हो सकता है। ब्रह्मलीन स्वामी दयानन्द 'गिरि' जी महाराज एक ऐसे ही विरले आत्मज्ञानी परमयोगी श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ संन्यासी महात्मा थे।

स्वामी जी अपने प्रव्रज्या–काल में दिल्ली के कराला–मजरी गाँवों तथा हरियाणा के अम्बाला, जगाधरी और कुरुक्षेत्र स्थानों में भी ठहरते और प्रवचन करते थे। चौन्तीस (34) प्रवचन जो 1986–87 में स्वामी जी ने उज्जड़ कुटि (कराला गाँव) दिल्ली–81 में और 8 प्रवचन 1996–97 में अम्बाला शहर, राय साहिब की बगीची में बोले थे, उन्हें कराला–मजरी के भक्तों ने पहले टेपबद्ध किया और उन्हें स्वामी जी को सुनाकर लिपिबद्ध कर प्रकाशित करवाया। स्वामी जी ने तीन ग्रन्थ जिनमें दो आध्यात्मिक जीवन पद्यावली भाग–1 व भाग–2 (व्याख्या सहित) हिन्दी भाषा में तथा एक ग्रन्थ इंग्लिश भाषा में Verses of the Divine Spiritual Life (With Explanation) पूर्ण रूप से स्वयं लिखे तथा इन्हें अम्बाला व अन्य स्थानों के धर्म प्रेमी समुदाय ने छपवाए। एक अन्य ग्रन्थ "आध्यात्मिक जीवन पद्यावली की कतिपय आवश्यक संज्ञाओं का विशद विवरण" जो स्वामी जी ने कृपा करके स्वयं बोलकर प्रेम मन्दिर के भक्त को लिखवाया और फिर उसे उन्होंने ही प्रकाशित किया। स्वामी जी की स्वीकृति के अनुरूप आध्यात्मिक प्रवचन संग्रह भाग–1 व भाग–2 का अंग्रेजी अनुवाद जो डॉ० ए० सी० मोद्गिल ने बड़े ही सुचारु ढंग से किया। वह भी अम्बाला तथा अन्य स्थानों के भक्तों द्वारा प्रकाशित किया गया है। स्वामी जी के प्रकाशित ग्रन्थ हैं:

1. आध्यात्मिक प्रवचन संग्रह (भाग–1 व भाग–2) आठवाँ संस्करण, 2015
2. आध्यात्मिक जीवन पद्यावली (भाग–1 व भाग–2) (व्याख्या सहित) परिवर्द्धित तथा संशोधित चतुर्थ संस्करण, 2003

3. आध्यात्मिक जीवन पद्यावली की कतिपय आवश्यक संज्ञाओं का विशद विवरण, परिवर्द्धित तथा संशोधित चतुर्थ संस्करण, 2003
4. आध्यात्मिक जीवन दर्शन (भाग–1 व भाग–2)
5. ओ३म् व सोऽहम् की व्याख्या
6. स्वामी जी के अनमोल अमृत वचन
7. Spiritual Discourses Vol.1 (A), 1(B), 2 (A) & 2 (B) 1st Edition, 2007
8. A Dictionary / Panorama of Spiritual Science — Adyatama Vidya, Ist Edition, 2010.
9. Verses of the Divine Spiritual Life (with explanation) Second Edition, 2010
10. Verses of the Divine Spiritual Life (With explanation) Part 1, Part 2 & Part 3.
11. Biography of Swamiji Maharaj in Hindi & English.

स्वामी जी संस्कृत भाषा में भी ये शास्त्र लिख सकते थे। लेकिन वे करुणाशील महात्मा थे। विद्वत्ता प्रदर्शन उनका लक्ष्य था ही नहीं। उनका उद्देश्य तो जन साधारण को प्राचीन ऋषियों के बताये सच्चे धर्म को समझाना और उन पर चलकर अपना कल्याण करने की प्रेरणा देना था।

स्वामी जी ने आध्यात्मिक जीवन के प्राचीन ऋषियों के ज्ञान को पहले स्वयं अपने जीवन में पूर्णतः जिया है और फिर इसे जन–कल्याण हेतु बोल–चाल की सरल हिन्दी भाषा में अभिव्यक्त किया है। जिस प्रकार प्राचीन सन्त महात्माओं और ज्ञानी पुरुषों ने मैत्री, करुणा, मुदिता, उपेक्षा, क्षमा, शील, दान, वीर्य, ध्यान–

समाधि तथा प्रज्ञा के दस आत्म बलों के सहारे अपने अन्दर के दस बन्धनों : दृष्टि, संशय, शीलव्रत परामर्श, राग, द्वेष, रूप राग, अरूप राग, मोह, मान और अविद्या से मुक्त करके आध्यात्मिक आनन्द का पूर्ण जीवन जी कर दिखाया उसी तरह उन्हीं प्राचीन साधक सिद्धों का अनुसरण करते हुए स्वामी जी ने उपर्युक्त दस बलों का अवलम्बन कर प्रकृति के दस बन्धनों से अपने–आप को मुक्त कर अपनी आत्म–शुद्धि की। उन में दस बल पूर्ण रूप से मूर्तमान थे और दृष्टि, संशय आदि बन्धनों का लेश भी उन में नहीं रहा था, ऐसा अनुभव उनके सम्पर्क में आने वाले सन्त–महात्माओं से लेकर साधारण सब लोगों को होता था। प्राकृतिक जीवन के उपर्युक्त दस बन्धनों का तथा उनसे मुक्त होने के दस बलों तथा अन्य उपायों का स्वामी जी ने अपने प्रवचनों में, आध्यात्मिक जीवन पद्यावली में और "आध्यात्मिक जीवन पद्यावली की कतिपय आवश्यक संज्ञाओं का विशद विवरण" में अति सरल भाषा में विवेचन किया है। स्वामी जी ने प्राचीन ऋषियों के प्रति कृतज्ञता प्रकट करते हुए यह बात अनेक स्थानों पर कही है कि यह सब ज्ञान जो उनके ग्रन्थों में बताया गया है, वह है तो प्राचीन ऋषियों तथा अध्यात्ममार्ग पर चलकर आध्यात्मिक आनन्द का पूर्णतृप्त जीवन जी कर दिखाने वाले अन्य महापुरुषों का; उन्होंने तो अपने अनुभव के आधार पर इसी प्राचीन सनातन सत्य धर्म के ज्ञान को आधुनिक बोलचाल की भाषा में कहा है। सभी ग्रन्थों का विवेच्य विषय साँसारिक जीवन से भिन्न आध्यात्मिक जीवन है। आध्यात्मिक प्रवचनों में इस विषय को श्रोताओं को ध्यान में रखकर बहुत सरल ढंग से कहा है, उसे ही शास्त्रीय पद्धति का

सहारा लेकर "आध्यात्मिक जीवन पद्यावली" में उसकी व्याख्या और भूमिका में बहुत विशद् रीति से विवेचित किया है। "आध्यात्मिक जीवन पद्यावली" के साथ "आध्यात्मिक जीवन पद्यावली की कतिपय आवश्यक संज्ञाओं का विशद् विवरण" ग्रन्थ जितना साधारण सुधीजन के लिए उपयोगी है, उससे अधिक यह प्राच्यविद्या तथा धर्म के अध्यापकों तथा विद्यार्थियों के लिए उपयोगी हैं।

धर्म के जो तीन स्तम्भ कर्म, उपासना और ज्ञान, प्राचीन ऋषियों ने बताए हैं, उन्हीं के अनुसार स्वामी जी ने धर्म के मार्ग का विवेचन अपने ग्रन्थों में किया है।

"आध्यात्मिक जीवन पद्यावली" (व्याख्या सहित) के पद्यों को जिन्हें 'छन्द' भी कहा गया है, तीन काण्डों–**चर्याकाण्ड, ध्यान तथा उपासना काण्ड** और **दर्शनकाण्ड** में व्यवस्थित किया गया है। प्रत्येक काण्ड को आगे विषयानुसार वर्गीकृत किया गया है। **चर्याकाण्ड** में बाह्य शुद्धि के धर्मों का विवेचन है। इसमें विद्यावर्ग से लेकर साधनापथ्य वर्ग पर्यन्त ग्यारह वर्ग हैं। **ध्यानोपासना काण्ड** ध्यान तथा भक्ति द्वारा मनुष्य को मुक्ति के स्वरूप में ले जाने के लिए उन्हीं के मुख्य धर्म को दर्शाता है। इसमें "सम्यक्दृष्टि वर्ग से लेकर इच्छादमन वर्ग तक 23 वर्ग हैं।" अन्त में **ज्ञानकाण्ड** या **दर्शनकाण्ड** है जो सत्यदर्शन द्वारा परममुक्ति के स्वरूप निरूपण में समाप्त होता है। इसमें **अविद्या परिचय वर्ग** से लेकर **आत्मप्रेरणा वर्ग** तक सैतीस वर्ग हैं। इस ग्रन्थ का महत्त्व स्वयं स्वामी जी द्वारा लिखित पद्यों की व्याख्या तथा ग्रन्थ की भूमिका द्वारा बहुत बढ़ गया है। ग्रन्थ की भूमिका में आध्यात्मिक जीवन के

स्वरूप, इसके फल, इसकी प्राकृतिक जीवन से भिन्नता, आध्यात्मिक विद्या के अधिकारी, आत्मा तथा पुनर्जन्म की प्रामाणिकता आदि विषयों को स्पष्ट कर समझाया गया है। ग्रन्थ के अन्त में '**प्राणापान स्मृति**' की क्रिया के चरणों की विवेचना है। 'प्राणापान स्मृति' की यह क्रिया अध्यात्म साधना की दृष्टि से ही नहीं अपितु शारीरिक स्वास्थ्य की दृष्टि से भी अति महत्त्वपूर्ण है। इसका विवेचन आध्यात्मिक जीवन पद्यावली के शास्त्रीय शब्दों की व्याख्या करने वाले ग्रन्थ के अन्त में भी दिया है। शास्त्रीय शब्दों की व्याख्यावाली इस पुस्तक में जिस एक अन्य अति महत्त्वपूर्ण विषय का विवेचन है वह विषय है, '**लोक चर्चा**' जिसके अन्तर्गत काम–लोक, भू–लोक, स्वर्ग–लोक, गो–लोक, ब्रह्म–लोक 'अरूप-लोक', विष्णु–लोक और शिव–लोक का विवेचन है। ऐसा प्रतीत हो रहा है कि स्वामी जी इन सब लोकों की यात्रा अपनी ध्यान–समाधि में कर चुके थे। इन सब लोकों से परे निर्वाणपद है।

स्वामी जी ने जिस चेतन स्वरूप आत्मा का दर्शन किया उसका ही प्रकाश उन्होंने जगत् के सब प्राणियों में देखा। इस प्रकार स्वामी जी आत्मज्ञानी और ब्रह्मनिष्ठ महात्मा थे।

इस लेख का उद्देश्य स्वामी जी के ग्रन्थों से प्राच्यविद्या के विद्वानों तथा धर्म जिज्ञासुओं तथा साधकों को परिचित कराना मात्र है। स्वामी जी के ग्रन्थ "आध्यात्मिक जीवन पद्यावली" की भूमिका के कुछ अंश उसके विषय का परिचय कराने तथा उसमें श्रोताओं की जिज्ञासा जगाने हेतु यहाँ उद्धृत किये जा रहे हैं :

"यह आध्यात्मिक जीवन पद्यावली ग्रन्थ, जैसा कि इस

नाम से ही ज्ञात होता है, केवल आध्यात्मिक जीवनरूप अपने विषय को ही बतलाता है, अर्थात् अपने व्याख्यान सहित यह ग्रन्थ केवल अपनी आत्मा में ही पाई जाने वाली स्थायी (सदा बनी रहने वाली), शान्ति तथा सुख को बतलाने वाला है। आध्यात्मिक जीवन से विपरीत बाह्य या भौतिक जीवन है जो जन्म से ही प्रत्येक प्राणी को मिलता है।"

"प्राचीन ऋषियों ने ध्यान में इस प्राकृत (प्रकृति द्वारा चलाये गए) जीवन की तुच्छता का अनुभव किया, पुनः इसके साथ चलने से केवल अन्त में दुःख तथा शोक और पश्चात्ताप के सिवाय अन्य कुछ भी हाथ लगने का नहीं, ऐसा देखा, इसीलिए उन्होंने इस प्रकृति या विश्व को अपने ही बलों से केवल अपने ही मार्ग पर चलाने वाली शक्ति को ध्यान में रखकर इसकी सूक्ष्मता तक समझकर जनसामान्य के हित या नित्य सुख के लिए इससे मुक्ति के मार्ग को खोज निकाला।" सांसारिक जीवन से निकल परम आध्यात्मिक जीवन में प्रवेश पाने तक की यात्रा आध्यात्मिक साधना की यात्रा है, जिसमें साधक के वही दस बल काम में आते हैं, जिनका वर्णन किया जा चुका है।

इस आध्यात्मिक यात्रा के स्वरूप को कुछ और स्पष्ट करते हुए स्वामी जी लिखते हैं, "वेदान्त शास्त्र में ब्रह्म या आत्मा का नित्य आनन्द रूप से साक्षात्कार का मुख्य कारण है अन्तःकरण या चित्त (मन) की शुद्धि। इसी अन्दर की शुद्धि या सफाई के निमित्त आध्यात्मिक जीवन को उन्नत करना है। इस शुद्धि के हो जाने पर मन बाहर या संसार की बहुत बड़ी उलझन या बन्धनों के झंझट से मुक्त हो जायेगा। मुक्त हुआ मन अपने में ही एकान्त

आसन पर सब बाहर के संसार को भूल कर अपने–आप में जागता हुआ इसी अपनी देह में विचार द्वारा उतरकर अपने शरीर में पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश इन पाँच भूतों को देखता पार करेगा; पुनः इसी में बहते हुए प्राण वायु को भी स्वयं द्रष्टा या साक्षी भाव से पार करेगा; तब अनन्त प्रकार से उत्पन्न होते मन को काम, क्रोध, लोभ तथा संकल्प–विकल्प आदि अनेक प्रकार के विकारों सहित देखता हुआ और क्षण–क्षण परिवर्तित होता हुआ देखकर इसमें भी अपने ज्ञान को द्रष्टा के रूप में बनाये रखकर पार करेगा। वैसे ही बुद्धि जो कि सब पदार्थों को समझती है, अनेक प्रकार से निश्चय करती है, इसे भी नाना–प्रकार से उत्पन्न होती तथा नष्ट होती देखकर इस से परे अपने–आप में ही द्रष्टा या साक्षी भाव से टिका रहेगा। अन्त में सुख या दुःख की वेदना या महसूस करने के क्षणों को देखते–देखते लाँघ जाने पर वह शुद्ध अन्तःकरण वाला मनुष्य केवल सदा ज्ञान की ज्योति से अपने–आप में प्रकाशमान नित्य आनन्दरूप आत्मा में स्थिरता या टिकाव पा जायेगा। इस आनन्द की स्थिति को थोड़ा ध्यान में बसाने से प्रतीत होगा कि यह आनन्द रूप मेरा अपना–आपा या आत्मा केवल एक मेरे शरीर या मन का ही सत्य नहीं परन्तु निखिल संसार के जीवों में ज्ञान रूप से यही एक केवल सत्य, सर्वव्यापक ब्रह्म है। जितना भी यह बढ़ा हुआ संसार है उस सब में यही अपनी माया शक्ति के साथ खेल रहा है। ऐसा अनुभव हो जाने पर वह उद्योगी पुरुष सदा सब में भी रहता हुआ अपनी आत्मा में ही रहता है। इसी को जो कुछ प्राप्त हुआ वही नित्य फल है। इसी के निमित्त ही यह आध्यात्मिक जीवन की उन्नति अपेक्षित है और यही इस ग्रन्थ का भी विषय है।"

"ज्ञानप्रसादेन विशुद्धसत्त्वस्ततस्तु तं पश्यति निष्कलं ध्यायमानः उपनिषद् के इस मन्त्र के अनुसार सब प्रकार की कला तथा सांसारिक उपाधियों से रहित निष्कल जो ब्रह्म है, उस ब्रह्म को वही पुरुष देखता है जो कि ज्ञान के प्रसाद वाला हो तथा सदा ध्यान करता हुआ ही रहे।"

अनुच्छेद–2

आध्यात्मिक जीवन पद्यावली (व्याख्या सहित) के कुछ पद्य (छन्द)

यहाँ पाँच छन्द तो अर्थ सहित उद्धृत हैं। शेष कुछ पद्य (छन्द) बिना अर्थ के ही उद्धृत हैं। जिज्ञासु "आध्यात्मिक जीवन पद्यावली" की व्याख्या सहित पुस्तक का स्वाध्याय कर उनका पूर्ण अर्थ समझ सकेंगे।

1. **किन्हीं ने, सत्य को कुछ देखा,**
समझा और वैसे ही गाया।
हुये तो, वे ही, परम महान्, जिन्होंने;
देखा सब कुछ पर मौन जताया ॥ ।45।

पिछले पद्यों में आत्म संयम, ध्यान, विचार द्वारा बोध को प्रकट करके जगत्, आत्मा और परमात्मा के सत्यों को साक्षात्कार करने की प्रेरणा दी गई थी, तथा उसका शास्त्र के अनुसार संक्षेप से मार्ग भी दर्शाया गया; परन्तु ये सब सत्य जो अन्त में किन्हीं ने देखे, उन सब सत्यों का सही रूप क्या है; इसके बारे में शंका होने पर उसके उत्तर स्वरूप आगे के तीन पद्य हैं, तथा उन्हीं सत्यों के बारे में उनसे सम्बन्ध रखने वाली कुछ आवश्यक सूचनायें हैं कि :–

किन्हीं संयमी उद्योगी ऋषियों ने अपने ध्यान में इन ऊपर कहे गये जगत्, आत्मा और परमात्मा के सत्यों को कुछ भी देखा; देख

कर पुनः उन्हें ध्यान की गम्भीरता में विचार करके विशेष करके समझा, अनुभव किया और जैसे कुछ समझा वैसे ही अपने छन्दों में गाया कि जगत् दुःख रूप है; आत्मा—सत्, चित्, आनन्द स्वरूप है; परमात्मा के बारे में बहुत प्रकार से सूचनायें दीं। ये सब एक प्रकार के ऋषि थे।

परन्तु इन से अन्य प्रकार के दूसरे भी उद्योगी, त्यागी, तपस्वी ऋषियों ने अपने ध्यान में सत्य या तत्त्व के बारे सब कुछ देखा; परन्तु देखने पर जब उस सत्य को व्यक्त या जगत् में प्रकट करने का उनका छन्द (इरादा) हुआ तो उस सत्य बतलाने के उपयोग के बारे में विचार किया तो उन्हें यह प्रतीत हुआ कि ये सब सत्य स्वयं ही ध्यान अवस्था में साक्षात्कार करने के हैं। दूसरों को बतलाने पर इनका कोई सही ज्ञान नहीं हो सकता। जैसे दुःख सुख जो हमने अनुभव किये हैं या कोई स्थान या वन अपनी खुली आँखों से देखा है, तो उसके बारे में शब्द बोल कर हम उनका सही चित्र अनुभव करने के योग्य दूसरे के मन में प्रकट नहीं कर सकते वे तो उनके स्थान पर ही पहुँचने पर प्रकट रूप से अनुभव में आयेंगे। परन्तु सत्य के अनुभव का मार्ग दर्शा सकते हैं। ये जो परम महान् पुरुष हुए उन्होंने सत्य के बारे में देखा सब कुछ, परन्तु मौन ही दर्शाया।

2. सत्य की राह बतायी,
और उस पर चल कर दिखाया।
और चलने चलाने वालों का,
इक धर्म का ही नाता बताया ।। ।46।

जबकि परम महान् पुरुषों ने सत्य के बारे में मौन ही दर्शाया अर्थात् उन्होंने 'सत्य क्या है?' 'कैसा है?' इसी बारे में वे मौन (चुप) ही रहे तो दूसरा पुनः सत्य को कैसे जानेगा ? इसी प्रश्न के उत्तरस्वरूप

यह पद्य है कि :–

उन परम महान् मितभाषी (माप के शब्द ही बोलने वाले) ऋषियों ने इन्हीं सब सत्यों को स्वयं प्रकट रूप से अपने आप में जानने के लिये राह (रास्ता) बतला दिया कि सब पाप, बुराई त्याग कर, सब अच्छाई अपना कर, पुनः मन की शुद्धि रखते हुए संयम, ध्यान और विचार के मार्ग से विवेक उत्पन्न करके इन सत्यों को अपने आप में आप भी वैसे ही प्रकट, निकट रूप से देखें जैसे कि हमने देखा है।

हां ! यदि यह सब बुराई के त्याग आदि के धर्म का जगत् में निर्वाह कठिन देखता हो तो उन्होंने अपने निदर्शन (मिसाल) से उस धर्म पर पूर्ण रीति से चल कर दूसरों को उत्साह दिया; उनके मन को दीप्त, प्रचण्ड कर दिया जिससे कि दूसरे भी उस पर चलने का उद्योग तथा उत्साह बनाये रखें। बाह्य जगत् (साधारण जन) को केवल बाहर के सुखों के ही रास्ते पर चलते देखकर यह निश्चय नहीं कर लेना चाहिये कि इन बाह्य (बाहर के) सुखों के बिना कोई दूसरा अन्दर का अध्यात्म जीवन (जीने का रास्ता) ही नहीं। यह सब उन महापुरुषों ने दूसरों को अपने त्याग और तपोमय जीवन से प्रेरणा दी।

उस मार्ग पर चलने वाले पुरुषों का, जो उस मार्ग पर चल चुके हैं तथा उसका अन्त पा चुके हैं ऐसे चलाने वाले पुरुषों के साथ केवल एक धर्म का ही सम्बन्ध (नाता–रिश्ता) बतलाया। अर्थात् जैसे धर्म मार्ग पर चलाने वाले धर्म रखते रहे, उद्योग से धर्म का निर्वाह करते रहे, ऐसे ही यदि चलने वाले शिष्य आदि भी धर्म रखें तब तो वे अपने हैं नहीं तो सांसारिक पुत्र आदि का इस में कोई नाता रिश्ता नहीं। ऐसे बाह्य सम्बन्धों से तो वे दूर ही रहते अर्थात् बाहर के पिता पुत्र आदि अनेक रिश्ते नातों से उनका कोई सम्बन्ध नहीं था। इस

लौकिक रिश्ते या नाते से धर्म या मोक्ष के मार्ग पर कुछ भी सिद्ध होने

का उन महापुरुषों ने नहीं बतलाया। पवित्र धर्म रखे तो अपना, नहीं तो न अपना न पराया। यही उनकी नीति रही।

3. मिथ्यामान को दिया नहीं राह,
चाहे कैसा भी हुआ अभियान।
यदि चाहे वह पृथक् निर्वाह,
तो करे भले वह पृथक् प्रस्थान ।। । 47 ।

पिछले पद्य में ही कहे अर्थ का यह पद्य स्पष्टीकरण करता है कि:–

मिथ्या पिता, पुत्र तथा अन्य वैसे ही जगत् के सम्बन्धों के मिथ्या मान को उन महान् पुरुषों ने कोई मार्ग नहीं दिया; अर्थात् उनको इस धर्म मार्ग में कोई महत्त्व नहीं दिया। जैसे कि कोई कहे कि 'मैं उस महान् गुरु का बेटा हूँ या शिष्य हूँ' इतने से यदि वह यह प्रकट करना चाहे कि 'मैं आदर या पूजा के योग्य हूँ' तो इस सब को उन सत्यों के पहचानने वाले पुरुषों ने कोई स्थान नहीं दिया और न ही मोक्ष मार्ग पर चलने के लिये ऐसे सम्बन्धों या नातों का कोई उपयोग ही बतलाया। यद्यपि कुछेक ऐसे अल्प (ढ़ीले) उद्योग वाले दुर्बल साधकों की ओर से कैसी भी विचार द्वारा योजना बनाई गई हो। कई एक श्रद्धालु तो यही समझ लेते हैं कि हमारा तो महापुरुषों के आशीर्वाद से ही कल्याण हो जायेगा, परन्तु अपनी दुर्बलतावश वे मिथ्या मार्ग को छोड़ नहीं सकते। कई एक अपने बाह्य स्वार्थों के चक्र में पड़े उन महापुरुषों के नाम पर मिथ्या बातों को भी धर्म में प्रवेश कर देते हैं, परन्तु महान् पुरुष या सत्य को पहचानने वाले इस सब को अपने साथ चलने के लिये कोई मार्ग नहीं देते। उनका जन तो वही है जो उनके सही मार्ग पर चले। और स्वयं व्यर्थ के सुखों का त्यागी, त्याग

के दुःख को सहन या पाचन (हजम) करने में तपस्वी; तथा ध्यान,

विचार के बल से ज्ञान को अपने अन्दर जगा कर स्वयं सब सत्यों का साक्षात्कार करे।

हां ! यदि कोई इस धर्म पर चलने की शक्ति न रखता हो तो उससे वे घृणा नहीं करते; उनके लिये भी वे दयालु अवश्य हैं। ऐसी अवस्था में वह अपने ही ढंग से निर्वाह चाहने पर उनसे पुनः पृथक् होकर ही चले। अर्थात् वह उसको अपना करके नहीं कहने के, चाहे वह अपने पूर्व का पुत्र, मित्र कोई भी हो। यहाँ निर्वाह शब्द का यह तात्पर्य है कि यदि कोई यह समझे कि अपनी ही रुचि या शक्तिभर धर्म निर्वाह करके या कर लेने पर वह पूर्णता को प्राप्त होगा तो भले वह वैसा समझे और अपने ही ढंग से चले, उसका महापुरुषों से उनके धर्म की नातादारी नहीं है अर्थात् वे उनके धर्मपुत्र नहीं कहे जायेंगे। इससे यह बात प्रकट हुई कि उनका अपना पराया कोई भी नहीं। धर्म ही अपना; और धर्म पर चलने वाले जन ही अपने होते हैं। यदि कोई जन अपने ही मन चाहे के अनुसार चले तो भले वह अपने ही मार्ग को अपनाये, उन महापुरुषों का वह कुछ भी नहीं है। उनके साथ उसका कोई सम्बन्ध नहीं।

4. **निज मन से जो बुझाया भगवान्,**
हो उसमें व्यक्त केवल उस जन का अभिमान।
श्रुत से मिलाकर कुछ जो पाया;
उसमें सुन्दर, शिव, सत्य समाया ।। । 48 ।

जगत् के अन्तिम सत्य के बारे में महापुरुषों ने मौन ही दर्शाया। परन्तु जिस भगवान् की भक्ति करनी चाहिये उसके बारे में उनका क्या सिद्धान्त (अन्तिम निर्णय) है। इस रहस्य को यह पद्य व्यक्त (प्रकट) करता है कि भगवान् को यदि कोई बाह्य या सांसारिक (दुनियावी) मन से अपने विचार द्वारा बुझाना या समझाना चाहेगा तो

वह केवल उस व्यक्ति विशेष की मानता का ही भगवान् होगा। और उस मानता से केवल उसी व्यक्ति का अभिमान ही प्रकट होगा।

यदि कोई साधक पुरुष श्रुत अर्थात् शास्त्र में सुने के अनुसार पुनः धर्म मार्ग पर चलकर साधना करता हुआ अपने ध्यान में उसे (भगवान को) जानने का प्रयास (यत्न) करेगा तो वह साधक पुरुष भगवान् को सत्य, शिव और सुन्दर स्वरूप से पहचानेगा।

इस पद्य का तात्पर्य यह है कि जगत् का कोई भी सुख सदा बना नहीं रहता। इसलिये यह जगत् की प्रत्येक वस्तु अपनी अच्छाई के साथ सत्य नहीं है। सत्य वह वस्तु कही जाती है जो सदा समान रूप से बनी रहे और अन्त में जगत् में सुख के स्थान पर दुःख ही मनुष्य के हाथ लगता है; इसलिये यह (सांसारिक सुख) शिव अर्थात् कल्याण स्वरूप भी नहीं। जो सदा भलाई के रूप में ही रहे वही 'शिव' (कल्याण) शब्द का अर्थ है। इसमें वैर, विरोध संघर्ष आदि होने के कारण यह सुन्दर या प्रिय लगने वाला भी नहीं है।

परन्तु भगवान् इस जगत् से सदा मुक्त होने से तथा अपने नित्य ज्ञान स्वरूप में ही रहने के कारण से सत्य है; और सदा सब जगत् के बन्धनों से मुक्त होने के कारण से स्थायी सुख शान्ति का भण्डार है। इसीलिये शिव या कल्याण रूप भी है। सब वैर, विरोध संघर्ष से परे होने के कारण सब के चाहने योग्य अतीव सुन्दर भी है। यही सत्य, शिव, सुन्दर स्वरूप भगवान् भक्ति के योग्य है। जब ऐसे भगवान् के ये सब गुण उसकी भक्ति द्वारा किसी भक्त या महात्मा में प्रविष्ट हो जायेंगे तो वह भी सत्य, शिव और सुन्दर स्वरूप वाला ही दूसरे प्राणियों को देखने में आयेगा। यही गुण युक्त (सगुण) भगवान् पद्य में चर्चा में लाया गया है।

5. **तुमने नहीं देखा, नाम सुना भगवान्,**
फिर कैसे करोगे निज मन से उसका ध्यान ?
सब शुभ गुणों की उसकी मूरत बनाओ;
नामों के सतत् स्मरण से निज मन में बैठाओ ।। ।49 ।

पिछले पद्य में दर्शाया गया कि भगवान् का सत्य, शिव, सुन्दर स्वरूप भजने के योग्य है। यह पद्य उसके भजन या भक्ति की प्रणाली (मार्ग) को दर्शाता है कि :–

किसी भी आजकल के व्यक्ति ने भगवान् को अपनी लीला धरती पर करते तो देखा नहीं कि जिससे वह उसका ध्यान कर सके; उसका नाम अवश्य सुना है। तो पुनः उसका ध्यान कैसे किया जाये? यह शंका पद्य में करने पर उसका उत्तर नीचे की दो पंक्तियों में दिया गया है कि उस भगवान् में सब वैराग्य, क्षमा, संतोष आदि गुण और मैत्री, करुणा, मुदिता, उपेक्षा, क्षमा, दान, शील, ध्यान, वीर्य, प्रज्ञा आदि बलों की मूर्ति अपने मन में बनाओ और उसके इन्हीं गुणों वाले भगवान् के नामों द्वारा सतत् (लगातार) स्मरण करते हुए उसे सदा अपने मन में बैठाओ। इस पद्य का तात्पर्य यह है कि मनुष्य अपने जीव सुलभ (जीव में पाये जाने वाले) काम, क्रोध, लोभ आदि अनन्त विकारों वाला है। वैसे ही ईर्षा, मत्सर, द्वेष, राग, संशय, मान, मोह और अविद्या आदि बन्धनों से युक्त है। यही इस जीव की दुर्बलतायें हैं। तो साधक पुरुष का कर्त्तव्य है कि जब–जब उसके मन में कोई विकार या बन्धन उसे बाधा (पीड़ा) पहुँचाये तब वह स्थिरतापूर्वक उससे विपरीत भगवान् के गुणों का अपने मन में चित्र खींचे। काम या तृष्णा की बाधा पर भगवान् के वैराग्य का स्मरण करे; क्रोध में क्षमा का; लोभ में संतोष का; वैसे ही ईर्षा, मत्सर और द्वेष में भगवान् के मैत्री के बल का चित्र अपने मन में धारण करे। पुनः,स्वयं भी अपने सब बन्धनों के विपरीत भगवान् के सब बन्धनों से मुक्त ज्ञान का

शान्त चित्र अपने मन में बैठाये या बसाये। इससे उसे सत्य, शिव और सुन्दर स्वरूप भगवान् का दर्शन होगा तथा स्थायी शान्ति प्राप्त होगी।

इस पद्य का तात्पर्य यह है कि जैसे–जैसे जगत् के काम, क्रोध, लोभ आदि विकार मन में प्रकट हों वैसे–वैसे स्वयं भी भगवान् के गुणों को स्मरण करता हुआ भगवान् का भक्त अपने मन में भी विचार द्वारा भगवान् के वैराग्य, क्षमा, संतोष आदि गुणों को धारण करने का प्रयास करे। वैसे ही दूसरों के सुख में ईर्षा या द्वेष आदि की अवस्थाओं में भगवान् के मैत्र्यादि बलों को अपने मन में उपजा कर अपने अन्तःकरण की शुद्धि द्वारा भगवान् की गुणमयी मूर्ति धारण करे। इसी से भगवान् के स्वरूप का ध्यान चिन्तन बढ़ेगा और भगवान् में बसने वाली शान्ति सत्य ज्ञान द्वारा प्रकट होगी। पूर्ण ज्ञान पाने के लिये ध्यान के बल को बढ़ाये। भगवान् पूर्ण ज्ञानवान् होने से संसार के सब अविद्या आदि बन्धनों से मुक्त है। वैसे ही उसके भक्त को भी होना है।

6. **शुभ गुण किसी का जो, दृष्टि में समाये,**
निज में हर्षा कर उसको मन में बसाये।
ईर्ष्या जाये, द्वेष छूटे, टूटे अभिमान;
अल्पता का भाव छूटे, ब्रह्म में प्रयाण ।।50।।

7. **किसी का अपराध भी न मन में बसाये,**
तासे क्रोध क्षोभ मिथ्या कर्म कराये।
करुणा का संग राखे पर शोधन का भाव;
शम सुख सहित देखे विद्या का प्रभाव ।।52।।

8. दूजे के संग कहीं टक्कर मत हो, शमन करन को सीख,
मैत्री आदि संग मेल जो राखो, इक ईश पड़ेगा दीख।
स्वपर में, बस, वह इक राजे विघ्न रहन न पाय;
आत्मा औ परमात्मा सब में, सुख समाधि संग भाय।।292।।

9. चलते का है रास्ता, करते को ही काम।
हिम्मत से ही सिरे चढ़े, परिश्रम बने इनाम।। 198 ।।

10. मन तेरे बसे, ऐश्वर्य भोग,
मेरे कहे से कटे न, तेरा रोग।
जग में सफलता ही, जोये तेरा मन;
अन्त भले का, बने कैसे साधन?।। 20।।

11. थोड़े ध्यान से, मन से उतर जायें,
मन, काया भी पवित्र सुख पायें।
बन्धा कर्म संग जीवन हो निराश,
करे नैष्कर्म्य सुख का विनाश।।28।।

12. आपहु किये बिना कछु बने नहीं बात,
दूजे के बताने से टूटे न घनी रात।
शुद्ध मन निज में ही सामर्थ्य स्वयं पाये,
सूझने का सभी कुछ स्वयं ही सुझाये।।40।।

13. काम के सुखों में, दिन सारा बीत जाये,
इन्हीं की प्रतीक्षा में, जीवन बिताये।
ऐसा लागे मरने को ही जन्मा था यह देह,
प्रकृति की चाकरी में बिना सन्देह।। 41 ।।

14. जीव के अवगुणों के विपरीत, गुण का धाम,
दुर्बलता प्रतीप (विपरीत) उसके, सुमिरे बलों के नाम।
नाम द्वारा अर्थ चिन्तन, सुन्दर मन का योग,
अपने में जो धारण करले, कट जाये उसका रोग।।52।।

15. सब का अन्तर्यामी जो, निश्चय सब को बसाये,
क्षण–क्षण वह चमके फिर कहीं छुप भी जाये।
बस व्यक्ताव्यक्ति यह दोनों इसके खेल;
यही! बसे वासुदेव तुम जाओ चुप्पी में हेल।।54।।

16. समय पाय बल पावें पूरा ले दुःख में जीना सीख;
दुःख हेतु सुख तृष्णा त्याग कर सत्य पड़ेगा दीख।
जो है जैसा वैसा ही दीखे, यही है सत्य प्रमाण;
स्मृति, ध्यान, वीर्य बल राखे, संग श्रद्धा का प्राण।।60।।

17. तृष्णा विषयों की आये, याद सुख की दिलाये, बहु मन को लुभाय है,
अनास्था कराये सच्चे धर्म को भुलाये, और दुःख से डराये है।
वीर्य विघ्न हटाये, स्मृति ध्यान को बुलाये, या से सत्य को चमकाये है,

श्रद्धा ही बचाये, वीर्य विघ्न टलाये, स्मृति ध्यान को बुलाके,
सकल सत्य को सुझाये है।।61।।

18. क्या मैं करता हूँ कैसे चलूँ ?
करूँ वह मैं न जिससे डरूँ।
वश में देहादि कर जो चल सका;
कुछ समझा, सीखा जीवन (पर) जो न थका।। 105।।

19. धर्म का संगी न मिलने पै शोक में कभी न खोये,
धार्मिक जन का जीवन खोजे कभी हुआ जो कोये।
पूर्ण प्रज्ञ सर्वज्ञ की चर्या में श्रद्धा राखे प्रीति;
उन्हीं के पद चिह्नों का हो अनुगम छोड़े न उनकी रीति।।321।।

ये कुछ ही पद्य हैं, जिनके अर्थ स्पष्ट हैं। ये पद्य स्वाध्यायी धर्म मार्गी लोगों की जिज्ञासा को और तीव्र करने के लिए हैं। जिज्ञासा की पूर्ण तृप्ति के लिए "आध्यात्मिक जीवन पद्यावली" का स्वाध्याय करें। 'पद्यावली' में स्वामी जी ने पद्यों की व्याख्या भी स्वयं लिखी है।

स्वामी जी के ग्रन्थों का यह अपूर्ण परिचय है। मानव जीवन का पवित्रतम स्वरूप आध्यातमिक जीवन है और इसीलिए भारतीय मनीषियों ने अध्यात्मिक–जीवन की विद्या को मानव जीवन की अन्य सब विद्याओं से ऊँचा माना है। स्वामी जी जैसे ज्ञानी, तपस्वी और योगी महात्मा द्वारा रचित अध्यात्मविद्या के ये ग्रन्थ प्राचीन ऋषियों के ग्रन्थों की तरह ही प्रामाणिक हैं। ऐसे हिन्दी भाषा में अध्यात्मविद्या के इतने प्रामाणिक ग्रन्थ बहुत ही कम हैं। इन ग्रन्थों के संबंध में स्वामी जी ने भक्तों से बात करते हुए जो कहा उसका उद्धरण यहाँ करना महत्वपूर्ण है:

स्वामी जी कहने लगे, नारायण! यह जो कुछ भी इन पुस्तकों में लिखा है, यह मेरा अपना नहीं है। यह अनादिकाल से, जब से यह सृष्टि रची गई है, तब से सृष्टि रचयिता ने सृष्टि रचते समय जो शब्द बोले थे वे ज्यों के त्यों ब्रह्माण्ड में व्याप्त थे। सृष्टि रचयिता के वे शब्द आजकल की भाषा में तो थे नहीं, वे तो वैदिक संस्कृत में थे। हमारे प्राचीन ऋषियों ने अपने ध्यान में उन शब्दों को ज्यों का त्यों सुना और सुनकर उन्हें कहीं पत्तों पर, जमीन पर या दीवारों पर लिख दिया। बस! हमने तो इतना ही कार्य किया है कि उन ऋषियों द्वारा लिखे हुए शब्दों को, जो वैदिक संस्कृत में थे उन्हें आम बोलचाल की भाषा में लिख दिया ताकि आधुनिक युग में लोग उन्हें पढ़कर तथा समझकर अपने जीवन में उतार सकें और अपना कल्याण कर सकें। हाँ! एक बात तो अवश्य है कि भगवान् ने सब से पहले यह विद्या ब्राह्मण को दी क्योंकि हमारे पूर्वज जो ऋषि थे वे ब्राह्मण थे। यहाँ ब्राह्मण का अर्थ स्पष्ट किया जाता है कि जो ब्रह्म को जानता है।

***

अनुच्छेद–3

स्वामी जी के प्रवचनों में से लिये गये कुछ अमृत वचन :–

तपस्या का प्रभाव : अब जैसे पुराने महात्माओं व ऋषियों की कथा है, एक बड़े पहुँचे हुए महात्मा थे। कई–एक व्यक्तियों के मन में आया कि देखें, संसार जिसकी प्रशंसा करता है, वह महात्मा कैसे हैं? चलो! महात्मा को कुछ कहा जाये जिससे कि अपना थोड़ा समय ही बीत जायेगा। वे सत्संगी मनुष्य तो थे नहीं, तो वे जाकर उनसे उल्टे–सीधे ऐसे–वैसे प्रश्न करने लगे। उनका उनसे कुछ भी सीखने

का मन तो था नहीं। महात्मा उनके प्रश्नों का जवाब देते रहे। जैसे–जैसे काफी देर हो गई, देर होते–होते बजाय उनके सत्संग का लाभ उठाने के उन्होंने उनकी निन्दा ही करनी शुरू कर दी "सत्यानाशी कहीं के, ऐसे ही ठग घूमते रहते हैं और कोई कार्य तो बनता नहीं, उल्टी–सीधी कई प्रकार की बातें कह दीं।" अब यह सुन कर महात्मा ने सोचा कि ये व्यक्ति मेरे से कुछ सीखने वाले तो हैं नहीं, इसलिए मैं अपने–आप में स्मृति से सम्भला रहूँ जिससे कि मेरी ओर से इनके प्रति कुछ खोटा बर्ताव न हो जाये। अब वह महात्मा बहुत पहुँचे हुए थे और पूर्ण शक्ति वाले थे जैसे अवतारी पुरुष होते हैं। उनके मन में यह शब्द–सा हुआ कि यदि इनको आप थोड़ा विपरीत दृष्टि से देख लो तो इन सब के सिर उड़ जायेंगे जो तुमको ऐसे ज्यादा बोलते हैं। इसके बजाय महात्मा उन उल्टा बोलने वालों को कुछ कहें, उन्होंने अपने उधर झुकने वाले मन को ही इस प्रकार सम्बोधित किया कि "तुम तो मेरे वैरी हो जो कि उनको दण्ड देने के लिए झुक रहे हो, तुमको तो मैं अपने वश में रखूँगा पर वे मेरे वैरी नहीं हैं; इसलिए उनको मैं कुछ भी विपरीत नहीं बोलूँगा।" देखो! यह सम्भली हुई अवस्था है। अब ऐसे मनुष्य को कौन बाहर खींच कर ले जायेगा, कौन उसके सुख को बिगाड़ेगा? अच्छा! मान लो उस समय उन्होंने ऐसा कुछ कर दिया होता तो करने के बाद फिर वे पछताते कि वे तो नादान थे, बच्चे थे, मान–अहंकार के अधीन होकर व्यवहार किये जा रहे थे, उनमें अपने ढंग का क्रोध था, शान–शोभा दिखाना चाहते थे, यदि तू भी उन्हीं की तरह बन गया तो तेरे अन्दर क्या अच्छाई रही? तो ये होते हैं महात्मा और धर्मात्माओं के वचन। ऐसे मनुष्य फिर किसी से उलझते नहीं है। उनका आत्मा में अपने–आप ही शब्द होता है। जिनके अन्दर ज्ञान की शान्ति होती है वे किसी को शाप नहीं देते, वे अपने साथ दुःख को

सहन कर लेते हैं। फिर ऐसा करते–करते अन्त में बात यहाँ तक पहुँची कि महात्मा तो चुप रहे, जब उन्होंने देखा कि वे चुप हो गए तो वे जो अपनी हँसी खेल वाले थे, उन्होंने कहा कि "कहो बाबा जी! तुम तो चुप हो गए", तो महात्मा ने कहा "चुप तो हम इसलिए हो गए क्योंकि आप की बात का कोई जवाब तो बनता नहीं है, कोई सीखने–सिखाने की बात हो तो कोई जवाब भी दें। अब तुमने जो बोलना है, बोलते रहो और तुमने भी अपनी बातें तो सुना ही दी हैं, बस! इसलिए हम चुप कर गए।" थोड़ी देर बाद उनको हैरानी सी हुई कि भई! देखो महात्मा को कुछ हुआ नहीं अर्थात् महात्मा तो अपने–आप में शान्त ही रहा, बल्कि उन्होंने हमारा कोई दोष भी नहीं देखा, तो एक ने कहा–"बाबाजी, हमने आपको बड़ी गालियाँ सी दी हैं, हमको क्षमा करना।" महात्मा जी ने कहा–"कोई नहीं, गाली कुछ नहीं दी, लेना और देना चार हाथ का सौदा होता है, दो हाथ लेने वाले, दो हाथ देने वाले। तुमने दी, मैंने ली नहीं, तो तुम्हारी वस्तु तुम्हारे ही पास रही, मेरे पास नहीं आई।" देखा महात्मा का वचन, तो दूसरा क्या कहने लगा–"महाराज! आप तो भगवान् हैं परन्तु फिर भी हमने आपको दुःख दिया।" महात्मा जी ने पुनः कहा–"देखो! तुम्हारे ये वचन कहने से मैं नाराज़ नहीं हूँ, तुम जानते नहीं, हम साधु हैं, तपस्वी हैं, तपस्या करने वाले हैं। तुमने यदि हमको दुःख दिया तो हमने आराम से सहन कर लिया। दुःख सहन करने का नाम ही तो तप है। जैसा मैंने पहले कहा, ठण्डी और गर्मी; ठण्डी सहन कर ली, गर्मी सहन कर ली, यह तो चमड़ी का तप है। इसी तरह यदि आपने किसी का कड़वा वचन सहन कर लिया, यह मन का तप है। अब किसी का ज्यादा मान–अपमान का वचन सहन कर लिया यह अन्दर और कड़ाई का तप है, तो ये सारे सहन ही तो करने होते हैं। तो मैंने जो यह सहन कर

लिया तो मेरी कितनी तपस्या हो गई। अब तुम्हीं बताओ, तुम भी बुद्धिमान हो, तपस्या का क्या फल है?" तो वे बोले–"अजी महाराज, तपस्या का फल तो सीधा स्वर्ग है।" महात्मा जी ने कहा–"तो फिर हमको स्वर्ग मिलेगा, तुम क्यों दुःखी हो रहे हो।" देखो! यह होता है–महात्मा का वचन। अब कहने का तात्पर्य (मतलब) यही है कि इनका संसार में कोई वैरी नहीं।

***

काम क्रोध व लोभ से छुटकारा : ऐसा सुना है कि काम, क्रोध व लोभ जीवन में सारे अनर्थों की जड़ हैं। जैसे गीता में लिखा है कि आत्मा के नाश के काम, क्रोध व लोभ तीन दरवाजें हैं। इसलिए पहले इन तीनों को त्यागे। काम, क्रोध, लोभ आदि के शब्द इतने दुनिया में घूमते हैं कि जैसे मनुष्य जानता है कि मैं बड़े आराम से इनको समझता हूँ। परन्तु इसका नाम समझना नहीं है। इन काम, क्रोध आदि शब्दों को जानना केवल श्रवण (सुनना) है। समझना यह है कि एकान्त में बैठ कर यह विचार करना कि कौन–सा ऐसा काम हमारा वैरी है; कौन–सा ऐसा क्रोध है, जिसे नरक का दरवाजा कहा है; कौन सा ऐसा लोभ है? इन सबको अपने जीवन में उसने क्या–क्या नाटक किया? जब इस प्रकार से आप इनको देखेंगे तो आपको सारी इनकी लीला भयंकर दिखाई देगी। जिस सत्य को देखते हुए उस ऋषि या अवतारी ने इन काम, क्रोध व लोभ को तीन नरक के दरवाजे बताया, उसी सत्य को देखते हुए अर्थात् अपने ध्यान में रखते हुए व परखते हुए आपको भी समझना है। जब आपको भी मनन करने से आपके मन में भी यह सत्य उतर गया कि काम, क्रोध व लोभ नरक के दरवाजे ही हैं, तो समझो! आपका विचार अन्दर जाग गया। यह अन्दर जागा हुआ विचार आत्मा को बड़ी नजदीकी से छू लेगा अर्थात्

आत्मा को पा लेगा। इस आत्मा में ही वह सुख छुपा हुआ है, जिसको पाने के बाद मनुष्य को होता है कि जो पाने की वस्तु थी, वह प्राप्त कर ली, अब इसके बाद पाने का कुछ भी नहीं रहा है।

गीता के एक सादे श्लोक का भावार्थ भी है कि जिस आत्मा के सुख को पा करके मुनष्य समझता है कि जिसको मैंने पा लिया, इसके परे कोई दूसरा लाभ ही नहीं है। जिसमें टिका हुआ अर्थात् जिसके आनन्द में बैठा हुआ मनुष्य यह समझता है कि अब उसको बड़े से बड़ा दुःख भी चलायमान नहीं कर सकता। यह आत्मा का सुख ही ऐसा है; परन्तु यह अन्दर ही है। यदि यह सुख नहीं मिला तो समझना चाहिए कि हर समय आत्मा को अन्दर यह पता लगता रहेगा कि किसी वस्तु की कमी है चाहे बाहर संसार के सारे सुख भी मिले हुए हों। वह सोचता है कि अभी भी कोई वस्तु का टोटा है, घाटा है। चाहे आप संसार की कोई वस्तु भी प्राप्त कर लो, उसका सुख थोड़ी देर ही रहेगा, फिर टोटे का टोटा है।

***

कल्याण का मार्ग : कल्याण का मार्ग (रास्ता) यही है कि जिसको धारण करके कम–से–कम यह जीवन दुर्गति के रास्ते से तो बच जायेगा। दुर्गति क्या है? बस! प्रकृति के रास्ते से ही चलना। काम आया, उसकी आज्ञा पालन कर ली। लोभ आया, ज़्यादा खाना खा लिया चाहे खाने के बाद में बीमारी ही हो जाये। क्रोध आया और वह खोटे वचन बुलवा गया। इस प्रकार जो यह प्रकृति का खेल है, उसमें मनुष्य सुख को ही दृष्टि में बसाकर, न जाने क्या–क्या बुरे कर्मों में लग जाता है। अब यदि इस प्रकृति के मार्ग (रास्ते) से ही चलते रहेंगे, तो कोई मनुष्य यह नहीं कह सकता कि "उसकी सुगति होगी।" यह प्रकृति मनुष्य, पशु व पक्षियों में समान रूप से कर्म (काम) कर रही है।

परन्तु मनुष्य के अन्दर एक विशेष वस्तु (चीज़) यही बुद्धि–रूप ज्ञान है कि विचार करके सत्य को समझना और प्रकृति के मार्ग (रास्ते) से थोड़ा बच–बच कर चलना। उपनिषदों में भी कहा है कि "भाई! तुम सामर्थ्य को पहचानो।" संस्कृत में सामर्थ्य नाम 'ईश' का है। ईश का अर्थ है श्रेष्ठ सामर्थ्य वाला। उसी का नाम ईश्वर है। अब यह सामर्थ्य दो प्रकार का है, पहला ज्ञान का सामर्थ्य, दूसरा क्रिया का सामर्थ्य। बच्चे के अन्दर यह सामर्थ्य नहीं कि वह यह समझ ले कि प्रकृति के सुखों का अन्त सुख में होगा या दुःख में। बस! जब तक यह नहीं पता, तो ज्ञान का सामर्थ्य (शक्ति) नहीं जागा। लेकिन ध्यान में यदि मन को जगा लिया कि "इनका अन्त दुःख में ही है तो समझो कि ज्ञान का सामर्थ्य आ गया।" ज्ञान का यह सामर्थ्य विचार बिना, ध्यान बिना व विवेक बिना नहीं बढ़ता।

शास्त्रों में कहते हैं कि "मनुष्य के अन्दर ज्ञान ही अधिक है।" ज्ञान यदि मनुष्य में नहीं, तो मनुष्य और पशु में क्या अन्तर है? अब ज्ञान यही है कि "बाहर के सुखों का दुष्परिणाम (बुरा नतीजा) पहले से ही पहचान लेना।" अब पहचान तो लिया, परन्तु प्रकृति–शक्ति इन सुखों को पूरा करने के लिये बाहर धक्का–सा भी तो लगा रही है कि उन्हीं को ग्रहण करने के लिये चलो। ऐसी अवस्था में, ज्ञान के साथ यदि प्रकृति के धक्के को भी सहन कर लिया, तो समझो कि क्रिया का सामर्थ्य आ गया। यह क्रिया का सामर्थ्य ही प्रकृति के ऊपर वास्तविक (असली) अंकुश (खोटे परिणामों को रोकने वाला) है। अब जैसे–जैसे यह ईश–भावना आपके अन्दर बढ़ती गयी, तो समझो कि आप ईश्वर के भक्त बन गये। यह भावना वहाँ तक बढ़ाते गये कि जहाँ तक उस परिपूर्ण भगवान् का स्थान (जगह) है, जो सनातन (सदा बना रहने वाला) सुख का धाम है। इस प्रकार यत्न करते–करते मन को इस

प्रकार सुसंस्कृत (इस प्रकार से पवित्रता के संस्कारों से युक्त) करना कि "वह सब के सुख में सुखी हो, किसी के दुःख में हँसे नहीं; किसी के गुण को अवगुण न बनाये, प्रत्युत (बल्कि) उसके गुण की मन ही मन प्रशंसा करे और उसके गुण को देखकर अपने मन को प्रसन्न करे; किसी के अवगुण की तरफ़ ज्यादा ध्यान ही न दे (उपेक्षा), क्षमा का भाव रखे अर्थात् बाहर बिल्कुल ऐसा रहे, जैसे कि वह अपने–आप सब का दुःख सहन कर सकता है, परन्तु किसी को दुःख देता नहीं, यह है उन श्रेष्ठ पुरूषों का मार्ग।" अपने अन्दर समझ–समझ कर चलना। इन गुणों का अभ्यास करने वाले को दिखावा करने की आवश्यकता (ज़रूरत) नहीं। दिखावा करने लगे, तो मान आ जायेगा। अपने–आप में अभ्यास करते रहे, तो एक दिन पूर्णता भी आ सकती है। परन्तु इसका सबसे पहला फल तो यही है, दुर्गति से बचना। यही ज्ञान है। यदि यही ज्ञान मनुष्य को सही मार्ग (रास्ते) पर चलाने वाला बन गया, तो उसकी दुर्गति नहीं होगी। कम से कम वह मनुष्य तो बनेगा ही। उसकी सुगति होगी, वह देवता भी बन सकता है, उससे ऊपर के लोकों को भी जा सकता है। परन्तु परमपद यह है कि अत्यन्त मुक्ति हो गयी और भगवान् का सुख सदा के लिये खिल गया। इतना यदि हो गया, तो फिर वहाँ किसी प्रकार का अभाव (घाटा) नज़र नहीं आता कि "संसार छूट गया।" इस अवस्था में ज्ञान कभी समाप्त (बन्द) नहीं होता। यदि ऐसा हो जाये, तो संसार के बीच में हरकत बन्द न हो जाये अर्थात् बन्द तो होती है नहीं, तो इसलिये भगवान् का ज्ञान भी सदा बसा रहता है। यह सारी प्रकृति, जो चेत रही है क्षण–क्षण, यह उसी की समझ से चेत रही है।

जैसे हम जिस वस्तु को जैसा–जैसा समझते हैं, उसी के अनुसार ही वैसी–वैसी हरकत होती है। हरकत नाम 'क्रिया' है यानी प्रकृति,

और समझना नाम 'ज्ञान' है। ज्ञान और क्रिया का अनादि काल से जोड़ा है। भले उसको लक्ष्मी–नारायण कहो, शिव–शक्ति कहो, प्रकृति–पुरुष कहो। यह शास्त्रकारों ने अपने–अपने ढंग से कहा है। आपको इसे अपने अन्दर देखने की आवश्यकता (ज़रूरत) है और बाहर के शब्दों के चक्कर में ज़्यादा पड़ने की ज़रूरत नहीं है। इस प्रकार देखने पर पता लगेगा कि प्रकृति क्षण–क्षण बदलती हुई एक क्षण में और की और दीखती है। शरीर जैसा जन्मा था, वैसा नहीं रहा। इसको बदलाने वाला भी तो बैठा है। तो फिर ज्ञान ही वह बदल रहा है, तभी यह भी बदल रहा है। अतः उस ज्ञान की बदलती तेज़ गति में, वहाँ जाकर इसको प्रकट करना है, जहाँ पर ज्ञान–स्वरूप परमात्मा अपनी सूक्ष्म से सूक्ष्म मायारूप शक्ति द्वारा सारे विश्व की रचना आदि करता है। वहाँ तक ज्ञान को जगाकर हमें उसका साक्षात्कार करना है। जब ये बन्धन टालते–टालते आप भी वहाँ तक पहुँच गये, तो कहा जायेगा कि "परमेश्वर मिल गया।" अब इस परमेश्वर का सुख सनातन है, यह अजर–अमर है।

***

मुक्ति का मार्ग : सुख–शान्ति को पाने के लिए तथा सांसारिक बुराइयों से बचने के लिए प्रत्येक कर्म में स्मृति (सावधानी) रखनी आवश्यक है। अविद्या रूपी अन्धकार के कारण जन्म–मृत्यु का चक्र निरन्तर चलता रहता है। आत्मा के ऊपर पड़े अविद्या (अज्ञान) के पर्दे को हटाने के लिए सत्य (विद्या) के ज्ञान की आवश्यकता है। सत्य का ज्ञान होने पर मन से संसार खो जाता है। अतः दस बन्धनों से छुटकारा प्राप्त करने का प्रयत्न करना आवश्यक है। ये दस बन्धन हैं – 1. दृष्टि 2. संशय 3. शील व्रत परामर्श 4. राग 5. द्वेष 6.रूप राग 7. अरूप राग 8. मान 9. मोह और 10. अविद्या। इन्हीं से उत्पन्न होते हैं काम, क्रोध, लोभ आदि विकार तथा ईर्ष्या, मत्सर, अधीरता, भय आदि की भावनायें। ये दस बन्धन और इनसे उत्पन्न विकार, संसार में बांधे रखते हैं। संसार की दुर्गति से बचना और सुगति को प्राप्त करने से ही

परमपद की ओर अग्रसर होना होता है।

संसार में रहते हुए भी सांसारिक बन्धनों से मुक्त जीवन जीने के लिए भगवान् के दस बलों की भक्ति करनी आवश्यक है। ये दस बल हैं : 1. मैत्री 2. करुणा 3. मुदिता 4. उपेक्षा 5. क्षमा 6. शील 7. दान 8. वीर्य 9. ध्यान और 10. प्रज्ञा। आठ बलों के उपजाने से सांसरिक बन्धनों से मुक्ति मिलती है और ध्यान तथा प्रज्ञा बलों से सत्य प्रकट होता है।

बन्धनों के विपरीत थोड़ा बलों को, विकारों के विपरीत थोड़ा गुणों को भी समझना व अपने अन्दर पैदा करना पड़ेगा। सबके सुख में सुखी रहते हुए मैत्री भावना बढ़ानी पड़ेगी, दूसरों के सुखों को देखकर जलना नहीं, द्वेष नहीं करना, दूसरों के दुःख में दया रखनी, दूसरों के गुण तो देखना, परन्तु अवगुण नहीं पहचानना। इसी प्रकार विकारों से विपरीत जितने भी गुण हैं, उनको अपनाना। काम (इच्छा) के विपरीत वैराग्य, क्रोध के विपरीत क्षमा, लोभ के विपरीत संतोष व दुःख में धैर्य इत्यादि हैं। अब इन बलों व गुणों को धारण करने में, जो तंगी होती है, उसको सहन करे। दुःख में बच्चे की तरह रोये नहीं, और जब तक यह मनुष्य बच्चे की तरह बिना सोचे समझे चलता है, तब तक वह बालक ही है, भले आयु से बूढ़ा हो जाये। इस प्रकार इन गुणों व बलों को धारण करने के लिये मनुष्य को खूब प्रयत्न करना पड़ता है। रात्रियाँ जागकर, अकेले बैठकर, ध्यान में मन को जगाना पड़ता है, जिससे कि अपने अन्दर दोषों का ज्ञान हो और उनको हटाने के लिये गुण पैदा करने का यत्न हो। इस सम्बन्ध में मनुष्य अपनी आत्मा में डुबकी लगाये, जिसके लिए ध्यान में थोड़ा सच्चाई का ज्ञान जगाये। ध्यान का पहला लक्षण ही यह है कि अन्दर पहचान जाग जाये। भले ही वह पहचान अभी इतनी ही जागे कि अपनी

दिनचर्या का ही विश्लेषण (छानबीन) करके मनुष्य अपने मन की थोड़ी सफाई करता जाये।

अब इस प्रकार करते–करते अपनी आत्मा को जगा करके कुछ करने की तैयारी हो गयी, समझो ! आपने मनोमन संसार से बिछुड़ना (मुक्त होना) शुरू कर दिया। इस तरह यह मुक्ति का मार्ग (रास्ता) धीरे–धीरे आगे ही आगे चलता जाये, तो इसके लिये आवश्यक है कि : **"मनुष्य इन तीन के प्रति भी थोड़ी श्रद्धा करले। सर्वप्रथम, उस भगवान् के प्रति श्रद्धा रख़नी है, ज़िसने यह मार्ग (रास्ता) चला रखा है, वेद शास्त्र भी उसी के कहे हुए हैं, वह सनातन (सदा एक जैसा रहने वाला) है तथा अपने धाम में सदा विराजमान है, उसी ने यह मार्ग (रास्ता) इधर नीचे संसार में भेजा हुआ है। उसके प्रति भी इस प्रकार श्रद्धा रखनी है कि जब वह अपने धाम में पहुँचा बैठा है, तो हम भी अवश्य वहाँ पहुँचेंगे। अब हमने जिस मार्ग (रास्ते) से उस भगवान् के धाम तक पहुँचना है, उसका नाम धर्म है। सब अच्छाइयों में रहना, बुराइयों को त्यागना, मन की शुद्धि व सफाई करते रहना तथा थोड़ा–थोड़ा विचार को जगाते रहना ये सब धर्म के अंग हैं। अत: धर्म के प्रति भी श्रद्धा रखनी है, फिर तीसरा उन सब के प्रति भी श्रद्धा रखनी है, जो इस धर्म के मार्ग (रास्ते) पर चले हैं, चल रहे हैं तथा आगे चलेंगे।"** भले वह कोई छोटा मनुष्य भी है, उसके प्रति खोटी दृष्टि नहीं रखनी है, बल्कि उसकी अच्छाई को देखकर थोड़ा मन में प्रसन्न होना। धर्म के मार्ग (रास्ते) पर चलने वाले भक्तजनों के लिये अपने मन से थोड़ा नम्र रहना।

जितना भी इस मनुष्य के अन्दर इस देह तक बन रहा है, जो सारा देखने में आता है, यह सारा पुरुष ही जानना चाहिए। ये सांख्य और योगी इसी पुरुष की दुहाई देते हैं कि "भई ! पुरुष को पहचानो, पुरुष को पहचानो कि आप क्या बने हुए हो, कहां कैसे चल रहे हो,

बनाने वाला कौन था, क्या आपके अन्दर प्रकृति शक्ति थी?" जितना-जितना आप पहचानोगे, यह सब इस पुरुष की विद्या है। परन्तु क्या करें ? वे बाहर की जिम्मेवारियाँ, सिर पर ओटे हुए बोझे व वह छोटे दायरे का जीवन उस व्यापक दायरे में जाने नहीं देता; उस भगवान् के गुण अपने अन्दर आने ही नहीं पाते। उस भगवान् के नाम पर व उसकी जो असलियत है, उसके ऊपर श्रद्धा तक नहीं करने देता। तो सबसे पहला गुण यही रखना है कि न भाई ! इस छोटे दायरे से निकल कर व्यापक में पहुँचा हुआ और सर्वगुणसम्पन्न, सब बलों वाला व अपने-आप में सदा आनन्दमय रहने वाला कोई एक है अभी कोई है या नहीं, परन्तु कभी तो था, उस भगवान् के गुणों को अपने ढंग से अपने अन्दर धीरे-धीरे लाना है। उसकी श्रद्धा को ध्यान में रखते हुए सुबह उठते ही पहले उसका स्मरण किया; "हे प्रभो ! मैं आपकी शरण में हूँ, हे भगवन् आपकी शरण में हूँ और आपके ही जो बल व धर्म हैं, जिस तरह आपने धारण किये थे; उन्हीं को मैं अपने बल के अनुसार धारण करने का यत्न करूँगा। आपके उस धर्म का भी मेरे को सहारा है और उसकी भी मैं शरण में हूँ। फिर जिसके अन्दर छोटा-मोटा आपका बल दिखाई दे जाए, जो भगवान् के अनन्त भक्त हो गये हैं और आगे होंगे भी एक रूप से उन सबका भी मैं सहारा लेता हूँ।" तीन प्रकार से यह भगवान् की श्रद्धा यदि किसी के अन्दर बस जाये, तो इसमें भी वह संसार को भूलता है; इसको करने का बल भी मिलता है। इसमें किसी का कुछ लगता तो है नहीं, परन्तु अपनी 'मैं' जो है शायद बीच में अड़चन डाल दे, तो बात दूसरी है। नहीं तो यह थोड़ा-सा अपने मन को उधर संसार से छीनने का सादा रास्ता है। इस श्रद्धा के साथ-साथ अब थोड़ा फिर भगवान् का इन्हीं गुणों के रास्ते ध्यान किया; थोड़ा अपने जीवन को नित्यप्रति

देखा कि "कैसा बोला गया, कैसा सुना गया, कैसा खाया गया, किस तरह से और बर्ताव हुए, कोई मन में उल्टी बात तो नहीं आई।" ये भगवान् के थोड़े गुण हैं, जो कि सुने हुए हैं या फिर पुस्तक में पढ़े हुए हैं। यदि पढ़े हुए हैं, तो इनके अर्थ का भी थोड़ा चिन्तन कर ले। यही सब आत्मचिन्तन व भगवान् की भक्ति है।

***

स्मृति में रहें : भगवान् की भक्ति करने के लिए आप सब जगह अपनी होश व स्मृति में रहें; ध्यान में हर क्षण अपने को चेताते रहें और ज्ञान उपजा करके अपने को सम्भालते भी रहें। एक क्षण भी चूकने का नहीं है। हर समय जागते हुए यदि आप इस तरह से भक्ति करते रहे तो कर्मयोग, भक्तियोग (ध्यानयोग) और ज्ञानयोग अर्थात् एक–दूसरे के साथ जुड़े–जुड़ाए होकर आपको उस परमात्मा के पद (धाम) पर पहुँचा देंगे। यह सारा व्यवस्थित प्रयोग है। वह परमात्मा बारीकी में बैठकर सब की देह की मशीन को चला रहा है और उसका पता किसी को भी नहीं लगता, कारण कि तू–तू, मैं–मैं के अन्दर सब भूले बैठे हैं।

***

धर्म को अपने जीवन में धारण करें : शास्त्र कहता है कि प्रकृति से विमोक्ष पाओ अर्थात् प्रकृति से छुटकारा पाओ। प्रकृति के बन्धन से मुक्त होना है। प्रकृति की पाश (जाल) से मुक्त होने पर ही परमात्मा मिलता है। यदि आप अपने जीवन द्वारा इसको प्रमाणित नहीं करते हैं, तो शास्त्रों की सुनी हुई बातों को दूसरों के सामने सुना कर अपना अहंकार ही दिखाना है और केवल जीवन भर शास्त्रार्थ (बहस करने) में ही लगे रहना है। यदि आप कुछ धर्म की कमाई में लग गए तो चुप और मौन हो जाओगे। बाहर इसके बोलने की भी

जरूरत नहीं है। यदि कोई मनुष्य अपनी भलाई के लिए कुछ सुनना चाहे तो उसको दो शब्द कहने में कोई हानि नहीं है। इसके अतिरिक्त धर्म के बारे में तर्क–वितर्क करने की बिल्कुल आवश्यकता नहीं हैं। इतनी बारीक (सूक्ष्म) विद्या के बारे में हम तर्क कर ही नहीं सकते हैं; कारण कि चेतन तो वर्णनातीत है अर्थात् जिसका सही रूप से निरूपण नहीं किया जा सकता वह तो केवल अनुभव में ही लाया जा सकता है।

***

आत्मदर्शी बनो : ढीला मन जो थोड़े दुःख से डरने वाला और सुख की तरफ हर समय लपक रखने वाला अर्थात् कामना (इच्छा) के चक्र में पड़ा हुआ कोई कर्म भी ठीक नहीं कर पाता है। हर एक कर्म भटकते हुए ही करता है। भटके हुए मन से यदि आप ध्यान में भी बैठेंगे तो दो ही इस मन की दिशाएँ होंगी अर्थात् या तो मन संसार में भटकता रहेगा या फिर भटकन कम होने पर आलस्य, सुस्ती या नींद में चला जायेगा। उस समय नींद भी बहुत मधुर व प्रिय लगती है। इस प्रकार आपने इन दोनों तृष्णाओं को अपने अन्दर परखना है। स्वयं विद्वान् बने। केवल ग्रन्थों को पढ़ करके कोई पूर्ण विद्यावान् नहीं होता और न ही आत्मदर्शी (अपने–आप को देखने वाला अर्थात् अपनी परीक्षा करने वाला) होता है।

***

मन में कोई खोट न बसने दो : ध्यानमय जीवन बनाने के लिए सब बुराइयों से दूर रहना है। छल, कपट, पाप, चोरी, झूठ, तूफान आदि इनसे पहले बचना है। फिर अपना जीवन नियममय बनाना है। मन के अन्दर कोई भी खोट नहीं रहने देना है। किसी के सुख को देखकर चिढ़ना नहीं है और दूसरे के दुःख को देखकर हँसना भी नहीं है। किसी की थोड़ी–सी भी अच्छाई दिखाई देने पर मनोमन

वाह–वाह (प्रशंसा) करनी है। किसी के दोष को अपने मस्तिष्क (दिमाग) में नहीं रखना है। ये सब मैत्री, करुणा, मुदिता व उपेक्षा आदि भगवान् के बल हैं। इनसे उल्टे जो बने हुए हैं वे अभी प्रकृति के हैं।

***

साधना में आरम्भ में श्रद्धा और पर्यवासन में प्रज्ञा : पहले–पहल तो किसी के कहने से श्रद्धा से चलना है, कारण कि शास्त्रों में महात्माओं व गुरुजनों द्वारा लिखा हुआ है। अभी बल नहीं है। बल तब होगा, यदि बुद्धि स्वयं परखने लग जाये कि जो कुछ मैं करना चाहता हूँ वह किसलिए करना चाहता हूँ? जो समझ के साथ करता हूँ, इसी को हमारे शास्त्र, करने का दर्शन भी साथ रखना कहते हैं। इसका नाम फिलोसफी (दर्शन–शास्त्र) है कि जो कुछ करता है, वह अपनी समझ के साथ करता है कि किस हित (भलाई) के लिए मैं ऐसा कर रहा हूँ? किस लिए ऐसा भोजन व नशा पीना छोड़ रहा हूँ? यही नशे यदि नहीं छोड़ूँ तो ये एक दिन भविष्य में इतना पराधीन कर लेंगे कि छोड़ना चाहने से भी छूट नहीं सकेंगे। यदि इनको पूरा करूँगा तो दुःख व बीमारियाँ पैदा करेंगे। उसको यदि यह सब निगाह में रहता है तो वह नशे छोड़ने की तंगी को भी सहन कर सकेगा। यदि ऐसी समझ अभी नहीं जगी है तो उसकी परेशानी में प्रकृति (स्वभाव) बन गई है। उसकी नशा वगैरह पीने की मिठास, अच्छाई व उसकी प्रेरणा से होने वाले सुख पर तो नजर बनी हुई है, लेकिन इससे आगे होने वाले दुःख पर उसकी दृष्टि नहीं है। यदि कोई उस होने वाले दुःख पर दृष्टि रखे हुए है, तो केवल उसको ही प्रज्ञावान् समझा जायेगा। दुःख पर दृष्टि तब खुलेगी यदि सत्य को विचार और ध्यान में लायें।

***

मन की साधना : जिस समय कोई हुजक 'प्रेरणा' कुछ करने या पाने की इच्छा उठती है तो तुरन्त विचार जगाये व सोचने की शक्ति (स्मृति) रखें। स्मृति, ध्यान, और प्रज्ञा ये तीन सत्य भगवन्त लोगों के हैं, जो पहले कभी हुए हैं और जिनके ये उपदेश हमारे सामने चले आ रहे हैं। उन्होंने अपने जीवन को इसी रास्ते पर सारे संसार में चलाया है। इसलिए बुद्धि से पहले सोचें व समझें कि जो कर्म मैं करने जा रहा हूँ, अन्तिम हित के लिए होगा या अहित के लिए होगा? फिर यदि मन उधर अच्छाई की तरफ नहीं भी जाना चाहे व प्रकृति का विरोध भी हो, तब भी जबरदस्ती मन को उसी तरफ ले जाये। इस प्रकार यदि यह जोर जबरदस्ती (बलपूर्वक) मन को ले जाने की आदत पड़ गई तो वह मनुष्य पराधीन कभी नहीं जियेगा व अपनी आत्मा में मुक्त होकर ही जीवन–यापन करेगा। मुक्ति नाम बाहर के बन्धनों से छुट्टी पा जाना व दूसरों की दासता से रहित हो जाना है। वह बाहर के किसी प्राणी और पदार्थों से बंधा हुआ नहीं होना चाहिए। तभी मुक्त कहा जावेगा, नहीं तो बन्धनों से बंधे हुए का नाम बद्ध (बंधा हुआ) है।

***

कैसे करें भगवान् की भक्ति ?: उस भगवान् की भक्ति करनी है जो "पूर्ण ज्ञान से सम्पन्न है और विद्या व अविद्या को जानता है; कर्मों की गति और अगति को जानता है; सब बन्धनों और मोक्ष को भी भली प्रकार से जानता है।" ज्ञान ही भगवान् का स्वरूप है। यदि आपने अपने अन्दर जान लिया कि जो मैं खोटा कर्म करने जा रहा हूँ, उसका नतीजा अच्छा नहीं है, तो समझो! आपके अन्दर भगवान् की एक कला उतर आई, जो आपको सम्भाल लेगी। यदि यही ज्ञान आपके अन्दर नहीं जन्मा तो केवल परमात्मा ही अपनी माया लिए

हुए बैठा है, जो अपने विधान (नियम) के अनुसार ही काम करेगा। जैसे उसके अन्दर उद्वेग (जोश) आदि आयेंगे तो उसको उस समय सम्भालने वाला कोई नहीं होगा। इसलिए भगवान् की भक्ति करने के लिए राग, द्वेष त्यागना व अपने–आप को नियमों में रखना और बुद्धि को जगा कर परमात्मा को भी समझना कि अपनी माया के साथ वह अपने नियमों (उसूलों) के द्वारा किस तरह सारी दुनिया को चला रहा है? फिर मैं इसके चक्कर से निकल जाऊँ, जो माया आकर मुझे भी चला जाती है। जब आप अपना स्वार्थ ज्यादा रखेंगे तो आप कार्यरूप (व्यवहार रूप) में समभाव प्राप्त करके इसके चक्कर से नहीं निकल पायेंगे। इसके लिए थोड़ा त्यागी व तपस्वी बनना पड़ता है। आपकी पूर्ण भक्ति तभी होगी, जब सबके अन्दर आपने अपने समान आत्मा को समझ लिया और दूसरे के अन्दर भी एक आत्मा समझकर कार्यरूप में उसको बदलने लग गए व उसको बढ़ाने लग गये।

***

कर्मयोग, भक्तियोग और ज्ञान योग का व्यवस्थित प्रयोग : अपनी आत्मा को साधने के लिए तीन ही रास्ते कर्मयोग, भक्तियोग और ज्ञानयोग हैं। इनको व्यवस्थित ढंग से एक–दूसरे के साथ जोड़कर अपने साथ बनाये रखे। यह नहीं समझे कि कोई कर्मयोगी है तो उसका कर्मयोग से ही बेड़ा पार हो जायेगा और यदि कोई भक्तियोग वाला है तो उसका उससे (भक्तियोग से) बेड़ा पार हो जायेगा। ज्ञानयोग वाले इन दोनों से अलग होते हैं। ऐसी बात नहीं है कि किसी एक योग से ही किसी का बेड़ा पार हो जायेगा। ये तीनों योग एक मनुष्य के लिए हैं और एक–दूसरे से जुड़े हुए हैं। यदि व्यवस्थित ढंग से अर्थात् एक–दूसरे से जुड़े–जुड़ाए ढंग से आप इनका प्रयोग करेंगे और अपने काम में लायेंगे तो मुक्ति अवश्य

मिलेगी अर्थात् परमसुख मिलना निश्चित है। यह सारी गीता एक ही के लिए नहीं है बल्कि हर मनुष्य के लिए है। करोड़ों मनुष्यों के लिए अलग–अलग नहीं हैं। धर्म सबके लिए एक होता है। आपने अपने ध र्म का मकान इन तीन स्तम्भों पर खड़ा करना है और वहाँ तक खड़ा करना है; जहाँ उस परमपिता परमात्मा के आनन्द रूप धाम का प्रकाश हो जाये। उस प्रकाश में आपको ऐसा अनुभव हो जाये कि जो करना था, सो कर लिया और जो पाना था; सो पा लिया और पाने का शेष (बाकी) कुछ नहीं रहा; बस यही सारे का निचोड़ है।

***

मन को कैसे पहचानना है ? : एक मनुष्य जप करता है, पाठ करता है, ठीक है जप भी है, पाठ भी है; पर एक ये भी है कि थोड़ा मन को पहचानना सीखे, इस प्रकार विचार करे कि "हाँ भई! मेरे मन के अन्दर क्या आग जल रही है? मेरा मन क्या खाने के लिए सोच रहा है? अमुक (फलाने) ने मेरा मान नहीं रखा, ठीक है रखा तो नहीं पर अब तू बता क्या करेगा।" मन तो यही कहेगा कि "करना–कराना क्या है, वह मनुष्य अच्छा नहीं, कभी मेरा भी समय आयेगा तो मैं भी कुछ वैसा ही करूँगा। तो मना! तू जो कुछ करेगा उससे तो संसार में आगे ही आगे अपनी जिन्दगी को बिगाड़ेगा और दुःख ही बढ़ायेगा। करने–कराने से क्या है? तू कौन है अन्दर बोलने वाला? तू मान है, तू अहंकार है और कोई नहीं है, तेरी मैं क्यों सुनूँ? ये तेरी ही सुनने वाले हैं जो लड़–लड़ कर मरते हैं और नाना प्रकार के खोटे वचन बोलते हैं। यही चोरियाँ करते हैं, दुराचार यही करते हैं, डाके यही

2004 में ब्रह्मलीन होने से 2-3 माह पहले अम्बाला शहर में
सुधीर गर्ग के ऑफिस में चरण डालते हुए स्वामी जी महाराज
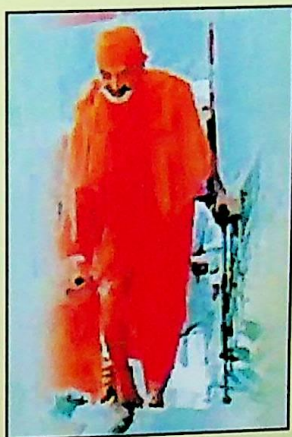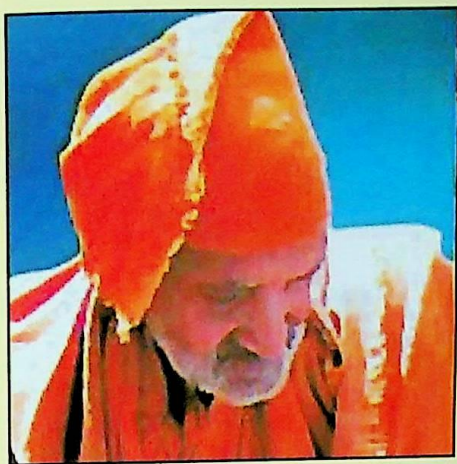
डालते हैं और छुपकर किसी का बुरा भी यही करते हैं और ऐसे करवाते हुए ये अपनी आत्मा में मनुष्य को कभी भी सुखी नहीं होने देते अर्थात् दिनों–दिन दुःख को ही बढ़ाते हुए अंत में दुर्गति को ही प्राप्त कराते हैं।" इसलिए उचित यही है कि "मैं तो तेरी मानता नहीं।" इस प्रकार अपने मन को बोलना सीखो। जो अपने मन को इस तरह से अन्दर शब्द रखकर बोलता है तो हमारे महात्मा–गुरु लोग कहते थे कि यह शब्द गुरु होता है, *"शब्द गुरु सुरति धुन चेला"* अर्थात् जैसा अन्दर से गुरु का शब्द हुआ उसी शब्द के अनुसार अपने–आप को संभालने में सुरति या प्रीति रखे, वही सच्चा शिष्य है। यह तो ऐसा है कि आप जितनें भी गुरु बाहर से बना लोगे वे आपको एक शब्द तो दे देंगे कि आप जप कर लो, यहाँ तक कि एक–दो चीजों (वस्तुओं) की शिक्षा भी दे देंगे, परन्तु चौबीसों घंटों का, तीसों दिन का और बारह मास का गुरु तो आपके अन्दर शब्द रूप में बस रहा है। परन्तु वह तब बस रहा है यदि आपको मन की पहचान आती है, यह नहीं कि थोड़ी–सी उसकी उल्टी बात थी, आप बुरा मान गए। अब बुरा मानने से जो अन्दर जहर लेकर बैठा है, वह इसके चेहरे पर दिखेगा। जब उसके सामने जायेगा तो वह पहचान जायेगा कि मेरे से अकड़ा हुआ बैठा है। तो अब बताओ, ऐसी अवस्था में बाहर से कहीं सुख मिला? तुम तो इसी तरह से अपनी जरूरतों व इच्छाओं के कारण सारे जगत् से गाली खाते हो, यह मन को बोलना ही तो है। अब बोल–बोल के यही कहना है कि सभी काम स्मृति (होश) से, मन को टिका कर करो; चाहे कपड़े धो रहे हैं, चाहे नहा रहे हैं, खा रहे हैं या कोई भी धंधा कर रहे हैं।

***

माया या प्रकृति की शक्ति को पहचानना और उससे मुक्त होना : माया या प्रकृति की शक्ति जो हमें सब कुछ छोड़ने पर मजबूर करके निद्रा में जाने को बाध्य करती है, उस निद्रा में देखने के विषय, सुनने, खाने, सूंघने के विषय चाहे जैसे भी आते रहें लेकिन जब वह शक्ति (माया) सोई हुई होती है तो वे विषय अपना प्रभाव नहीं दिखा सकते अर्थात् सब व्यर्थ हैं। वही शक्ति जागने पर सभी इन्द्रियों को (संस्कारों के कारण) उनके आहार अर्थात् विषयों की तरफ प्रेरित करती है। यही प्रजापति की शक्ति है जो कि कभी सुषुप्ति में जाकर विश्राम करती है और आनन्द का अनुभव करती है और जागने पर इन्द्रियों को विषयों की तरफ ले जाती है। इसी शक्ति को हमें नियन्त्रित (Control) करना है अर्थात् इसके कहने पर नहीं चलना है। इसके बाध्य करने पर हमें नींद में नहीं जाना है और इन्द्रियों को विषयों के सुख न मिलने का दुःख भी सहन करना है। यदि हम इस शक्ति के अधीन होकर काम करते रहे तो यह हमें जीवन–मरण से मुक्त नहीं होने देगी। यह यही चाहती है कि हम इसी झगड़े, इच्छा, राग, द्वेष में पड़े रहें। इससे बचने के लिए हमें विष रूपी दुःख को पीना ही पड़ेगा और हर समय जागना भी पड़ेगा। जिस प्रकार जब शंकर जी ने विष पिया था तो वे सारी रात जागते ही रहे थे, और शिव–भक्त शिव–रात्रि में इसी हेतु रात्रि जागरण करते हैं।

विषयों, विकारों से बचने के लिये हमें दुःखों को सहन करके उन्हें टालते रहने का अभ्यास करना पड़ेगा। इसके बिना चारा ही नहीं है। जैसे किसी ने यदि हमारा बुरा किया तो यदि उसके प्रति हमारी दुःख या द्वेष दृष्टि बन गई तो यह गलत है। जैसा ऊपर शक्ति के बारे में बताया गया कि वह शक्ति अज्ञान, अविद्या, काम, क्रोध,लोभ, मोह आदि के रूप में है और वह शक्ति सर्वत्र ही अपना काम कर रही

है। फिर हम भी तो जब किसी को दुःख देते हैं या कड़वा बोल जाते हैं तो वह भी किसी शक्ति के अधीन ही कर जाते हैं। वही शक्ति दूसरे से भी ऐसा ही करवा रही है। इस प्रकार उसे क्षमा कर देना चाहिए। या, यह देखो कि आप खुश जा रहे हैं और दूसरे किसी व्यक्ति की किसी इच्छा को चोट लगी हो तो वह दुःखी है और आपकी तरफ देखता है तो समझता है कि मेरे दुःख पर हँस रहा है। शायद वह इस हालत में आप पर क्रोध करे तो उसे क्षमा कर देना है या उसकी गलती पर उपेक्षा का भाव रखना है। इसके लिये सबसे पहले हमें स्मृति में रहना है तथा दुःख–दृष्टि नहीं बनने देनी है, उसके बाद ही हमें उस दुःख को मन, बुद्धि से टालना है। हम अपने बच्चों को भी उनकी गलती पर क्षमा कर देते हैं तो वही भाव समझकर हम दूसरों को भी क्षमा कर दें। इस प्रकार हमें उस बाहरी शक्ति (माया) को दूर करना है। आँखें गलत भी देखती हैं, इनको तो केवल अपनी भूख दूर करने से ही मतलब है लेकिन हमें अर्थात् स्मृति को ही यह पता है कि इसमें हानि ही है। अतः जब बाद में इनको इनका आहार देकर भी हमें दुःख ही होना है तो इन्हें अभी इनका भोजन न देकर तथा दुःख सहकर भी इनकी गुलामी तथा आने वाले दुःख को दूर कर सकते हैं तथा जिससे हम शून्य में अपने आपको स्थिर कर सकते हैं। यदि हमने किसी को दुःख दिया है तो उसका दुःख हमें ध्यान भी नहीं लगाने देगा। धीरे–धीरे मन को इसके सुखों की दासता से छुड़ाकर मुक्त हो सकते हैं। इसके बिना मुक्ति असंभव है। प्रकृति की उस शक्ति के कहने पर न तो हमें सोना है और न विषयों का भोजन ही इन्द्रियों को देना है। जैसे कहीं यदि खुजली होती है तो खुजली करने से वह और बढ़ेगी ही, अतः खुजली के दुःख को सहन करने अर्थात् न खुजलाने से वह समाप्त हो जाएगी। इन्द्रियां तो बच्चे की तरह हैं,

ये कहेंगी कि हमें हमारा भोजन दो तो हम खुश हैं नहीं तो दुःखी। इनको उस विषयों रूपी भोजन से होने वाले दुःख का तो पता है नहीं। अतः इनको चाहे प्यार से या तकरार से जैसे मर्जी समझाओ या वश में करो।

यदि काम, क्रोध, लोभ, मोह मर गए तथा सुख की दासता समाप्त हो गई और दुःख को सहना आ गया तो वही शमशान है जिसमें आत्मा रूपी शंकर जी निवास करते हैं। भगवान् विष्णु के गले में जो कौस्तुभमणि है उसमें अनमोल मोती–हीरे हैं। यदि उस कौस्तुभमणि को प्राप्त करना है तो वह दुःखों में छिपी हुई है। वह मणि हम दुःख सहकर ही प्राप्त कर सकते हैं।

***

इन्द्रिय संयम : आत्मा में कोई दुःख नहीं है, यह दुःख तो हमारे मन का ही है। मन विषयों के स्थूल प्रकाश से इतना चुँधिया चुका है कि इनके बिना इसे अपना अस्तित्व नज़र ही नहीं आता। यदि यह देखता है, सुनता है, सूँघता है, खाता है, बोलता है; तब तो यह समझता है कि मैं हूँ; नहीं तो इसे कुछ दिखाई नहीं पड़ता। जैसे एकदम तेज प्रकाश में से बाहर आने पर इसे बाहर की कोई वस्तु दिखाई नहीं पड़ती। यदि यह थोड़ी देर आँखों को बन्द कर ले तो उस अन्धकार को सहन करके आँखें खोलने पर इसे बाहर पड़ी सभी वस्तुएँ स्पष्ट दीखने लगती हैं। इसी प्रकार यदि मन, इन्द्रियों के विषय जैसे अधिक मीठा खा लें तो इसे कम मीठी वस्तु फीकी लगने लगती है। इसी प्रकार यदि मन इन्द्रियों के विषयों से अपनी सत्ता को अलग कर ले तो इसे अपने अन्दर शून्यता में शान्ति मिल जाती है जो कि आकर फिर जाने वाली नहीं है।

जिस प्रकार एक आदमी सोया हुआ है, उसकी सभी इन्द्रियां,

आँख, कान, नाक, मुँह, जिह्वा और श्वास सब काम कर रहे हैं लेकिन ऐसे व्यक्ति को यदि कस्तूरी भी सुँघाई जाये तो भी उसे उससे कोई आनन्द नहीं आयेगा। क्योंकि आनन्द लेने वाला उसे लेने को तैयार ही नहीं क्योंकि वह अपने अन्दर विश्राम, आनन्द ले रहा है। और यह आनन्द इन्द्रियों के सभी विषयों को छोड़कर भी ले रहा है; लेकिन जागते ही वह फिर उन्हीं पदार्थों की तरफ दौड़ता है जिनको छोड़कर भी वह सुख पा रहा था। यह विषयों की खींच है जो कि बहुत सूक्ष्म है। जैसे ट्यूबवैल में बिजली का करन्ट आया लेकिन उसका पता नहीं चला। इतना अवश्य पता लगता है कि एक धक्का लगा और ट्यूबवैल चल पड़ा। इसी प्रकार विषयों का आकर्षण है। इन्द्रियों से विषयों का ज्ञान अनुभव होने पर कुछ पता नहीं लगता लेकिन वह शक्ति (विषयों की खींच) कार्य करवा लेती है।

इसी खिंचाव को कम करने के लिए तीन साधन हैं: (1) शील अर्थात् कर्म (2) ध्यान अर्थात् भक्ति और (3) ज्ञान। शील नाम है कर्मयोग का अर्थात् हर काम को मन लगाकर करना। जो काम हम कर रहे हैं उसे पूरा मन लगाकर करने से हमें ध्यान करना आयेगा। जैसे हम हाथ धो रहे हैं और हाथ धोने में पाँच-दस मिनट लग गये तो मन कहेगा कि जल्दी करो, अधिक समय हो गया है। चाय का समय हो रहा है। वहाँ जाना है, यह करना है, वह करना है। तो इससे हमें पता लगेगा कि मन के अन्दर तृष्णा छुपी हुई है, जो उसका ध्यान नहीं लगने दे रही है। इस तृष्णा को हमें दूर करना है। इसके लिये हमें मन की शक्ति को बचाकर रखना है ताकि ध्यान लगा सकें और इस तृष्णा को दूर कर सकें। जैसे हम बाज़ार जा रहे हैं तो हमें पता है कि एक, डेढ़ मील चलना है तो हम जिस काम के लिए जा रहे हैं एक तो उसका ध्यान हो और दूसरा रास्ता चलने में अर्थात् किसी से टकरा

न जायें। दुकानों में जो वस्तुएँ पड़ी हैं उनमें हमारा ध्यान न जाये। किसी व्यक्ति के कपड़ों पर हमारी दृष्टि (ध्यान) न जाये। बस इतना ही। हम रास्ते में जो लिखा हुआ है उसे पढ़ते न रहें। इस प्रकार हम मन की शक्ति को बचा सकते हैं। क्योंकि मन देखने का, सुनने का आदी है, उससे रोकने पर इसमें अवश्य ही तनाव आयेगा; अतः उस तनाव पर या दुःख पर हम ध्यान कर सकते हैं, यहीं से हमारा ध्यान आरम्भ हो जायेगा। ध्यान से हम उस तनाव को दूर कर सकते हैं। जैसे रास्ते में जाते समय किसी व्यक्ति को देखने से मना करने पर मन में तनाव है तो हम मन को बोलकर कह सकते हैं कि उससे क्या लेना है, यदि उसे देख लेता तो क्या लाभ था। इस प्रकार, हम मन को शून्य में ले जाकर शान्त कर सकते हैं और यह शान्ति ऐसी नहीं जो कि हमसे कोई इसे छीन ले या मरने के बाद हमारे पास न रहे। इस प्रकार मन स्थूल विषयों से हटकर सूक्ष्म शून्य में पूर्ण शान्ति पा लेता है और जिसे यह छोड़ना नहीं चाहता। इस आन्तरिक शान्ति के मिलने से इसको अन्दर की दुनियाँ नज़र आने लगती है और यह अपने–आप में शान्त हो जाता है।

इस शान्ति को पाने के लिए हमें सुख को छोड़ने और दुःख को सहन करने के लिए तैयार रहना चाहिए।

***

मान, मोह के दल–दल से अपने को निकालो : ईश्वर का स्वरूप यदि हमने जान लिया तो हमें कुछ और जानने की आवश्यकता नहीं रहेगी क्योंकि वहाँ हमारा मन शून्य में शान्त हो कर बैठ जाएगा। ईश्वर का स्वरूप क्या है ? वह सत्य है, ज्ञान रूप है, अनन्त रूप है, जो वस्तु जैसी है उसको वैसी जान लेना ही सत्य है।

जैसे किसी व्यक्ति ने कहा कि वह व्यक्ति या वस्तु वहाँ है और हमने

वहाँ जाकर उस वस्तु को देख लिया तो यह सत्य हो गया। दूसरा यह है कि उस वस्तु को वैसी जान लेना जैसी वह है तो यह ज्ञान रूप हो गया। इसके पश्चात् यह जानना कि वह वस्तु हर जगह है तो यह उसका अनन्त रूप हो गया। सांसारिक तृष्णा जो कि राग–द्वेष (सुख करके राग और दु:ख करके द्वेष) के रूप में रहती है, यही उस सत्यम् ज्ञानम् अनन्तम् को जानने नहीं देती।

इसको समझने के लिये एक दृष्टान्त देते हैं। एक विख्यात कवि हुए हैं, नाम था उनका भारवि। वे अपनी छोटी सी 18 वर्ष की आयु में ही राज–दरबार में ख्याति के शिखर पर पहुँच चुके थे। जबभी राजा दूसरों को पान का एक बीड़ा देता था तो भारवि को उसके अधिक आदर के लिये दो बीड़े देता था। भारवि इस आदर को पाकर फूला नहीं समाता था। लेकिन उसके पिता ने सोचा कि उसने अभी और आगे बढ़ना है इसलिये उसने भारवि को कोई मान नहीं दिया।

एक दिन भारवि काफी इनाम लेकर राज–दरबार से आया तो उसके पिता ने आलोचना करनी शुरू कर दी। इससे तंग आकर भारवि ने पिता को जान से मार डालने की सोची। वह घर से यह कहकर बाहर निकल गया कि वह दूर जा रहा है परन्तु वह दूर जाने की बजाए मकान की छत पर आले के पास यह सोचकर बैठ गया कि जैसे ही पिता जी खाना–खाने बैठेंगे उनको सिर पर पत्थर मारकर मार दूँगा। इतने में जब माँ ने भारवि के पिता को खाना परोसा तो उसने कहा कि आपने क्यों उसका तिरस्कार किया? तो पिता ने कहा कि यदि वह मान के चक्कर में पड़ गया तो आगे नहीं बढ़ सकेगा। यह सुनकर भारवि नीचे उतरा और पिता के चरणों में गिर पड़ा तथा प्रायश्चित रूप में मरने के लिये कहने लगा। लेकिन पिता ने कहा कि

तुम्हें मरने की ज़रूरत नहीं है। प्रायश्चित के रूप में तुम एक वर्ष अपने ससुराल में नौकरी करो।

भाव यह है कि ये मान, मोह, अविद्या के रूप हमें इतना लुभा लेते हैं कि हम इनसे बाहर निकलने में घबराते हैं। क्योंकि हम इन्द्रियों के प्रकाश के इतने गुलाम (आदी) हो चुके हैं कि हमें उनसे बाहर निकलकर अंधकार ही अंधकार नज़र आता है और हम फिर इन्द्रियों के प्रकाश अर्थात् विषयों में प्रकाश लेने लगते हैं। यदि हम थोड़ी देर उस अंधकार को सह लें तो हमें अविद्या दूर होकर आत्मा का भीना–भीना प्रकाश शून्य में मिलने लगेगा और जो सुख हमें केवल निद्रा में ही मिलता है वह हर समय हमारे पास रहता है। और क्योंकि यह सुख किसी बाहरी वस्तु पर आश्रित नहीं है इसलिये इस सुख के आगे पीछे कहीं भी दु:ख नहीं है।

सांसारिक पदार्थों से हमें जो सुख मिलता है वह दु:ख का सापेक्ष होता है। जैसे जब हमें भूख का दु:ख होता है तभी भोजन सुख देता है। इसी प्रकार यदि हमने धूप में खड़े रहकर तप किया है तभी हमें छाया का सुख मिलता है। लेकिन शून्य अर्थात् आत्मा का सुख सापेक्ष नहीं है, अत: उसमें दु:ख भी नहीं है। इस सुख के लिये हमें अपने विचार को जगाना होगा। साधारण अवस्था में हम विचार रहित होकर कार्य करते हैं तभी तो हमारे मुँह से कोई गलत बात निकल जाती है तथा हम बाद में दु:खी होते हैं। यदि हम विचार में जीना सीख लें तो हमें बाद में दु:खी न होना पड़े। इसके लिये पहले से ही दु:ख को विचारपूर्वक सहने का अभ्यास करना चाहिए तथा राग, द्वेष, मान, मोह को दूर करना चाहिए। यदि हमारे में कण मात्र भी राग, द्वेष रह गया तो भी हमें आत्मा का सुख नहीं मिलेगा। नींद के सुख में सभी प्रकार के संस्कार सोये रहते हैं, अत: हमें नींद पर संयम करके

विचार को जगाना चाहिए। एक तो मन को बाहर भागने (रजोगुण) अर्थात् विषयों की तृष्णा से रोकना है तथा दूसरा तमोगुण में अपने को जाग्रत् रखते हुए ज्ञान को जगाना है। इसके लिये ध्यान करना चाहिए। ध्यान में हमें मैत्री, करुणा, मुदिता द्वारा अपने विचार को जगाते हुए आगे बढ़ना है तथा जब मन की भाग दौड़ बन्द हो जाये तब इन्द्रियों के विषय जैसे शब्दादि से मन को विषयों से रोकना है। जैसे बाहर से आवाज़ आई तो मन ने कहा चोर है देखो, तो मन को समझाना है कि जब तुम निद्रा में होंगे तब भी तो चोर सामान ले जायेंगे और यदि उन्होंने सामान ले जाना है तो तुम रोक नहीं सकते। अतः ऐसी हालत में परेशान होना व्यर्थ है और मन चुप होकर बैठ जाएगा। इसी प्रकार यदि खुजली होती है तो मन को कहो कि खुजलाने से तो जख्म हो जाएगा। इसलिये खुज़ली न करके उसका दुःख सहना ही ठीक है। इस दुःख के बाद भी सुख आयेगा और उससे घाव का कष्ट भी नहीं होगा। इसी प्रकार सांसारिक भोगों की जो मन में खुजली होती है यदि उनके दुःख को दृढ़तापूर्वक सह लिया जाये तो वही दुःख कुछ समय बाद समाप्त होकर सुख बन जाएगा। क्योंकि सांसारिक सुख–दुःख सापेक्ष हैं, निरपेक्ष नहीं।

***

बन्धन और मोक्ष : जो मिल के न बिछुड़े वह मोक्ष है। मोक्ष वह है जहाँ बन्धन नहीं है। बन्धन में दुःख है। अतः पहले बाँधने वाले का पता लगना चाहिये। जहाँ तक भावना देखने, सुनने, खाने, सूंघने के विषयों में बाहर भटकी हुई है वह बंधन है। जब तक इन इन्द्रियों के विषयों में सुख नजर आता है तब तक बंधन है। अतः हमें इन विषयों के सुखों का विश्लेषण करके देखना चाहिए कि इनकी वास्तविकता क्या है। अपने मन में इन चीजों का विश्लेषण करके

देखना ही विवेक है। जैसे सुख क्या सदा रहने वाला है, क्या यह कभी बिगड़ेगा नहीं, कितने सुख आये और आकर चले गये, नष्ट हो गये। एकांत में अपने मन के सुख, मान की इच्छा को त्याग कर और मन को जगाकर विचार करते रहना ही विवेक है। इसके लिये साधन है वितर्क अर्थात् अपने मन से शब्द पैदा करके विचार करना (सुख की वास्तविकता के बारे में)। यह विवेक का अभ्यास है।

बार–बार विवेक के अभ्यास से वस्तुओं की वास्तविकता दीखने लगेगी और इसी से वैराग्य होगा, जो विवेक तृष्णा की बीमारी के बारे में बतायेगा। जैसे कि किसी व्यक्ति को कोई नशे की आदत है और वह उसे बार–बार करने पर मजबूर है। यह मजबूरी जिस शक्ति के अधीन है उस शक्ति का नाम तृष्णा है। यह शक्ति अन्धी है और यह एक छिपी हुई शक्ति है, इसी छुपी हुई शक्ति को शास्त्र में प्रकृति, माया, अविद्या, कुण्डलिनी नाम से पुकारा गया है। यह शक्ति जागने से पहले साँप की तरह फुँकार मारती है। इन फुंकारों में से काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार आदि निकलते हैं । यदि हमने इस शक्ति की फुँकार को शांतिपूर्वक सहन कर लिया तो भी यह जागेंगी।

जब तक मन संसार में बंधा है तभी तक बंधन है और यह बंधन सुख की आशा का ही है। यह आशा (बचपन से) इतनी शक्ति पकड़ चुकी है कि इसे छोड़ना मुश्किल हो गया है। इसे छोड़ने के लिये पहले विवेक करके वैराग्य पैदा करना पड़ेगा। जैसे किसी भूत को प्रसन्न करने के लिए किसी की बली देते हैं तो यह भूत और जोर पकड़ता है। इसी प्रकार यदि हम इन्द्रियों का सुख इन्द्रियों को देते गये तो यह तृष्णा की शक्ति और जोर पकड़ती जाएगी और हमें परेशान कर देगी। इसके लिये हमें विवेक द्वारा मन को यह बताना है कि ये बाहर के सुख तो रोग, शोक, पीड़ा और पराधीनता में समाप्त

होते हैं, अतः इनमें अपने को आवश्यकता से अधिक लगाना उचित नहीं है। विवेक से हमें इन्द्रियों के सुखों, दुःखों से अपने को समेटना आयेगा और अपने को सुखों, दुःखों से समेटना ही वैराग्य है। कोई भी अपना नहीं है यदि मन अपना नहीं है, यदि मन अपना है तो सभी अपने हैं। क्योंकि सुख केवल मन की कल्पना में ही है, कहीं बाहर नहीं है और मन विवेक, वैराग्य के बिना अपना नहीं है । मन को यह समझाना है कि ये सांसारिक सुख तो हाय–हाय में ही समाप्त होते हैं, अतः इनमें जाना ठीक नहीं है। वैराग्य से शम, दम, उपरति, तितिक्षा, श्रद्धा, समाधान के गुण आयेंगे। शम का अर्थ मन की शांति (विषयों का चिन्तन न करना) है। दम का अर्थ इन्द्रियों से विषयों का संयोग न होने देना है। इसके पश्चात् उपरति अर्थात् इन सुख–दुःख से उपराम होना ही उपरति है। लेकिन मन ने जो सुख–दुःख के संस्कार पैदा किये हुए हैं वे भी इसे आकर सुखी–दुःखी करेंगे। लेकिन इनको सहना है और यही सुख–दुःख को सहना तितिक्षा (इनमें सम रहना) है । सुख आ गया तो खुश नहीं हुए और दुःख आ गया तो दुःखी नहीं हुए। क्योंकि विषयों का संयोग बहुत बड़े दुःख में समाप्त होता है। इस दुःख को सहन करना और मन को विलाप न करने देना ही तितिक्षा के अन्तर्गत आता है। यदि रोगी ने कुपथ्य त्याग दिया तो क्या बुरा हुआ। इसी कुपथ्य अर्थात् सुख–दुःख को त्यागने से ही तो रोग, पीड़ा, शोक दूर होंगे। मन को वस्तुओं के वियोग की चिन्ता भी नहीं होने देना भी तितिक्षा के अन्तर्गत आता है। विषयों को त्यागने की इच्छा से तेज़ उत्पन्न होगा, इसी तेज़ (दुःख) को हमें हज़म करना है। विषयों के दुःख को सहने के बाद श्रद्धा से आगे की खोज होगी तथा इस श्रद्धा के बाद ही मन ध्यान में टिक पायेगा। मन जितना ही सुख–दुःख से पीछे हटेगा, उतना ही आसन में टिकेगा। इस ध्यान के लिए पहले अपनी देह की हड्डी, चमड़ी को देखो, मन से बोलते जाओ

और ध्यान करते जाओ। इच्छा, नींद, आलस्य से मन को हटाते हुए इस ध्यान में आगे बढ़ते जाना है। विवेकपूर्वक थोड़ा देखते जायेंगे, जो खोटा है उसे टालते जायेंगे और अच्छाई को बढ़ाते जायेंगे, इससे ध्यान में सहायता मिलेगी। शब्द के बिना ध्यान नहीं जागता है। पहले हमें एक पैर से दूसरे पैर में ध्यान करना है। पैर के नाखून से सिर तक के सभी अंगों का ध्यान करना है। जैसे पैर में नाखून है, यह नाखून पैर के अंगूठे में लगा हुआ है। उसके भीतर मज्जा है तथा उसके नीचे हड्डी, मांस, नाड़ियां हैं, अरे बालों को क्यों भूल गये। इस प्रकार हमें पैर से घुटनों, जांघों, गुर्दे, फ़ेफड़े, जिगर, बांहें और मस्तिष्क तक का ध्यान करना है। इसके पश्चात् अपनी काया से दूसरे की काया जैसे पशु, पक्षी आदि की काया का ध्यान करना है। इसके पश्चात् कहना है कि इस काया में क्या पड़ा है। यह तो पाँच भूतों का ताना–बाना है। यदि पाँच भूतों का ध्यान लगाना आ गया तो समझो कुण्डलिनी जाग गई। यदि मन, शरीर या पृथ्वी में कड़ापन महसूस करने लग गया और वह ध्यान सारी धरती में फैल गया तो इसे असंख्य जीव धरती पर नज़र आयेंगे जिनमें यह अपने को भी देखेगा। सुख तो इस ध्यान से भी आने लग जायेगा। इसके करते रहने से मन लम्बी देर तक ऊबता नहीं है जैसे कि सुषुप्ति में। इस धरती तत्त्व को छुड़वाकर फिर मन को बहने वाले तत्त्व जल में ले जायें। जैसे कि हड्डी में जल तत्व है, यह बहने वाला है। जल तत्त्व से कुण्डलिनी जिह्वा में जाकर तरह–तरह के स्वाद लेने लग जायेगी। कान में जाने पर शब्द, नाक में जाने पर सुगन्ध आने लगेगी। इनसे मन को वैराग्य द्वारा हटाना है कि इनमें क्या पड़ा है। इसके बाद अग्नि, सूर्य, अन्दर नज़र आयेंगे, उसके बाद वायु नज़र आयेगी। लेकिन इन सबसे मन को हटाना है। ध्यान में बहुत बारीकी में हवा चल रही है, इस पर ध्यान को टिकाना है। लेकिन यह वायु शून्य में

चल रही है जो कि आकाश का तत्त्व है। जैसे कि नल के खाली गलास में इतनी शक्ति है कि वह (वैक्यूम) शून्य पानी को ऊपर खींच लेता है। ध्यान में कई घड़ी बैठने पर मन को आकाश के तत्त्व चाँद, तारे दिखाई देने लगेगें, लेकिन इनमें भी क्या है। यह तो जड़ हैं। इसके बाद भाव का ध्यान होगा। किसी को देखकर दुःखी, किसी को देखकर सुखी, राग, द्वेष आदि। आकाश से ध्यान टूटने पर उन चीज़ों की याद आयेगी जिनसे सुख–दुःख, राग–द्वेष, मान–अपमान आने लगते हैं। यह अनन्त विज्ञान का क्षेत्र है। कोई भी भाव आये वह अनन्त है। भाव आने जाने वाले हैं। अनन्त ज्ञान के समुद्र में ये भाव तरंगें हैं। इस भाव में भी तब तक सुख है जब तक कि मन इनसे थका नहीं। इनसे तंग आने पर अकिंचन भाव आयेगा। लेकिन यह क्या है यह तो अन्धकार है। इसके बहुत समय बाद समझ जागती है और मन इन्द्रियों के द्वारा बाहर जाता है तो मन समझता है कि पाँचों ज्ञानेन्द्रियां अपना गुलाम बनाती हैं। हम जो अन्न खाते हैं उसी का बामरोला यह शरीर है। अतः इसी का पहले ध्यान होगा। हमारा मन सुख और दुःख के कारण चलायमान होता है और ये दोनों सापेक्ष (Relative) हैं। सुख–दुःख में मन को बराबर रखना है अर्थात् सुख के पीछे हमें जाना नहीं और दुःख से दूर नहीं भागना है। अतः देखे कि दुःख कितना है, क्या है और कैसा है? जैसे खुजली का दुःख देखते–देखते मिट जाता है और कुछ समय बाद हमें खुजली से मुक्ति मिल जाती है। जिधर तृष्णा है उधर नहीं जाना।

अविद्या दो प्रकार की है: एक जानने की इच्छा। जैसे कहीं से आवाज़ आई तो मन उचट–उचट कर उसे जानने की इच्छा करता है, तो ऐसी अवस्था में मुक्ति की समाधि नहीं लगेगी। मन को कहना है कि चाहे जिसकी भी आवाज़ हो हमें जानकर क्या लेना है।

दूसरी अविद्या है सुख को जानने की इच्छा, कि देखें उस

वस्तु में कैसा सुख है । हमारी आत्मा में ऐसी शक्ति है जो कि किसी चीज को सदा बना नहीं रहने देती और नष्ट कर देती है। यही हाल दुःख का भी है। यह शक्ति सुख दिखलाकर उससे चिपकाती है और दुःख दिखलाकर भगाती है। मन जहाँ जाता है जाने दो। न हमें सुख की इच्छा है और न ही दुःख को दूर करने की ही। दुःख को टालते रहने से जो सुख मिलेगा वह सच्चा सुख होगा। यदि हमें समय ही काटना है तो इस सुख से क्यों काटें; तप, तितिक्षा से भी समय काट सकते हैं। इन्द्रियों के विषयों से हटने पर अविद्या सताती है कि अब तो कुछ रहा ही नहीं, मेरी Existence ही नहीं रही। यह अविद्या सच्चिदानन्द में नहीं है। इस दुःख को सहन करना है (सुख-दुःख-गर्मी-सर्दी) तितिक्षा। आत्मज्ञानी उस चेतन सत्ता की कहीं कमी नहीं देखता और वह सत्ता सदा बनी रहने वाली है। विवेक उस सत्ता तक पहुँचने के लिये दीपक का काम देता है। इन्द्रियों को और मन को साथ–साथ रोकने पर मन डरता है कि मेरी Existence ही नहीं रही, यह अविद्या है।

अकिंचन के बाद मन की ऐसी अवस्था आ जाती है कि मन चेतन संसार (Conscious World) में जाने से डरता है कि इनमें क्या पड़ा है और अचेतन (Unconscious), में इसे अविद्या सताती है। इस चेतन (Conscious) और अचेतन (Unconscious) के बीच में जब मन टिक जाता है तो यह मुक्ति की समाधि होगी।

भाग–IV

स्वमुख से निःसृत ज्ञान–गंगामृत

स्वामी जी के जीवन के अंतिम वर्ष में एक भिक्षु महात्मा जी को स्वामी जी की निकटता में रहने का सुअवसर मिला। स्वामी जी द्वारा सहज रूप में कहे गए ज्ञानगर्भित अनेक वचनों को उन्होंने सुना और मूल्यवान् समझकर संकलित किया। यह संकलन स्वामी जी के सब भक्तों तथा सच्चे धार्मिक जीवन जीने के इच्छुक पाठकों के लाभ के लिए यहाँ प्रस्तुत किया गया है।

ॐ

स्वमुख से निःसृत ज्ञान-गंगामृत

1. सहसा विदधीत न क्रियामविवेकः परमापदां पदम्।
वृणुते हि विमृश्यकारिणं गुण लुब्धा स्वयमेव सम्पदः।।

(किरातार्जुनीय–महाकवि भारवि)

कोई भी कार्य सहसा (झटपट) नहीं करना चाहिए, कारण कि जो अविवेक है, वह परम आपत्तियों का घर है और जो विमृश्यकारी है अर्थात् जो विवेक से सोच विचार करके कार्य करता है, उसके गुणों से लुब्ध हो करके सारी सम्पत्तियाँ उसको वरण (स्वीकार) कर लेती हैं।

2. चेतसा सर्वकर्माणि मयि संन्यस्य मत्परः।
बुद्धियोगमुपाश्रित्य मच्चित्तः सततं भव।।

(गीता 18/57)

तू मन द्वारा सभी कर्मों को मेरे में अर्पण करके, मेरे परायण होकर, बुद्धियोग का आश्रय करके सदा मेरे में चित्तवाला हो।

3. सेवा धर्मो परम गहनो योगिनामप्यगम्यः।

सेवा धर्म परम गहन है, श्रेष्ठ और गूढ़ है और वह योगियों को भी प्राप्त होना कठिन है।

4. गुण दोषौ बुधो गृह्ननिन्दु क्ष्वेडाः विवेश्वराः।
शिरसा मोदते चाद्यं परं कण्ठे नियच्छति।।

दूसरे के गुण व दोषों को देखता हुआ बुद्धिमान् ऐसे ग्रहण करे जैसे नीलकण्ठ भगवान शंकर ने सिर पर चन्द्रमा धारण कर रखा है वैसे ही दूसरे के गुणों को देखकर वाह! वाह! करे, सिर पर चढ़ावे और

दोषों की उपेक्षा करे, उसे बाहर किसी को न कहे और न अन्दर उतारे जैसे कि भगवान शंकर ने ज़हर को गले में धारण कर इसे रोक रखा है।

5. **वेधा द्वेधा भ्रमं चक्रे कान्तासु कनकेषु च।**
तासु तेष्वप्यनासक्तः साक्षाद् भर्गो नराकृतिः।।

ब्रह्माजी ने दो प्रकार से सब जीवों को भ्रम में डाल रखा है। एक तो स्त्रियों के चक्कर में, दूसरा धन के चक्कर में। इन दोनों से जो बिल्कुल अनासक्त है अर्थात् जिस में लेशमात्र आसक्ति (Attach-ment) नहीं है वह नर की आकृति में साक्षात् भगवान शंकर ही है।

6. **एकाकी चरेद्बुधाः स्थानात्स्थानं आचरेत्।**

धर्म का आचरण करता हुआ बुद्धिमान् पुरुष एक स्थान से दूसरे स्थान पर अकेले विचरण करे।

7. **बहता पानी निर्मला, खड़ा सो गन्दला होय;**
साधु तो रमता भला, दाग नहीं लागे कोय।।
खडा भी पानी निर्मला, जो टुक गहरा होय;
बैठा भी साधु निर्मला, जो कुछ साधन गहरा होय।।

8. **देवलीला देवभारती दोऊ कर जोड़ी स्तुति करे।**
श्री गुरुदेव दत्त अवधूत मारग सिद्ध चौरासी तपस्या करे।।

देवलीला देवभारती यानी शरीर के अन्दर सभी में ज्ञान–देव या चेतन–देव की लीला चल रही है। शरीर जड़ है, मुर्दा में कोई क्रिया नहीं होती। जो कुछ भी हो रहा है वह सब देवलीला ही है, उस से सबके अन्दर जैसे भाव बनते हैं, उसी के ढंग की शरीर में हरकतें होती हैं और फिर उसी ढंग की मुख से वाणी निकलती है, वह देवभारती है।

भारती–सरस्वती–वाणी यह सब एक ही है।

● जैसे किसी के कार्य में आपने दखल दिया और उसने कुछ कड़वा शब्द आप को बोल दिया और मन में बड़ा दुःख हुआ–यह सब जैसी लीला हुई, वैसी वाणी निकली। अगले के अन्दर से जैसा बर्ताव आयेगा और दूसरे के अन्दर उस का जैसा प्रभाव पड़ेगा, उसी के ही ढंग की आवाज, उसी के ही ढंग का भाव, सब ऐसे ही इसके मुख से निकलेंगे। यह सब देवलीला देवभारती है। अब अपने से, थोड़ा सम्भल करके जिस प्रकार दूसरों के प्रति क्लेश देने वाला न हो ऐसा धर्म को धारण करके व्यवहार होना चाहिए और ऐसे ही मीठे शब्द निकलने चाहिए, तो यह सब परमात्मा की दो हाथ जोड़कर स्तुति हो जायेगी। सब जगह व्यवहार करते हुए बीच में आते हुए मिथ्या, काम, क्रोध आदि विकारों को शान्त करते जाएँ और बुद्धिपूर्वक अपना बर्ताव सही रखे। कहीं भी राग–द्वेष में न पड़े, सब में देव की लीला ही होती हुई देखे।

● श्री गुरुदेव दत्त अवधूत मार्ग वहाँ भगवान् दत्तात्रेय जी की आरती करते हैं। जो अपने मन में हर समय जाग्रत रहते हैं, और जहाँ से भी सत्य, ज्ञान और विवेक सीखने को मिले उसको धारण करने को तत्पर हैं, ऐसी जिन्होंने अन्दर की शिक्षा दी है वह अत्रि के पुत्र हैं, जो देव के दिये हुए हैं – श्री गुरुदेव दत्त और अवधूत अर्थात् जिन्होंने सब कुछ छोड़ दिया है, उन भगवान् के चले अनुसार चलना – यही उनका मार्ग है।

● सिद्ध चौरासी यानी शरीर के अन्दर चौरासी जोड़ हैं। इन सब चौरासी जोड़ों को चेताकर बिलकुल सीधा बैठे। शरीर को कहीं से भी न ढ़ीला रखे और न दायें और न बायें झुका हुआ रखे। आसन

लगाकर रीढ़ की हड्डी सीधी रखकर ध्यान में सीधा बैठना यही है, सिद्ध चौरासी तपस्या करना है। ऐसे ही तपस्या करे।

9. **कुर्वन्नेह कर्माणि जिजीविषेच्छतं समाः**
एवं त्वयि नान्यथेतोऽस्ति न कर्म लिप्यते नरे।।

(वेद–ईश/2)

कर्म करता हुआ ही सौ साल जीने की इच्छा करे। यदि इस तरह रहे हो तो ठीक है, कर्म लिपायमान नहीं करते और यदि ऐसे न रहे तो पहले किए हुए कर्म ऐसे लिपायमान कर देते हैं कि उसमें उठने की शक्ति ही नहीं रहती।

10. **पालि : अप्पमादो अमतपदं पमादौ मच्चुनो पदं।**
अप्पमत्ता न मीयन्ति ये पमत्ता यथा मृता (धम्मपद–21)
सं:– (अप्रमादोऽमृतपदं प्रमादौ मृत्योः पदम्।
अप्रमत्ता न म्रियन्ते ये प्रमत्ता यथा मृताः।।)

अप्रमत्ता (अप्रमाद) अमृत का पद है, प्रमाद मृत्यु का पद है। प्रमाद न करने वाले मरते नहीं है और जो प्रमाद करने वाले हैं वे मरे हुओं के समान हैं। (धम्मपद–अप्पमादवग्गो 2/1 सामावती)

11. **पालि–दिवा तपति अदिच्चो रत्तिमाभाति चन्द्रमा।**
सन्नद्धः खत्तियो तपति झायी तपति ब्राह्मणो।।
अथ सब्बमहोरत्तिं बुद्धो तपति तेजसा।। (धम्मपद–387)
सं:– (दिवा तपत्यादित्यो रात्रावाभाति चन्द्रमाः।
सन्नद्धः क्षत्रियस्तपति ध्यायी तपति ब्राह्मणः।।
अथ सर्वमहोरात्रं बुद्धस्तपति तेजसा।।)

दिन में सूर्य तपता है, रात्रि में चन्द्रमा चमकता है। कवचबद्ध हुआ क्षत्रिय शस्त्र से सब सज्जा रहकर तपता है और अन्दर सब बन्धनों

को हटाता हुआ ब्राह्मण ध्यान में तपता है। तथा जो बुद्ध है वह चाहे दिन हो या रात हमेशा अपनी तपस्या और ज्ञान के तेज से तपता है।

(धम्मपद 387, ब्राह्मणवग्गो–26/5 आनन्द थेर)

12. **तपो धना हि ब्राह्मणः** = जिनके पास तपरूपी धन है, वही ब्राह्मण है।

13. **संग सर्वात्मनः त्याज्यः** = संग सभी प्रकार से छोड़ने योग्य ही है।

14. **सचेत त्यक्तुम् न शक्यते** = यदि पूरी तरह संग को छोड़ने में समर्थ नहीं है।

15. **सत्स्वेव विधातव्यः सन्तः संगस्य भेषजम्** = यदि संग करना पड़े तो सत्पुरुषों का ही संग करना चाहिए क्योंकि सत्पुरुषों का संग संसार की आसक्ति को छुड़ाने की औषधि है। वे आप को संग छोड़ने की औषधि बतायेंगे।

16. **मन मिले तो मेला, नहीं तो सब से भला अकेला।।**

17. **What can not be cured, must be endured.**
जिस को हम सुधार नहीं सकते या कुछ कर नहीं सकते, उसको सहना ही ठीक है।

18. **एकान्त वासा, झगड़ा ना झाँसा।**

19. **ध्यायन्निमां सुखिनि दुःखिनि चानुकम्पां**
पुण्यक्रियेषु मुदितां कुमतावुपेक्षाम्।।
एवं प्रसादमुपयाति हि रागलोभ –
द्वेषादिदोषकलुषोऽप्ययमन्तरात्मा।। 5।।

(प्रबोधचन्द्रोदय–आदि–चतुर्थ अंक–5)

सुखी मनुष्यों में मैत्री भावना और दुःखियों में दया (करुणा) का भाव, दूसरों के पुण्य कर्म को देखकर मन को प्रसन्न करने का भाव (मुदिता), दूसरों के अवगुण, दोष या बुराइयों में उपेक्षा की भावना – इस प्रकार मन को साधकर ध्यान करे। ऐसा करने से राग–लोभ, दोष आदि से कलुषित या मैला हुआ अपना–आपा अर्थात् जीवात्मा (तत्तद्दोषों के विनष्ट होने पर) पवित्र होकर प्रसाद यानि प्रसन्नता को (स्वाभाविक निर्मलता को) प्राप्त होता है।

20. "एक काम एक ध्यान"

प्रकृति के बन्धन को जीतने के लिये व उसकी दासता से मुक्ति पाने के लिये प्रत्येक कर्म में अपनी स्मृति सदा बनाकर सारी इन्द्रियाँ व मन एक कर्म में जोड़कर निष्काम कर्मयोग साधकर एक जगह ध्यान को टिकाते–टिकाते जीवन को ध्यानमय बनाकर पूर्णता प्राप्त करने का अद्भुत सूत्र या नियम।

21. उपासना– उप यानि समीप या निकट करके अर्थात् संसार नहीं, एक भगवान् ही के निकट टिके रहना। उपासना यानि सगुण ब्रह्म विषयक मानस व्यापार।

22. भजन– भज् सेवायाम्। एक परमात्मा ही का भाव बनाना, सेवन–चिन्तन करना और उसी के अनुसार अपनी चलाही में लगे रहना।

23. शील– शुभ कर्म करते–करते सही बर्ताव या व्यवहार करने का स्वभाव सा बन जाये।

24. ध्यान– ध्यै स्मरणे ध्यान–बिना टूटे अर्थात् अटूट धार से एक ही तरफ– उसमें एक के अतिरिक्त दूसरा याद भी न आये, ऐसे मन लगा देना ध्यान है।

25. <u>राधा</u>– आराधना करने वाली अकल। दूसरों को कष्ट न देकर स्वयं कष्ट सहन करले तो राधारानी की कृपा समझो।

26. वेदानुवचनेन ब्राह्मणा विविदिषन्ति
यज्ञेन दानेन तपसानाशकेन ....

वेद के वचनानुसार अनाशक यज्ञ, दान और तप द्वारा ब्राह्मण या मुमुक्षु साधक, ब्रह्म को जानने की इच्छा करते हैं। वहाँ 'अनाशकेन' यह विशेषण दिया गया है, मनमाना भोजन न करना ही अनाशक तप है, भोजन का सर्वथा त्याग कर देना नहीं। भोजन का सर्वथा त्याग कर देने पर तो मानव मर ही जायेगा, फिर आत्मज्ञान कैसे होगा ?

27. प्रश्न–पाँच भूतों का छुटकारा कैसे हो ?

उत्तर–पाँच भूत कौन से हैं? पृथ्वी, जल, तेज (अग्नि), वायु और आकाश ये पाँच भूत हैं। इसमें सूक्ष्म लय चिन्तन से, आत्म–तत्व चिन्तन से एवं ध्यानस्थ होने से पाँच भौतिक जगत् और देह आदि का अपने–आप विस्मरण हो जाता है, छूट जाता है।

प्रभु–कृपा से पाँच भूतों का छुटकारा चिन्तन, मनन और षट्चक्रों के क्रमशः ध्यान के अभ्यास से, तथा साक्षी भाव से केवल ज्ञान ही ज्ञान में जागते टिके रहने से और आत्मस्वरूप में स्थित रहने से होता है।

ध्यान का अभ्यास करते समय बहिर्मुखता से, दुनियादारी से मन को हटाकर अन्तर्मुख होने का अभ्यास करे और अन्दर ध्यान में बस! देखते रहे मन की वृत्तियों और दृश्य को केवल देखे।

पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश, सूरज, चाँद और आत्मा – ये वेदों में आठ वसुओं को कहा गया है। अब इन वसुओं का ध्यान करते–करते उस खाली मन की अवस्था में आनन्द जाग जाये तो बात

ही क्या है ! परन्तु जब तक वह आनन्द नहीं जागा तो वह अविद्या का ही राज है। ऐसी अवस्था में इस अविद्या को टालने के लिए महात्मा या योगी लोग अपनी आत्मा या परमात्मा के आनन्द तक पहुँचने के लिए अपने मन को पृथ्वी, जलादि तत्त्वों के ध्यान में लगा देते हैं।

इसके लिए पहले सारी अच्छाइयाँ अपनाईं, शील–सन्तोष रखा, आत्मा को सँभाला, थोड़ा संसार की उलझन से न्यारा किया। अब खाली होने पर इन वसुओं का ध्यान करने लग गये। हाँ जी! पीली–पीली धरती चमक रही है, मनोमन आप को धरती का पीलापन दिखाई देगा। याद करके फिर उसका ध्यान कर रहे हैं और जाग रहे हैं। फिर जल का ध्यान किया, वहाँ गए थे, जल बह रहा था, वहाँ पर गोता लगाया था। "जल कैसा था?" नीला–नीला बड़ा निर्मल जल था, वह जल भी थोड़ा ठंडा था। वह जल का ध्यान हो गया। फिर सूर्यनारायण की किरणों से गर्मी होने लग गई, यह तेज का और इस तरह अग्नि का ध्यान हो गया। इसी में हवा चलती का स्पर्श महसूस हो रहा है, ये हवा का ध्यान हो गया। अब देखो सूर्य कैसे आकाश में चमक रहा है ? कोई बिजली इसको नहीं पैदा करती। यह गर्मी कहां से आ गई ? ये मेरे देव की है। जिस–जिस का ध्यान करना है मेरे देव! तू ही बना बैठा है, सूर्य भी तू है, पृथ्वी भी तू है, सूर्य रूप में गर्मी बना बैठा है और धरती रूप में कठोर भी तू ही है। बस! इस तरह स्तुतियाँ करते–करते अपने मन को लगाये रखें। इसी के बीच में वासुदेव प्रकट हो गए। बस फिर भक्ति होगी "मेरे देव! तू ही तू" फिर किसी से आप को ज्यादा कुछ मतलब नहीं। फिर तो यही होगा निष्काम कर्मयोग। संसार में जीने के लिए दूसरों की प्रसन्नता के लिए जैसा चाहो, चल लो। आप अपने देव निरंजन के साथ हैं।

साक्षी भाव से अन्दर ध्यान में बस! द्रष्टा भाव से केवल देखें। भिन्न–भिन्न दृश्य दिखते हैं तो उसमें बह न जाये अपने–आप में टिका रहे। उस में बिना जुड़े, बिना बहे, साक्षी भाव से देखते रहे। बस कोरा केवल ज्ञान ही ज्ञान में रहे, या शुद्ध ज्ञान! क्या कर के कुछ नहीं। केवल निर्विषय ज्ञान में टिके रहना। बस! पूरा जाग्रत रहना है, पदार्थ विषय आदि को सत्ता नहीं देनी है, उसे हटाकर दुनिया के चक्कर से हटकर नींद में भी नहीं जाना है। इस तरह पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश आदि के बारे में भी तरंगें उठती हैं, दृश्य स्फूरते हैं, कभी–कुछ, कभी–कुछ, बस उस का ख्याल आते ही उस में नहीं बहना है और अन्दर ध्यान में पूरा जागते रहें कोरे केवल ज्ञान ही ज्ञान में। शब्द, स्पर्श, रूप, रस गंध का पता लग रहा है। किसका पता उसमें न जावे केवल पता ही पता में रहना है। न नींद में जाना है न बहिर्मुख होना है, बीच में केवल ज्ञान में टिकने का अभ्यास बनायें। बस! इस तरह पाँच भूत आदि सभी का बन्धन हट जायेगा। जो स्वयं लगा रहेगा उसे अपने–आप को अनुभव होता जायेगा।

सबसे पहले अपने व्यवहार को शुद्ध करें। जैसा आप खुद चाहते हैं, ऐसा दूसरे से व्यवहार करें। अपने लिए सुख, प्रेम, आनन्द, स्वतन्त्रता, विकास, कल्याण, शान्ति, सत्य आदि चाहते हैं तो पहले दूसरों को वे दें। अपने जीवन–व्यवहार, विचार–वाणी, वर्तना ऐसा हो जिससे विश्व को सत्य, प्रेम, प्रकाश, शान्ति, विकास, स्वातंत्र्य, कल्याण प्राप्त हो।

अपने जीवन में मैत्री, करुणा, मुदिता, उपेक्षा आदि बलों को अपनायें। जितना अपना व्यवहार शुद्ध होगा उतना ही मन ध्यान–भजन आदि में सहजता से लगेगा और मुक्ति व परमशान्ति को प्राप्त करेगा।

★★★
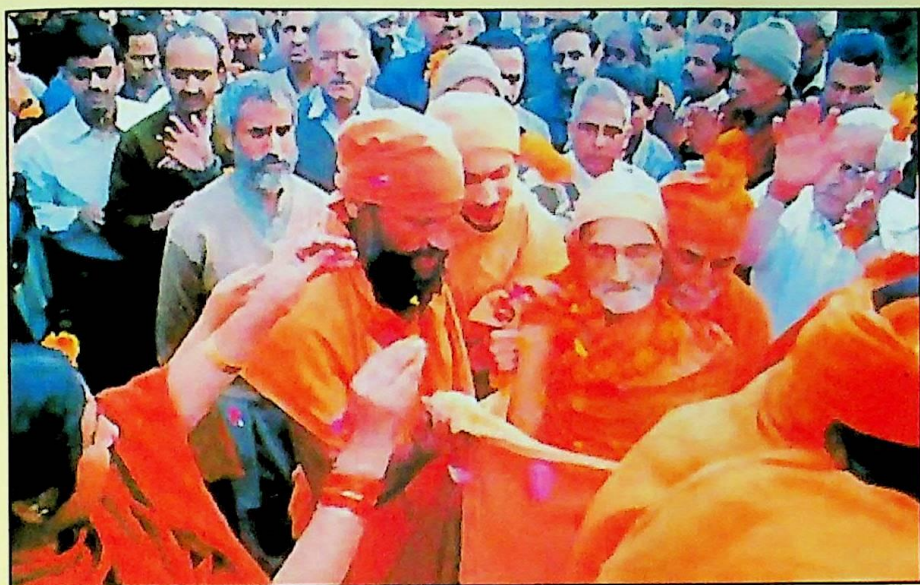
22 नवम्बर 2004 को
स्वामी जी का पार्थिव शरीर
चंडीगढ़ से अम्बला शहर की तपोस्थली
स्थान पर लाया गया,
उस समय उनके अन्तिम
दर्शनों के लिए खड़े हुए महाराज के
सैंकड़ो भक्त जन

23 नवम्बर 2004 हरिद्वार में जल समाधि

28. गुरु (Preceptor, Master):

- हमारे शास्त्र में सीखना गुरु शिष्य भाव को कहते हैं। शिष्य नाम वही है जो सीखने के योग्य हो। सीखने के योग्य वही होता है, जो अपने अन्दर सचमुच ठीक तरीके से सत्य को ला करके फिर अन्दर से कुछ न कुछ ज्ञान द्वारा सीखे। कोई ज़रूरी नहीं कि एक ही गुरु उस को सारी शिक्षाएँ बतायेगा। ऐसा बताते हैं कि दत्तात्रेय जी के चौबीस गुरु थे। उनका तात्पर्य (मतलब) था कि सीखने पर मन तुला हुआ है। वह अपने मन में हर समय जागता रहता है।
- गुरुमुख बनना अर्थात् थोड़ा नियमों के अनुसार अपने जीवन को चलाना। यह नहीं कि सब जीवों में जिस प्रकार प्रेरणा हुई, उसी प्रकार चल पड़े।
- सारे शास्त्र कहते हैं कि यदि मुक्त होना है तो कुछ सीखें। किसी को गुरु बनाओ और जो गुरु सीधी–सीधी बतायेगा, इतने बताने व सुनने से कभी भी किसी की मुक्ति नहीं हुई। जब उसकी शिक्षाएँ मन में उतारेंगे, फिर अन्दर से आवाज़ आयेगी कि यह करना ज़रूरी ही है। जब अन्दर में सीखने की बात निकल आयेगी व अन्दर से प्रेरणा आ जायेगी तो फिर यदि आपने सीख–सीख करके उसी ढंग से अपने को साधना शुरू कर दिया तो वह आत्मा का साक्षात्कार हो जायेगा।
- एकान्त में अपनी आत्मा से जो बात करने वाला है, वह कोई एक मनुष्य तो जप करता है, पाठ करता है, पर एक यह भी है कि थोड़ा मन को पहचानना सीखो। "हाँ भई! मेरा मन क्या–क्या सोच रहा है? हाँ भाई! देखो, अमुक ने मान नहीं रखा, तू बदला लेने की देख रहा है, तो मना! तू जो कुछ करेगा, इससे अपना ही बिगाड़ेगा। हाँ, तू कौन है अन्दर

बोलने वाला? तू मान है, तू अहंकार है, तेरी मैं क्यों सुनूँ, तू दुराचार, दुःख, दुर्गति करायेगा। मैं तो तेरी मानता नहीं।" इस प्रकार अपने मन को बोलना सीखो, जो मन के अन्दर शब्द रखकर बोलता है तो हमारे महात्मा–गुरु लोग कहते थे कि यह शब्द गुरु होता है। **'शब्द गुरु सुरति धुन चेला'** अर्थात् जैसा अन्दर से गुरु का शब्द हुआ, उसी शब्द के अनुसार अपने–आप को सम्भालने में सुरति या प्रीति रखे, वही सच्चा शिष्य है। यह तो ऐसा है कि जितने गुरु बाहर से बना लोगे, तो वे आपको एक शब्द दे देंगे कि आप जप कर लो, चलो, वहाँ तक कि एक–दो चीजों (वस्तुओं) की शिक्षा भी दे देंगे, परन्तु चौबीस घंटों का, तीसों दिन का, बारह मास का गुरु तो आपके अन्दर शब्द रूप में बस रहा है, परन्तु वह तब बस रहा है यदि आप को मन की पहचान आती है।

29. धर्म (Right Faith, Noble and religious way of Life):

धर्म का अर्थ है धारण करना अर्थात् एक स्वभाव से हो रहा है और एक आप को धारण करना पड़ेगा। यह अपने–आप नहीं होता। अपने–आप तो बच्चे ने बाहर दूसरे प्राणियों व पदार्थों के संग से दूसरों के साथ ही रहना सीखा है, उन्हीं में ही जीवन देखा है, जिस का नाम है बाह्य (बहिर्मुख) अथवा भौतिक जीवन। दूसरा है कि थोड़ा विवेक द्वारा (ज्ञान द्वारा) बाहर से मुँह मोड़कर अन्तर्मुख का जीवन, इसी को आध्यात्मिक जीवन कहते हैं। आध्यात्मिक जीवन का अर्थ है – अपनी आत्मा में जीना।

- जैसे यह भगवान् सच्चा है, वैसे ही उस को पाने का मार्ग (रास्ता) यह धर्म भी सच्चा है। और जितने भी भक्तजन हैं या पहले हो गये हैं अथवा आगे होंगे, जिन सबके अन्दर यह धर्म बसा हुआ है, उन सबके प्रति भी हमने एक प्रकार

से श्रद्धा रखनी है कि जैसे कि वे हमारे परिवार के भाई बन्धु ही हैं।

- धर्म के तीन स्तम्भ बताये गए हैं, जिनके सहारे पर यह धर्म खड़ा है। जैसे मकान में खम्बे (पिलर) लगे होते हैं, इसी को संस्कृत में स्तम्भ कहते हैं। धर्म के तीन स्तम्भ हैं: (1) कर्म (2) भक्ति या ध्यान और (3) ज्ञान। हर एक मनुष्य को समय–समय के अनुसार धर्म के तीन स्तम्भों को ही अपने जीवन में अपनाना पड़ता है।
- साधारण भाव से 'धर्म' शब्द का अर्थ यह है कि अपने–आप को नाना प्रकार के दोषों में बहते हुए समझता हुआ, सब दोषों से अपने–आप को बचाता हुआ चले। अपने मन को धार–धार कर सही मार्ग पर चलाना–यही धर्म का साधारण अर्थ है।

धर्म नाम है धारण करने का। धर्म अर्थात् वह मार्ग जो कि परमेश्वर या परमपद तक पहुँचने वाला है। सब शुभ कर्मों को करना और सब अशुभ कर्मों को छोड़ना और मन को पवित्र रखने के लिए अपने विचार को सदा जगाते रहना या प्रदीप्त करते रहना, इसी का नाम धर्म है।

- जैसा कि गीता (18/66) में भगवान् कहते हैं ***"सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज"*** अर्थात् हे अर्जुन! तू सारे धर्मों को त्याग करके एक मेरी शरण ले। सारे धर्म कौन से हैं ? यही जो अन्दर 'मैं' तथा इसी के बीच में लपक या उठाव उठते हैं, जैसे किसी से क्रोध आ गया, कहीं इच्छा आ गई, कहीं शोक करा और उन–उन को धारण करके बैठ गया, जितने भी ये धारण हैं ये ही सब धारणरूप मन के धर्म हैं; ये सब उसी प्रजापति देव के हैं। परन्तु तुम इन सब धारणों को छोड़ करके बुद्धि की, ज्ञान देव की, जो कि

सब के बीच में समान है उस की शरण लेना।

- कई एक श्रद्धालु तो यह समझ लेते हैं कि हमारा तो महापुरुषों के आशीर्वाद से ही कल्याण हो जायेगा, परन्तु अपनी दुर्बलतावश वे मिथ्या मार्ग को छोड़ नहीं सकते। कई एक अपने बाह्य स्वार्थों के चक्र में पड़े उन महापुरुषों के नाम पर मिथ्या बातों को भी धर्म में प्रवेश कर देते हैं, परन्तु महान् पुरुष या सत्य को पहचानने वाले इस सब को अपने साथ चलने के लिए कोई मार्ग नहीं देते। उनका जन तो वही है जो उनके सही मार्ग पर चले।
- महापुरुषों का अपना-पराया कोई भी नहीं। धर्म ही अपना और धर्म पर चलने वाले जन ही अपने होते हैं।

ॐ

After Publishing "Anmol Vachan" and Explanation of 'Ohm' and So'ham updated detail of donation received from blessed donors for further publication of 'Jeevan Chrit' of Revered Swami Dayanand 'Giri' ji Maharaj is given below :

S. No.	Name of Donor	Date	R.No.	Amount Rs. P.
1.	Sh. Jadish Dheer, Dwarka, N. Delhi-75	04.04.17	685	500.00
2.	Mrs. Babita Aggarwal & Family, Chandigarh	06.09.17	686	5100.00
3.	Gupt Donation, Ambala City	07.09.17	687	5040.00
	Total			**10640.00**
	Previous Balance			+ 43624.00
	Interest from P.N.B. upto 03.06.2017			473.00
	Total			**54737.00**
	Less : Bank Commission			- 18 .00
	Exp. for Dispatch of Book upto 7.09.17			- 3596.00
	Remaining Balance			**51123.00**

—Expenditure on publishing 'Jeevan Charit'

1.	Lasertypesetting & Printing	7580.00
2.	Printing of 16 pages of col. photographs (including paper, printing & Lamination)	8940.00
3.	Title Printing & Lamination	3680.00
4.	Paper for B&W Printing	15400.00
5.	Binding including creasing of title	4400.00
	Total	**40000.00**

— Net Balance after Printing 51123.00 – 40000.00 = 11123.00

ॐ

After Publishing "Anmol Vachan" and Explanation of 'Ohm' and So'ham updated detail of donation received from blessed donors for further publication of 'Jeevan Chrit' of Revered Swami Dayanand 'Giri' ji Maharaj is given below :

S. No.	Name of Donor	Date	R.No.	Amount Rs. P.
1.	Sh. Jadish Dheer, Dwarka, N. Delhi-75	04.04.17	685	500.00
2.	Mrs. Babita Aggarwal & Family, Chandigarh	06.09.17	686	5100.00
3.	Gupt Donation, Ambala City	07.09.17	687	5040.00
	Total			**10640.00**
	Previous Balance			+ 43624.00
	Interest from P.N.B. upto 03.06.2017			473.00
	Total			**54737.00**
	Less : Bank Commission			- 18 .00
	Exp. for Dispatch of Book upto 7.09.17			- 3596.00
	Remaining Balance			**51123.00**

—Expenditure on publishing 'Jeevan Charit'

1.	Lasertypesetting & Printing	7580.00
2.	Printing of 16 pages of col. photographs (including paper, printing & Lamination)	8940.00
3.	Title Printing & Lamination	3680.00
4.	Paper for B&W Printing	15400.00
5.	Binding including creasing of title	4400.00
	Total	**40000.00**

— Net Balance after Printing 51123.00 – 40000.00 = 11123.00

स्वामी दयानन्द 'गिरि' जी महाराज द्वारा प्रणीत हिन्दी भाषा में अध्यात्मिक ग्रन्थ

- स्वामी दयानन्द 'गिरि' जी महाराज का जीवन चरित
- अध्यात्मिक प्रवचन संग्रह भाग-1 व भाग-2
- अध्यात्मिक जीवन पद्यावली (व्याख्या सहित) भाग-1 व भाग-2
- अध्यात्मिक जीवन पद्यावली की कतिपय आवश्यक संज्ञाओं का विशद् विवरण
- अध्यात्मिक जीवन दर्शन भाग-1 व भाग-2 (डॉ० बी.एन. माथुर द्वारा संकलन)
- ओ३म व सोऽहम् की व्याख्या

नोट : उपर लिखित पुस्तकें अंग्रेजी में भी उपलब्ध हैं।

नित्य प्रार्थना

हे दयालु दीन बन्धु, हे मेरे परमेश्वर।
ये जन्म ना व्यर्थ जाए, कुछ दया मुझ पे तू कर।। हे दयालु...
मन मेरा भटके ना जग में, तुझ में ही लगा रहे।
मोह के अन्धेर को मालिक, हृदय से दूर कर।। हे दयालु....
विषयों में जाये ना बुद्धि, तेरा ही चिन्तन करूँ।
तू सदा है पास मेरे, दिल में ये एहसास भर।। हे दयालु...
कर कृपा मुझ पर प्रभु, मैं नाम तेरा ले सकूँ।
आत्मा में ओज भर दे, ज्ञान का प्रकाश कर।। हे दयालु...
अपने को जानू मैं क्या हूँ ?और अब जाना कहां ?
छूट जाएं व्यर्थ झंझट, दूर हो मरने का डर।। हे दयालु...
अंश हूँ भगवन तेरा मैं, सच्चिदानन्द रूप हूँ।
सत्य को मैं सत्य जानूँ, दीजिये ऐसी नज़र।। हे दयालु...

–प्रभु कृपा ही केवलम्!